दर्पण

दीपाली रस्तोगी

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Dipalee Rastogi 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

BlueRoseONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

For permissions requests or inquiries regarding this publication, please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7542-538-0

Cover design: Aafiya Saifi
Typesetting: Namrata Saini

First Edition: May 2026

अनुक्रमणिका

सात नंबर का बक्सा 1

काला टीका 25

बिछुवे 57

सहगामी 76

आम की बौर 93

जाओ क्षमा किया 103

उत्सव 119

हेमंत और ग्रीष्मा 145

दत्तक माँ 174

पारिजात 210

सात नंबर का बक्सा

"आज जाना ज़रूरी है क्या ?" गीता चाय के कप उठाते हुए बोली।

"अरे गीता, वो संदीप कल बंगलौर जा रहा है। तो इसीलिये वह आज आखरी बार चलने के लिए कह रहा था। तुम तो जानती ही हो, संदीप और मनीषा एक बार बैंगलोर जाते हैं तो समझो हो गयी तीन - चार महीनों की छुट्टी !" सुधीर ने जूतों के फीते बांधते हुए कहा।

सुधीर और संदीप फ़ौज के ज़माने के दोस्त थे। अब दोनों ही सेना से ऐच्छिक सेवानिवृत्ति ले चुके थे और स्वतन्त्र रूप से अपने - अपने व्यवसाय संभाल रहे थे। संदीप अपने बेटे के व्यवसाय की दिल्ली शाखा की देख - रेख कर रहा था, तो सुधीर और गीता मिलकर एक आर्ट गैलरी चला रहे थे। दुर्लभ कलाकृतियाँ, पेंटिंग्स, अन्य कलाकृतियों के नमूने आदि का संग्रह, प्रदर्शन और साज संभाल आदि ही उनका काम था। वास्तव में यह गीता की अभिरुचि ही थी जो धीरे - धीरे अच्छे खासे व्यवसाय में बदल गयी थी। सुधीर इस कार्य में गीता का पूरी तरह से साथ देता था। अब तो उनके पास चार लोगों का स्टाफ़ भी था।

"लेकिन आज आदि और सौम्या जा रहे हैं तो हम सब साथ में समय बिताते हैं न ! .... अक्षय तो चला गया अपने एक्ज़ाम्स की वजह से, नहीं तो उसे भी रोक लेती मैं थोड़े और दिनों के लिये.... ।" गीता ने कहा। अक्षय, आदित्य का छोटा भाई था और चेन्नई में रहकर अपनी पढ़ाई पूरी कर रहा था। आदित्य को घर में सब प्रेम से 'आदि' कहते थे। आदित्य और उसकी पत्नी सौम्या आज रात ही बोस्टन जा रहे थे। वहाँ आदित्य नौकरी कर रहा था। आदित्य और सौम्या का विवाह हुए अभी एक महिना भी नहीं हुआ था परन्तु छुट्टियाँ समाप्त होने के कारण आदित्य को वापस जाना था। अब सौम्या भी साथ जाने वाली थी। वह पढ़ी - लिखी समझदार लड़की थी। वहाँ जाकर वह

भी अपने लिए नौकरी ढूँढने वाली थी। संक्षेप में, अक्षय तो पहले ही चेन्नई जा चुका था, आदित्य और सौम्या आज बोस्टन जाने वाले थे। अर्थात घर एकदम खाली हो जाने वाला था ! यह सब सोच कर भी गीता अनमयस्क थी।

"अच्छा बाबा ! जल्दी लौट आऊँगा। ज़्यादा देर तक नहीं खेलूँगा। और हाँ, लौटते समय 'नैवेद्यम` से मिष्टिदोई लेता आऊँगा, ठीक है ?" सुधीर ने अपनी पत्नी के कन्धों पर हाथ रख कर कहा।

"....नहीं, फिर रसगुल्ले ही ले आना। आदि और सौम्या दोनों को ही पसंद हैं। लेकिन आप थोड़ा जल्दी ही आना।" गीता बोली।

आदित्य हॉल में आ चुका था। उसने जल्दी से जूते पहनते हुए कहा, " पापा, मैं आपको गोल्फ़ कोर्स तक छोड़ आता हूँ। लेने भी आ जाऊँगा।"

"अरे तू पैकिंग में सौम्या की मदद कर न ! पापा खुद चले जायेंगे।" गीता ने बेटे को रोकते हुए कहा।

"नहीं मम्मी, मेरी पैकिंग हो चुकी है। वो खुद अपनी पैकिंग कर लेगी...." आदित्य ने लापरवाही से कहा।

"नहीं बेटा ! वह पहली बार जा रही है। तू उसकी मदद कर। मैं चला जाऊँगा।" सुधीर ने आदित्य के व्यवहार में रूखापन और स्वर में तल्खी का अनुभव किया था।

"हाँ ! वही तो.... ! जा बेटा सौम्या के पास। जाने क्यों सुबह से वह उदास दिख रही है ! देखो तो उसका इत्ता प्यारा चेहरा कैसे मुरझाया हुआ है....।" गीता ने स्नेह से अपने बेटे के सिर पर हाथ रखा और बाल सहलाने लगी।

आदित्य ने माँ के दुलार को हाथ से लगभग झटकते हुए कहा, "पापा, चलो न। मेरे भी कुछ काम हैं। फिर मुझे अपने दोस्त समीर के घर भी जाना है। उसकी मम्मी कुछ सामान भेजना चाह रही है। उस सामान को भी मुझे अपने सामान में कैसे भी करके एडजस्ट करना पड़ेगा।"

आदित्य का इस तरह सामान को 'अपने सामान' कहना सुधीर को खटका। कुछ तो असामान्य था। आखिर बेटा - बहू दोनों साथ ही जा रहे थे, तो 'हमारे सामान' कहना अधिक सही होता। बात संभवतः छोटी ही थी, कदाचित् आदित्य ने जल्दबाज़ी में कह दिया हो। परन्तु सुधीर का मन नहीं मान रहा था।

आदित्य कुछ अनमना तो था। बल्कि पिछले दो - तीन दिनों से उखड़ा हुआ था। सौम्या भी बुझी - बुझी सी रहती थी। गीता ने भी कल रात इस विषय में सुधीर से कहा था। तब सुधीर को ऐसा लगा था कि सौम्या अपने माँ - बाप से दूर, विदेश जा रही थी अतः कदाचित ये कारण होगा उसकी मायूसी का। तभी तो उसके चेहरे पर उदासी छाई हुई थी।

लेकिन आज ऐसा लग रहा था कि बात कुछ और ही है। सुधीर अपने विचारों में ही था कि सौम्या डायनिंग हॉल में आई और उसने गीता तथा सुधीर को प्रणाम किया। उसके क्लांत मुख पर विवश सी हँसी बिखरी हुई थी लेकिन आँखें लाल, कुछ सूजी हुई भी थीं। ज़्यादा किसी से बात न करते हुए वह रसोई में कुछ काम होने का बहाना करते हुए चली गयी।

आदित्य का मानों सौम्या की ओर ध्यान ही नहीं गया था, वह अधीरता से उठते हुए अपने पिता से बोला, "पापा जल्दी करो, मुझे कई सारे काम हैं....।" सुधीर ने शीघ्र ही अपनी टोपी, रुमाल और मोबाईल उठाया और गीता से कहा, "हम जल्दी ही आ जायेंगे।"

गीता चुप थी परन्तु उसकी आँखों में कई सारे प्रश्न थे जिन्हें सुधीर ही पढ़ सकता था। आदित्य और सौम्या के बीच फ़ैली हुई चुप्पी गीता ने भी भांप ली थी। पर कारण क्या था !? सौम्या और आदि की जोड़ी बहुत सुन्दर लगती थी। परिवार, पास - पड़ोस और उन लोगों के मित्र मंडल में जिसने भी इस नव विवाहित जोड़े को देखा, ह्रदय से सराहा था, ढेरों आशीर्वाद दिए थे। जाने किस की दृष्टि लग गयी थी जो दोनों एक दुसरे से कटे - कटे रह रहे थे। गीता अपने विचारों में उलझी हुई थी। उसने तय किया कि वह इस विषय पर सौम्या से बात करेगी। उसके मन में क्या है, क्या मायके की याद आ रही है, आखिर

क्यों इतनी उदास है वह ....अभी पिछले सप्ताह की ही तो बात है, दोनों कितने खुश लग रहे थे ! .... हाथों में हाथ डाले घूमना, दोस्तों से मिलने जाना, पार्टियों के दौर, शौपिंग, हँसी - मज़ाक ....घर कितना खुशियों से लबालब भरा हुआ था ! फिर अचानक क्या हुआ कि दोनों ही बच्चों के चेहरे की रौनक गायब हो गयी !

उधर सुधीर को लेकर आदित्य गोल्फ़ कोर्स की ओर जा रहा था। कार में आज पहली बार उसके मन पसंद गानें नहीं चल रहे थे। जब आदित्य बहुत खुश होता तो कार के स्टीयरिंग व्हील पर उँगलियों से थाप देते हुए गाना गुनगुनाता था। आज ऐसा कुछ नहीं हो रहा था। सुधीर को पूरा विश्वास हो चला कि कुछ गड़बड़ तो है। वह आदित्य को बार - बार पूछ कर परेशान या लज्जित नहीं करना चाहता था।

सुधीर ने तय किया कि आदित्य को थोड़ा समय देना उचित रहेगा। वह अपने आप ही पिता से सारी बात करेगा। बचपन से ही आदित्य पिता के और अक्षय माँ के निकट थे। सुधीर ने कान पर फोन लगा लिया। ऊपरी तौर पर सुधीर अपने फोन पर बात करता रहा, किन्तु मन में असंख्य प्रश्नों की श्रृंखला चल रही थी। क्या बात है जो आदित्य को सता रही है ? सौम्या भी क्यों चुप ही रहती है ? गीता ने उससे बात की होगी ? किस बात पर दोनों में अनबन हुई होगी ? विवाह हुए अभी एक महिना भी नहीं हुआ है ! किन्तु यदि थोड़ा रूठना - मनाना नवविवाहित युगल में सामान्य है तो फिर गीता और वह इस प्रकरण को इतनी गंभीरता से क्यों ले रहे थे ?! घर से निकलते समय सुधीर ने गीता के चेहरे पर पसरी उद्विग्नता समझ ली थी। उसकी भाव भंगिमाओं से यह पता चल रहा था कि वह भी आदित्य और सौम्या के बीच चल रहे शीत युद्ध से चिंतित थी।

इतना सब होते हुए भी सुधीर ने संयमता से काम लेना उचित समझा। आदित्य और सौम्या वयस्क हैं, समझदार हैं। उन्हें अपने मसले स्वयं सुलझाने देना चाहिये। यदि कुछ सलाह मशवरा चाहिए तो वह स्वयं और गीता हैं ही.... वे निश्चित ही बच्चों की मदद करेंगे।

अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी सुधीर को ! गोल्फ़ कोर्स की पार्किंग में कार खड़ी करते ही आदित्य शीघ्र ही कार से बाहर नहीं निकला - जैसा वह हमेशा करता था। वह जल्दी से कार के बाहर निकलकर 'बूट' खोलता और 'गोल्फ़ किट' बाहर निकालकर रखता था ताकि उसके पापा को भारी किट न उठानी पड़े। .... और आज वह अपनी जगह से भी नहीं हिला ! उसका मन मस्तिष्क गहन विचारों में उलझा हुआ लग रहा था।

सुधीर ने अपने पुत्र को देखा। उसकी ही छाप थी आदित्य में। सुदर्शन व्यक्तित्व का आदित्य आज बहुत थका हुआ लग रहा था। हमेशा अपने पिता की तरह अनुशासित दिनचर्या का पालन करने वाला आदित्य आज कितना मलिन, ढीला - ढाला दिख रहा था। दाढ़ी बढ़ी हुई, बिखरे बेतरतीब बाल और सलवटों भरी टी - शर्ट ! लगता था कि रात को ठीक से सोया भी नही था।

"क्या हुआ बेटा ?" आदित्य के कंधे पर हाथ रखते हुए सुधीर ने पूछा ।

"कुछ भी तो नहीं पापा...." आदित्य जैसे नींद से जागा। कुछ झेंपकर फीकी सी हँसी हँसते हुए आदित्य ने सीट बेल्ट खोली और बोला, "आई एम् फाइन पापा, बस थोड़ी नींद पूरी नहीं हुई है .... सो आई एम् फीलिंग लिटिल टायर्ड ....!" पापा के उत्तर की प्रतीक्षा न करते हुए आदित्य कार से बाहर निकलने को हुआ।

तत्काल सुधीर ने एक निर्णय लिया। उसने बेटे की बाँह थामते हुए उसे कार से निकलने से रोका और कहा, "बेटा, पता नहीं मुझे भी आज सुबह से सुस्ती आ रही है ....लगता है तुम्हारी मम्मी ने चाय में अदरक कम डाली होगी! चलो, दोनों चलकर कैफ़े में कॉफ़ी पीते हैं। फिर तुम चले जाना।"

जैसा सुधीर को विश्वास था, आदित्य तुरंत ही मान गया। सुधीर समझ गया कि बेटा पापा से बात करना चाहता है, अपने पापा के साथ समय बिताना चाहता है .... और कदाचित अपने मन की उथल - पुथल बता कर उलझे सिरे सुलझाना चाहता है !

सुधीर बोला, "तो ठीक है पार्टनर ! कैफ़े में मिलते हैं। तुम कार पार्क कर के कैफ़े में आ जाना, तबतक मैं संदीप अंकल को मेसेज कर देता हूँ कि आज मैं खेलने थोड़ी देर से आऊँगा।" सुधीर ने अपने मित्र को आज न मिल पाने का सन्देश भेजा और खेद व्यक्त किया। ये सच था कि संदीप अगले दिन ही जा रहा था, पर आज आदित्य के साथ समय बिताना सुधीर के लिए कहीं अधिक आवश्यक था।

जल्दी ही आदित्य कैफ़े में आ गया। सुधीर ने तब तक कॉफ़ी और आदित्य के पसंद के वेज सैंडविच आर्डर कर दिए थे। इधर - उधर की बातों से सुधीर ने बातचित शुरू की किन्तु आदित्य का मानों ध्यान ही नहीं था। वह बस हाँ, हूँ, ही कर रहा था और पेपर नैपकिन की तहें लगा रहा था, खोल रहा था। कॉफ़ी आ गयी थी। अब सुधीर ने सीधे ही पूछ लिया, "क्या बात है बेटा, कुछ परेशान लग रहे हो ?"

"कुछ नहीं पापा .... मैं ठीक हूँ, भला चंगा हूँ। मुझे क्या हुआ है !" आदित्य ने हँसने की असफल कोशिश की।

"आज कुछ ही घंटों के बाद तुम लोगों की फ्लाइट है। तुम शायद ट्रेवल के बारे में सोच कर चिंतित हो, है न ?" सुधीर ने पुछा।

"ना,ना ! मुझे क्या प्रॉब्लम है मुझे तो ऐसे लम्बे ट्रेवल की आदत है।"

"हाँ पर सौम्या के लिए यह पहली बार है, है न ?" सुधीर ने अपने बेटे की आँखों में झाँकते हुए कहा। वह जानना चाहता था कि कहीं आदित्य की उत्कंठा का कारण सौम्या तो नहीं है।

"मुझे उसकी चिंता करने की क्या ज़रुरत ? उसका ध्यान रखने वाले, चिंता करने वाले बहुत लोग हैं।" आदित्य की आवाज़ तेज़ और कड़वाहट लिए हुए थी।

"फिर भी बेटा। वह तुम्हारे साथ जा रही है तो तुम्हारी ज़िम्मेदारी सबसे ज़्यादा बन जाती है। आखिर वह पहली बार अपना देश - परिवार छोड़कर इतनी दूर जाने वाली है।"

आदित्य ने रुखाई से कहा.... " पर सौम्या की चिंता करने वाले, उसके हितैषी हैं न ....। मुझे क्या ज़रुरत चिंता करने की ?"

"कौन हैं ये लोग ?" सुधीर ने गंभीरता से कहा।

"उससे मेरा कोई सरोकार नहीं ....। आई डोंट केयर ! .... खैर आप ही पूछ लेना।" आदित्य फिर रूखेपन से बोला, किन्तु उसमें छिपी हुई पीड़ा को सुधीर अनुभव कर सकता था। यानि मामला बहुत नाज़ुक था। आदित्य और सौम्या के विवाह को एक महिना भी नहीं हुआ था और दोनों मानो अलग - अलग धरातल पर खड़े थे। आदित्य ऐसे बात कर रहा था जैसे अपनी पत्नी से उसका कोई लेना - देना ही नहीं है। उधर घर पर सौम्या भी दुखी दिख रही थी। सुधीर को खल रहा था कि वह सौम्या का पक्ष नहीं जानता था। आखिर ताली एक हाथ से तो नहीं बजती !

"बेटा क्या बात है, साफ़ - साफ़ कहो। ऐसे उखड़े हुए क्यों लग रहे हो?"

"पापा, आप क्यों पीछे पड़ रहे हैं.... आप जाओ न कॉफ़ी पी कर, संदीप अंकल आपका इंतज़ार कर रहे होंगे....।"

आदित्य के धृष्टता भरे उत्तर को सुनकर भी सुधीर ने अनदेखा किया और उसके हाथ पर हाथ रख कर प्रेम से पुछा, "पार्टनर, क्या बात है, अपने पापा से नहीं कहेगा ?"

बस इसी क्षण आदित्य के संयम का बाँध टूट गया। वह भावुक होकर बोला, "क्या कहूँ पापा, आपको सुनकर दुःख होगा .... सौम्या के जीवन में कोई और है। मुझे भी चार - पाँच दिन हुए, पता चला है। मुझे तो दुःख इस बात का है कि हमारी शादी आप सभी बड़ों की सहमति और आशिर्वाद से हुई है। सौम्या पर शादी का कोई दबाव नहीं था। उसके पेरेंट्स भी पढ़े - लिखे, संपन्न और खुली विचार धारा के हैं। मुझे विश्वास है, यदि सौम्या ने अपनी पसंद उन्हें पहले बता दी होती, तो वे उसका विवाह वहीं कर देते ! मैं तो यह नहीं समझ पा रहा कि सौम्या ने ऐसा क्यों किया। न वो खुश रहेगी, न मैं ....और न वो अभागा जिससे सौम्या ...."

बात बीच में ही छोड़ कर आदित्य कॉफ़ी पीने लगा। उसकी आँखें नम थीं। सुधीर को इस बात की अपेक्षा नहीं थी। वह अवाक् रह गया। अचानक जैसे पूरे कैफ़े में कान के परदे फाड़ देने वाली चुप्पी छा गयी !

आदित्य अपने ही प्रश्न - उत्तरों में उलझ गया। पता नहीं पापा को बताकर ठीक किया या नहीं, ये उधेड़ - बुन उसकी आँखों में दिख रही थी। सुधीर स्वयं सोच में पड़ गया। बिना सौम्या का पक्ष जाने वह किसी परिणाम पर नहीं पहुँचना चाहता था। वह केवल आदित्य का पक्ष जानता था। लेकिन आदित्य के चेहरे पर सच्चाई झलक रही थी। इतनी बड़ी बात वह ऐसे ही नहीं कहता! कुछ तो सुलग रहा होगा तभी धुआँ उठ रहा था।

अन्ततः सुधीर ने कहा, "आदि, साफ़ - साफ़ कहो क्या हुआ है .... तुम्हें कैसे पता कि सौम्या बिटिया तुमसे धोखा कर रही है ? क्या तुम्हें विश्वास है कि जैसा तुम सोच रहे हो, वही सच है ?"

"पापा, उस बन्दे के मेसेज आ रहे है कुछ दिन से, फोन भी आते हैं .... मैंने अब तक नज़र अंदाज़ किया, अब नहीं होता। लेकिन डरता हूँ कि कहीं बुरी तरह से कुछ बोल न दूँ सौम्या को ....।"

"तुमने सौम्या से बात की ?"

"नहीं ! .... क्या बात करूँ ? उसे और खुद को भी शर्मिंदा करूँ पूछ कर?" आदित्य ने उल्टे अपने पापा से ही प्रश्न कर दिया।

सुधीर गंभीर हो गया। बोला, "बेटा ये शक़ या अविश्वास की ग्रंथि कभी भी मन में नहीं पालनी चाहिए। ये कब कैंसर का रूप ले ले पता नहीं चलता। तुम्हे अभी केवल अपना पक्ष पता है। सौम्या की ओर से पूरी बात जाने बिना किसी परिणाम पर मत पहुँचो। अभी तुम दोनों युवा हो, पूरा जीवन है सामने तुम दोनों के। सच चाहे जो हो, बिना जाने अपनी राय मत बना लो सौम्या के बारे में।"

"यदि सच तुम्हारे साथ है तो हम सौम्या के माता - पिता से बात करेंगे। और आवश्यकता हुई तो इस सम्बन्ध को समझ बूझ कर समाप्त कर देंगे ताकि

तुम दोनों ही अपनी - अपनी राह पर ख़ुशी से चल सको। एक और भी रास्ता है - सौम्या के बारे में ये जानते हुए भी उसका सहारा बनो, उसका विश्वास बनो, उसे एक बार मौका दो। और अपने वैवाहिक जीवन को संभाल लो।"

"अच्छा पापा ! गलती उसकी है, और आप मुझे ये आसानी से भूलने के लिए कह रहे हैं.... !" आदित्य की आवाज़ में व्यंग्य का पुट था।

"क्या पता उसकी गलती न हो। शायद वो व्यक्ति ही उसे तंग कर रहा हो। सौम्या उससे पीछा छुड़ाना चाहती हो .... लेकिन वो उसे परेशान कर रहा हो .... जैसे कोई सिरफिरा, मनचला टाइप ?"

आदित्य सोच में पड़ गया और बोला, "वैसे जब फोन आते हैं तो अलग - अलग नंबर से आते हैं ....मैंने ध्यान दिया था, सौम्या हर बार नंबर ब्लाक कर देती है ....लेकिन ये भी तो हो सकता है कि ये कोई अनाम सिरफिरा न हो, बल्कि सौम्या का कोई पुराना जानने वाला हो .... जैसे कॉलेज का या अड़ोस - पड़ोस का। अब सौम्या की शादी हो गयी है तो फिर भी पुराना वास्ता दे रहा हो .... ।"

"हो सकता है बेटा। लेकिन ये भी तो हो सकता है कि उस व्यक्ति का एक तरफ़ा आकर्षण हो, सौम्या उससे पीछा छुड़ाना चाहती हो, वह क्या पता " स्टाकर " हो ! और यदि तुम्हारा सोचना ही सही है तो भी सौम्या को एक अवसर तो मिलना ही चाहिए अपनी बात कहने का।"

"पता नहीं पापा उसे माफ़ कर सकूँ, इतना बड़ा दिल है भी कि नहीं मेरे पास।" आदित्य ने उदास होकर कहा। सुधीर आदित्य की आँखों में सौम्या के लिए प्रेम साफ़ देख सकता था। दोनों की जोड़ी बहुत सुदर्शन दिखती थी। एक ही परिचय में दोनों ने शादी के लिए हाँ कर दी थी। इस सम्बन्ध से दोनों परिवार कितने प्रसन्न थे ! फिर ये सब क्या हो रहा था !

सुधीर ने स्नेह से आदित्य के सिर पर हाथ रखा और कहा, "सौम्या दोषी है या नहीं ये घर जाकर ही पता चलेगा। तब तय करना कि उसे माफ़ करना है या नहीं। ये निर्णय मैं तुम पर छोड़ता हूँ। हाँ, पर तुम्हें आज मैं एक बात बताता हूँ। कई सालों पहले मैं तुम्हारी माँ का दोषी भी था और कदाचित इतना

कमजोर भी था कि अपने अतीत को भुला नहीं पा रहा था। तब गीता ही थी जिसने मुझे एक और अवसर दिया था, थामा था, सहारा दिया था और मुझे अतीत और हमारे वर्त्तमान की मंझधार से बाहर निकाला था।"

अब आदित्य की चौंकने की बारी थी। माँ और पापा की जोड़ी उसकी आदर्श जोड़ी थी ! आज ये क्या सुन रहा था वह ?! सुधीर मुस्कुराकर बोला, "आज बताता हूँ ...."

"अरे पापा क्या कह रहे हैं आप ? मैं वैसे ही परेशान हूँ, और आप .... कैसे ? और कब ? .... मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा ...."

"बेटा, समय रहते तुम्हारी माँ मुझे नहीं संभालती तो बड़ा ही गज़ब हो जाता। सुनो, मैं तुम्हें अपनी गलती और गीता की समझदारी के बारे में बताता हूँ।"

****

तब सुधीर फ़ौज में युवा मेजर था। उसकी तैनाती गुवाहाटी में थी। गीता से विवाह हुए चार - पाँच महीने हो गए थे परन्तु गीता सुधीर के माता - पिता के साथ आगरा में ही रह रही थी और सुधीर को आवास मिलने की प्रतीक्षा कर रही थी। जब आवास मिल गया तब भी सुधीर गीता को लिवा ले जाने में रूचि नहीं दिखा रहा था। कभी ये, तो कभी वो, कह कर बहाने बना रहा था। माता - पिता के बार - बार कहने पर आखिर उसने हथियार डाल दिए और आगरा आकर गीता को अपने साथ ले गया। सरल मन की गीता पति की अनिच्छा को भांप नहीं पायी। वह तो पति के साथ अपने नए घर - संसार को बसाने सजाने के लिए ह्रदय से उत्साहित थी। आँखों में असंख्य सपने लिए वह अपने पति के साथ अपने घर आ गयी। कला की पारखी, सुघड़ गीता ने उस छोटे से सरकारी आवास की काया पलट करनी आरम्भ कर दी। बाहर का उजड़ा पड़ा बग़ीचा भी उसकी देखरेख में हरा - भरा दिखने लगा था। हँसमुख और सरल स्वभाव की गीता की आस पड़ोस की महिलाओं से भी मित्रता हो गयी थी।

लेकिन सब कुछ ठीक नहीं था। सुधीर जब - तब गीता को टोक ही देता था क्योंकि गीता को फौजी तौर तरीके सीखने में समय लग रहा था। गीता सुधीर की रुखाई का बुरा नहीं मानती थी। सुधीर उसे पार्टियों में ले जाने में कतराता था। उसे गीता के बनने - संवारने में कमी दिखाई दिखती थी। हमेशा ये डर लगा रहता था कि कहीं गीता कुछ गलत न कर दे, अपने स्वभावगत भोलेपन के कारण पार्टियों में बड़े अफसरों और उनकी पत्नियों के सामने कोई लज्जास्पद स्थिति न उत्पन्न कर दे। यद्यपि गीता पढ़ी - लिखी, समझदार युवती थी, तथापि फ़ौज के तौर तरीके सीखने में थोड़ा समय तो लगना ही था ! परन्तु सुधीर व्यग्र हो जाता था। सुधीर गीता की गृहसज्जा, रसोई, बजट मैनेजमेंट और मेहनती स्वभाव का प्रशंसक था किन्तु फिर भी उसे पूर्ण रूप से स्वीकार भी नहीं पाया था।

एक बार जब दोपहर के खाने के समय सुधीर घर वापस आया तो देखा कि घर का गराज खुला हुआ था, उसके फौजी काले बक्से खुले पड़े हुए थे, कुछ बक्से नंबर के अनुसार सुव्यवस्थित रूप में एक के ऊपर रखे हुए थे। गराज की सफाई हुई थी। सुधीर का 'सहायक' मुस्तैदी से अपनी 'मेमसाब' की सहायता कर रहा था और खुले हुए बक्सों का सामान निकाल कर साफ़ कर रहा था।

सुधीर को देखते ही उल्लासित गीता लगभग भागती हुई पास आई और विजयी मुद्रा में घोषणा की, "मैं और दिलीप भैया मिलकर गराज साफ़ कर रहे हैं। काफी सारा हो गया है, देखो कितनी जगह निकल आई है। जैसे भैया ने बताया, वैसे ही सामानों की सूचि बनाकर बक्सों में रखते गए हैं.... बस एक - दो बक्से रह गए हैं .... सच में सुधीर, कितनी सारी अतरंगी चीज़ें हैं इनमें ! आपका कैम्पिंग का सामान, पुरानी कैप्स, ड्रिफ्ट वुड, देवदार के सूखे शंक्वाकार कोन, कपड़े, जूते, गोल चितकबरे पत्थर ! सच में, ये तो खज़ाना है खज़ाना !" गीता पसीने से तर थी पर चेहरा दमक रहा था।

"आपकी कुछ किताबों का संकलन, फोटोग्राफ्स, फाइलें आदि की भी सूचि बनाकर उनके बक्सों में रख दी है .... लेकिन सुधीर, वो बक्सा नंबर सात है न, उसकी चाबी नहीं मिल रही है। यदि वो मिल जाती तो वो बक्सा भी

साफ़ कर देते .... ।" गीता हाँफ गयी कहते हुए परन्तु किसी योद्धा की तरह अपनी उपलब्धियाँ गिनाते हुए उसकी आँखों में चमक आ गयी थी।

अभी तक सुधीर गीता की बातें सम्मोहित होकर सुन रहा था, मन ही मन गीता के उत्साह को सराह रहा था कि अचानक सात नंबर के बक्से का उल्लेख आते ही सुधीर के चेहरे के भाव बदल गए। वह गुस्से में लाल हो गया। जबड़ा भींचकर कठोर किन्तु सधी हुई आवाज़ में सुधीर बोला, " ये सब मेहनत का काम क्यों कर रही हो ? कल रविवार है, मैं और दिलीप कर लेते ! चलो, ये सब बंद करो और आराम करो .... और दिलीप, ये क्या फैला रखा है ? चलो, आप भी ब्रेक लो और लंच के लिए जाओ। बाकी काम शाम को समेट लेना।"

दिलीप सुधीर का सहायक था। उसने भी गौर किया कि सब ठीक चल रहा था, अचानक ही साहब नाराज़ हो गए ! खैर, उसने बिना कुछ कहे अभिवादन किया और चला गया।

गीता हक्की - बक्की वहीं खड़ी थी। सुधीर के ऐसे धूप - छाँव व्यवहार से वह अचंभित थी। जब से वह यहाँ, गुवाहाटी आई थी, सुधीर कुछ न कुछ नापसंदगी या नाराज़गी जाहिर करता रहता था। किन्तु आज उसने किसी तीसरे व्यक्ति के सामने कुछ इस तरह से कहा था कि गीता अपमानित अनुभव कर रही थी।

वह कुछ नहीं बोली। उसने चुपचाप अपने जूते खोल कर रैक में रखे और घर के अन्दर चली गयी। फिर वह हाथ धोकर रसोई में खाना गरम करने लगी। कपड़े बदलकर सुधीर भी डाइनिंग टेबल पर आ गया। किन्तु अभी भी उसकी खिन्नता दूर नहीं हुई थी।

"तुम ये सब काम फैलाकर क्यों बैठ जाती हो जब - तब ? फ्री हो, तो चाहो कोई कोर्स ज्वाइन कर लो। ये गराज, बक्से सफाई वगैरह करने की ज़रूरत नहीं है।"

गीता को लगा कि सुधीर उसकी सच में चिंता कर रहा है। उसका बुझा हुआ चेहरा खिल उठा।

“सुधीर, मैं बता नहीं सकती इन काले बक्सों को देख कर मेरा मन कितना खुश हो जाता है ! सच्ची बताऊँ तो बचपन से ही जब भी हम कहीं ट्रेन से जाते थे तो अलग - अलग स्टेशनों के प्लेटफॉर्म्स पर ऐसे काले बक्से दिख जाते थे और उन्हें देखकर हम भाई - बहनों का ह्रदय देशप्रेम की भावना से भर उठता था। बक्सों पर लिखे नाम के सिवा हमें रैंक या यूनिट तो समझ नहीं आती थी लेकिन उन बक्सों को देख कर हम अक्सर कल्पना करते थे कि अमुक नाम का सैनिक कैसा दिखता होगा, कहाँ का रहने वाला होगा, कितने युद्ध लड़े होंगे उसने, कितने दुश्मन मार गिराए होंगे ....”

गीता फ़टाफ़ट खाना लगाती जा रही थी और अनवरत बोलती जा रही थी और बक्सों के बारे में बात करते हुए उसका मुख पुनः कांतिवान हो गया था।

“....सच में सुधीर, बचपन में जब कभी हम प्लेटफार्म पर अपनी ट्रेन की प्रतीक्षा कर रहे होते और ऐसे बक्से दिख जाते तो हम भाई - बहन पापा की नज़र बचा कर उन बक्सों को छू कर आते थे ! छोटा बबलू तो सलूट ही कर आता था !” गीता कहते हुए हँस पड़ी।

“और अब देखो मैं ही ऐसे काले बक्सों की मालकिन बन बैठी हूँ ! जब मैंने इन्हें खोला तो मैंने अनुभव किया कि एक फौजी का सारा संसार इन्ही में सिमटा रहता है। न जाने कितनी खट्टी - मीठी यादों, घटनाओं को धरोहर के रूप में संजोकर रखते हैं ये बक्से .... ” गीता ने सुधीर को रोटी परोसी और बोलती रही, “ सुधीर आपने भी तो कितने ही किस्से, वाकये, ट्रेनिंग के पल, या अलग - अलग पोस्टिंग्स की यादें इनमें सम्भाल कर रखी होंगी। अब मेरी भी डोर इनसे बंध जाएगी ! मेरी साड़ियाँ, शालें, शो पीसेस, क्राकरी, और भी न जाने क्या - क्या .... ।”

“अब बस भी करो। ये क्या तुम काले बक्सों के पीछे ही पड़ गयीं ? मैं और दिलीप बचा हुआ फैलावा समेट देंगे । तुम्हें इस झमेले में पड़ने की आवश्यकता नहीं है।” सुधीर तमक कर बोला।

गीता को सुधीर का रूखापन और गुस्सा अखरने लगा। फिर भी हिम्मत करके बोली, "अच्छा बाबा, अब नहीं करुँगी। बस एक सात नंबर का बक्सा ही रह गया है। वो साफ़ करके जमा दूँ, फिर गराज की ओर देखूँगी भी नहीं .... बस !?"

"मैंने तुम्हें मना किया न ? एक बार में समझ क्यों नहीं आ रहा ? वो सात नंबर का बक्सा छूना भी मत !"

"ऐसा क्या है उसमें ? ....क्लासिफाइड फाइल्स ?" गीता ने माहौल को शांत और हल्का करने के लिए मज़ाक में कहा।

"एनफ इज़ एनफ !.... मुझे और भूख नहीं है ...." सुधीर खाने की टेबल से उठ गया और गुस्से में कमरे में चला गया। गीता अवाक् सी बैठी रही। सात नंबर के बक्से को लेकर सुधीर का ऐसा संवेदनशील व्यवहार उसके समझ नहीं आ रहा था।

सुधीर ऐसे ही मुँह फुलाए ऑफिस चला गया। गीता सारी दोपहर और शाम इसी उधेड़ बुन में लगी रही कि जाने बात क्या हुई जो सुधीर को इतनी बुरी लगी। उसे कुछ नहीं सूझा। अंततः उसने तय किया कि अब वह उन काले बक्सों की ओर देखेगी भी नहीं, खास कर के उस सात नंबर के बक्से की ओर तो कतई नहीं !

शाम को उन्हें एक जगह दावत पर जाना था। गीता बेमन से तैयार हुई, यद्यपि उसने इस बात का ध्यान रखा था कि कपड़ों के चुनाव में उससे त्रुटी न हो जाये, अन्यथा सुधीर फिर से नाराज़ हो जाता कि उसे कहाँ क्या पहनना है, इसकी समझ ही नहीं है ! गीता ने सोच लिया था कि दोपहर की घटना का किसी भी तरह उल्लेख नहीं करेगी। वह सुधीर के व्यवहार से बहुत आहत हुई थी। उसे पहली बार मायके की बहुत याद आने लगी थी।

दुखी तो सुधीर भी था। उसे अपने बर्ताव पर लज्जा भी आ रही थी। उसे गीता से ऐसे बात नहीं करनी चाहिए थी। जाने दोपहर को उसने खाना खाया या नहीं .... सुधीर ने तय किया कि दावत से लौटने के बाद सबसे पहले वह गीता से क्षमा माँगेगा।

पर आवश्यक नहीं हम जैसे सोचें, वैसे ही बिना किसी व्यवधान के सब कुछ ठीक होता चला जाय ! जहाँ वे लोग गए थे, वहाँ अचानक विवेक और मिताली से मिलना हो गया। ये दोनों और सुधीर एक ही कॉलेज में पढ़ते थे। पढ़ाई के बाद विवेक और मिताली का विवाह हो गया था। वस्तुतः जिस अफसर के यहाँ सुधीर और गीता गए थे, वह अफसर मिताली का ममेरा भाई था। मिताली और विवेक इन दिनों गुवाहाटी घूमने आये थे। उन्हें और सुधीर के लिए यह मुलाकात "सरप्राईज़" ही थी।

पांच - छः वर्ष बाद मित्र मिल रहे थे। मिताली तो हर्षातिरेक होकर लगभग चीखते हुए ही बोली, "अरे सुधीर, डिअर वाइफ से तो मिलवाओ ....कहाँ छिपा रखा है एंजेला को !? .... सच्ची मेरा बहुत मन था तुम्हारी शादी अटेंड करने का ....यू नो, चर्च वेडिंग्स बड़ी रोमांटिक, बड़ी परी कथाओं जैसी होती हैं, है न विवेक?"

मिताली की आँखें हॉल में 'एंजेला' को ढूंढ रहीं थीं। सुधीर के मुँह पर ताले पड़े हुए थे। वह हक्का बक्का हो गया। विवेक संभवतः परिस्थिति समझ चुका था। पर अपनी पत्नी को यह 'भूकंप' लाने से नहीं रोक पाया था वह। पार्टी में आये अन्य लोग भी अचानक चुप से हो गए थे।

रह गयी गीता ! उसे लगा जैसे उसने बिजली का नंगा तार छू लिया हो। परन्तु दूसरे ही क्षण उसने अपने आप को संयमित किया और सधी हुई चाल चलते हुए मिताली के सामने जा खड़ी हुई। गीता के चेहरे पर शांत स्मित था एवं नवविवाहिता के मुख पर जो आभा होती है, उसी कान्ति से युक्त गीता ने मिताली से हाथ मिलाने के लिए हाथ आगे बढ़ाया और कहा, "हेल्लो, मैं गीता, वाइफ ऑफ़ मेजर सुधीर !" आज वह अपना परिचय देने में ज़रा भी नहीं लड़खड़ाई थी।

मिताली ने सकपकाकर गीता से हाथ मिलाया और कुछ हड़बड़ाते हुए बोली, "....ह ह - हेल्लो मिसेज़ सुधीर !"

गीता ने गर्मजोशी से मिताली के हाथ के ऊपर अपना बाँया हाथ रखते हुए मुस्कराहट के साथ कहा, "आप मुझे गीता ही कहें, मुझे अच्छा लगेगा।"

एकाएक जैसे सब कुछ सामान्य हो गया। लोग अपने - अपने वार्तालापों में खो गए। व्यस्त हो गए। मिताली अवश्य सकते में थी। सुधीर हकलाते हुए मिताली से कुछ कहने को हुआ किन्तु जिव्हा जैसे तालू से चिपक गयी थी। उसने गीता से कुछ कहना चाहा परन्तु गीता ने जैसे उसे देखा ही नहीं।

"मिसेज़ विवेक ! मुझे और सुधीर को दुःख है जो आप दोनों हमारे विवाह में नहीं आ सके। पर कोई बात नहीं, आपने ज़्यादा कुछ मिस नहीं किया, क्योंकि हमारी चर्च वेडिंग भी नहीं हुई थी ! हाँ, हमें बहुत ख़ुशी होगी अगर अब आप सब हमारे यहाँ आयें .... ज़्यादा दूर नहीं है हमारा घर!"

मिताली के मुँह से अस्पष्ट शब्द निकले, "आई ऍम सॉरी ...." फिर थोड़ा संभलकर वह बोली, "गीता, प्लीज़ बुरा मत मानना। वो कॉलेज के दिनों में ऐसी छेड़ - छाड़ तो होती ही है.... आपको भी पता होगा ....तो यूँ ही हम सुधीर को एंजेला के नाम से छेड़ते थे .... यू नो, नथिंग सीरियस ....।"

"मैंने बुरा नहीं माना। आप भी परेशान न हों। एंजेला सुधीर का अतीत है। वह मुझे इस विषय में सबकुछ बता चुके हैं।" गीता ने मिताली को बीच में ही रोकते हुए कहा। वह यहीं पर नहीं रुकी और बोली, "कॉलेज में ऐसे वाकये, किस्से होना बहुत आम बात है। कुछ अपनी मंजिल तक पहुँच जाते हैं, कुछ हालात के साथ समझौता कर लेते हैं। सुधीर और एंजेला के साथ भी ऐसा ही हुआ। वो और सुधीर अपने - अपने जीवन में आगे बढ़ चुके हैं। तभी तो मैं सुधीर के जीवन में आयी ! क्या आपको मुझसे मिलकर दुःख हुआ ?" गीता सीधे मिताली की आँखों में झाँकते हुए बोली।

मिताली तबतक झटके से उबर चुकी थी। उसने दोनों हाथ गीता के कन्धों पर रखे और कहा, "गीता तुम बहुत प्यारी हो, बहुत समझदार भी हो। सुधीर के लिए तुमसे अच्छा मैच हो ही नहीं सकता था !" उसने सुधीर की ओर देखते हुए कहा, "सुधीर तुम्हें एंजेला नहीं, एक "एंजल" मिली है ! तुम दोनों की जोड़ी बिल्कुल परफेक्ट है।"

जितनी देर वे लोग वहाँ थे, कोई और अनहोनी नहीं घटी। रात को घर लौटने के बाद भी सुधीर और गीता के बीच एंजेला के विषय में कोई बात नहीं

हुई। अपराध बोध ग्रस्त सुधीर को गीता से आँखें मिलाने की हिम्मत ही नहीं हो रही थी। सुधीर को कौतुहल भी हुआ, डर भी लगा कि गीता ने अभी तक कुछ कहा नहीं था। क्या ये बवंडर आने के पहले की शान्ति थी ? गीता ने कोई बखेड़ा नहीं किया, रास्ते में, या घर आने के बाद भी ! वह बहुत शांत थी, नम्र थी और सामान्य रूप से बातचीत कर रही थी। सुधीर को लगा था कि रोना - धोना होगा, दोषारोपण होंगे, धोखा देने की बातें होंगी .... पर ऐसा कुछ भी नहीं हो रहा था।

रो - धो कर गीता अपनी विवशता नहीं दिखाना चाहती थी। सुधीर की गलती के लिए वह क्यों रोये ? यदि सुधीर और एंजेला में हिम्मत होती तो उनका विवाह हो सकता था। अब जब दोनों ही अपने अपने जीवन में आगे बढ़ गए थे तो अतीत को याद करके क्यों रोना - कलपना ? वह जानती थी कि इस समय सुधीर दुखी है, शर्मिंदा भी है। उसके दुःख को अपनी बातों से और बढ़ाना नहीं चाहती थी वह।

कभी - कभी जब स्त्री रोना - धोना न करे तो पुरुष का अहम् बहुत चोट खाता है। उसे अपनी शक्ति क्षीण होती हुई सी प्रतीत होती है। एक ओर सुधीर खुश था कि गीता ने उस अफसर के घर पर या घर आने के बाद भी कोई झगड़ा नहीं किया था। दूसरी ओर उसे यह चिंता भी खाए जा रही थी कि गीता ने किसी भी तरह का शोर क्यों नहीं किया था अब तक ! कुछ क्यों नहीं कह रही गीता ! उलाहने क्यों नहीं दे रही ! झगड़ा क्यों नहीं कर रही ! ....

सुधीर से नहीं रहा जा सका। वह असहाय, अकेला अनुभव कर रहा था। उसी समय वह कमरे में गया जहाँ गीता पार्टी में पहने गए कपड़े समेट कर ठीक से रख रही थी। म्यूज़िक सिस्टम पर मद्धम स्वर में कोई भजन चल रहा था।

इधर गीता बहुत शांत दिख रही थी किन्तु उसके मन में बवंडर मचा हुआ था। सुधीर ने एंजेला के विषय में कभी बताया क्यों नहीं ? क्या विवशता रही होगी ? कैसी दिखती होगी एंजेला ? क्या यही कारण है जो सुधीर का उसके प्रति ऐसा रुखा व्यवहार रहता था ?

सुधीर ने कमरे में आ कर गीता के कन्धों पर हाथ रखकर अपनी ओर मोड़ा और अपनेपन से गीता को पलंग पर बैठा दिया। गीता कुछ समझ पाती या अपनी प्रतिक्रिया देती, सुधीर गीता के पास ही ज़मीन पर बैठ गया। उसकी पलकें नींची थीं और अश्रुओं से भरी हुई थी। सुधीर के ऐसे व्यवहार का गीता को अनुमान नहीं था। बरबस ही उसने स्नेहवश सुधीर के बाल सहलाने शुरू कर दिए। सुधीर के धैर्य का बाँध टूट गया और अपना सिर गीता के घुटनों पर रख कर वह फफक कर रो पड़ा। सुधीर की ऐसी अवस्था देख कर गीता के मन में करुणा जाग उठी। उसने सुधीर का मुख अपनी अंजुली में उठाया और उसके आँसू पोछने लगी। सुधीर रोते हुए ही बोला, "मैं तुम्हारा दोषी हूँ गीता कि मैंने तुम्हें अँधेरे में रखा। मुझे समझ नहीं आता कि किस मुँह से तुमसे क्षमा याचना करूँ। हो सके तो मुझे माफ़ कर देना।"

"बीती बातें भूल कर, मुझसे शादी करके ज़िन्दगी नए सिरे से शुरू करने की पहल तो आपने कर ही दी है, तो फिर ये रोना क्यों ?" गीता ने मुस्कुराने का प्रयत्न किया।

सुधीर बोला, "हाँ, मैंने नयी शुरुआत करने के लिए ही मन से पूरे विश्वास के साथ तुमसे विवाह के लिए हाँ की थी। माँ - पिताजी भी बहुत खुश हैं हमारे विवाह से ....परन्तु .... " सुधीर कुछ कहना चाह रहा था किन्तु मन में चल रहे ज्वार - भाटे को शब्दों में कह पाना कदाचित उसे असंभव लग रहा था।

गीता को सुधीर के मनोगत भावों का कुछ - कुछ अनुमान हो रहा था। वह बोली, "सुधीर, विवाह चाहे प्रेम विवाह हो या 'अरेंज्ड', जब तक पति - पत्नी निश्छल भाव से एक दूसरे के प्रति निष्ठावान नहीं रहेंगे तो कोई भी विवाह सफल नहीं हो पायेगा।"

सुधीर चुप था। थोड़ी देर कमरे में चुप्पी छायी रही।

"मैं समझ सकती हूँ कि शायद आप और एंजेला के विजातीय होने के कारण विवाह नहीं हो सका होगा। परन्तु मैं अब यह जानना चाहती हूँ कि आपने कहीं माता - पिता के दबाव में आकर मुझसे विवाह के लिए हाँ तो नहीं की थी ?" गीता ने कह तो दिया पर मन में उथल - पुथल चल रही थी, विचारों

की आँधी चल रही थी कि क्या सुधीर सच में मजबूरी में गीता के साथ निभा रहा था ?!

"नहीं, नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। गीता मैं हमारे विवाह के प्रति पूरी तरह से निष्ठावान हूँ - आई एम् फुली कमिटेड टू इट !" सुधीर ने ज़ोर देकर कहा।

"तो क्या बात थी जो आपने मुझे एंजेला के बारे में कभी नहीं बताया ?"

"मैं सोचता था कि तुम्हें बुरा लगेगा, शायद इस बात को झेल नहीं पाओगी .... पता नहीं .... " सुधीर को अपनी बात कहने को शब्द नहीं मिल रहे थे। सिर झुका लिया उसने।

"आज जिस तरह से पता चला उससे तो बच जाते हम दोनों ! वहाँ हम दोनों की बड़ी विचित्र स्थिति हो गयी थी, है न ?"

सुधीर ने सिर उठा कर गीता को देखा। गीता देख सकती थी कि सुधीर की आँखें रो - रो कर लाल हो गयीं थीं। सुधीर ने कहा, "तुमने बहुत ही समझदारी से स्थिति संभाल ली थी। कैसे तुम्हारा धन्यवाद करूँ, समझ नहीं आ रहा।"

गीता ने सधे हुए शब्दों में कहा, "उस समय वैसा करना ही सही था ....सुधीर, क्या आप एंजेला के बारे में मुझे अब बताना चाहोगे ? .... वैसे आप पर दबाव नहीं है ....।"

"नहीं, नहीं .... मैं तुम्हें सब बताना चाहता हूँ। मुझे यह बहुत पहले ही कर देना चाहिए था।" सुधीर ने गीता की हथेलियों को अपनी हथेलियों में लेते हुए कहा और देर रात तक सुधीर अपने अतीत के बारे में बताता रहा। गीता पूरे धैर्य के साथ सुनती रही। सबकुछ बताकर सुधीर को आज मुक्ति का अनुभव हो रहा था। उसके चेहरे पर खोई हुई मुस्कान वापस आ गयी थी। उसने गीता के हाथ नहीं छोड़े थे मानों वह गीता को नहीं खोना चाहता था।

गीता ध्यान से सुन रही थी। एकाएक उसने सुधीर की बातों के तारतम्य को तोड़ते हुए सहज भाव से पुछा, "तो ये सात नंबर के बक्से में एंजेला से जुड़ी हुई यादें, पत्र, ग्रीटिंग कार्ड्स आदि हैं न ?"

सुधीर अवाक् रह गया। ये सच था।

".... मैं तुम्हें बताने ही वाला था ...." अस्पष्ट सा कुछ बोला सुधीर। गीता की हथेलियों पर सुधीर की पकड़ तनिक ढीली हो गयी ।

"सुधीर, मैं आपका वर्त्तमान हूँ और एंजेला अतीत। जबतक आप अतीत को हृदय से लगाकर रखेंगे, मुझे वहाँ स्थान कैसे मिलेगा ? क्या आप अतीत के पास लौटना चाहते हैं ?, यदि हाँ, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मेरे लिए सम्बन्ध विच्छेदित करके मायके लौटकर माता - पिता को समझाना दुष्कर होगा किन्तु यहाँ रहकर एक ही छत के नीचे दो अपरिचितों की तरह रहना भी मेरे लिए सरल नहीं रहेगा .... क्या वह आपकी प्रतीक्षा कर रही होगी ?"

"नहीं, नहीं गीता ! ये क्या कह रही हो ! मुझे छोड़ने का सपने में भी नहीं सोचना। हमारे विवाह के प्रति मैं पूरी तरह ईमानदार हूँ। मैं तुम्हें खोना नहीं चाहता। अब समझ आ गया है कि एंजेला से जुडी हुई चीज़ों को सहेज कर रखना मेरी नादानी थी। तुम जैसी समझदार लड़की मेरी जीवन संगिनी है। मैं बहुत भाग्यशाली हूँ .... पर लगता है मैंने सब गड़बड़ कर दिया है ...." सुधीर मायूस होकर बोला।

गीता ने सुधीर का हाथ पकड़कर कहा, "हम नए सिरे से अपना सफ़र शुरू करते हैं ! ....क्या मैं एक बात कहूँ ?"

सुधीर उत्साहित होकर बोला, "कहो न गीता ....मुझे क्या करना चाहिए .... ये सब उलझे हुए सिरे सुलझाने के लिए मैं कुछ भी करने के लिए तैयार हूँ!"

"सुधीर, हम इस सात नंबर के बक्से से आपके अतीत को निकाल देते हैं और हम दोनों के सुनहरे भविष्य के सपनों से इस बक्से को भर देते हैं !"

गीता का चेहरा ख़ुशी से दमक रहा था। दूसरे ही क्षण वह संभल कर बोली, “यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो.... ।”

गीता चाहती थी कि सात नंबर के बक्से के विषय में सुधीर स्वयं ही निर्णय ले। जब तक ये बक्सा उन दोनों के बीच था, परिस्थितियाँ सामान्य नहीं हो सकती थीं, विशेषकर अब जबकि गीता को पता था कि इस बक्से में क्या है ! सुधीर एंजेला के विषय में अपने माता - पिता से बात करने का साहस नहीं जुटा पाया था। एक - डेढ़ वर्ष अपने असफल प्रेम प्रसंग का शोक मनाने के बाद अंत में गीता से विवाह के लिए हाँ कर दी थी। गीता जैसी सर्वगुण संपन्न पत्नी पाकर वह खुश तो था किन्तु एंजेला की स्मृतियों से भरा सात नंबर का बक्सा उसे गीता से दूर कर देता था।

आज सुधीर कोई गलती नहीं करना चाहता था। उसने गीता की हथेली कस कर पकड़ी और कहा, “मैं कल ही, बल्कि आज ही उस बक्से को खाली कर देता हूँ .... तुम भी मेरा साथ दोगी न ?”

गीता सुधीर और एंजेला के साथ में बिताये हुए क्षणों के साक्ष्यों से भरे बक्से में तांक - झाँक नहीं करना चाहती थी अतः उसने कहा, “नहीं सुधीर, उसे आप खाली करो, फिर मैं उसे हमारी सहेजी हुई चीज़ों से भरूँगी....।”

मुस्कुराते हुए गीता उठी और कैप स्टैंड पर रखी हुई असम की परंपरागत टोपी “झापी” को उठा कर पहन लिया। सुधीर भी मुस्कुराये बिना नहीं रह सका। वह उठकर गराज खोलने जाने लगा तब गीता ने प्रेम से हाथ थामकर उसे रोक लिया और कहा, “अब रात बहुत हो गयी है। कल रविवार है, आराम से कर लेना। अभी सो जाते हैं। कल नया सवेरा होगा।”

****

सुधीर ने आदित्य के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, “उस रात यदि तुम्हारी माँ धीरज नहीं रखती और बिना सबकुछ जाने - सोचे आवेग में आकर मुझसे तलाक ही माँग लेती तो गजब हो जाता .... इन्फेक्ट आज हम दोनों यहाँ नहीं बैठे होते ! मेरे बारे में सच जानते हुए भी तुम्हारी माँ ने मुझे संभाला। कॉलेज के बाद मैं और एंजेला न कभी मिले, न ही किसी भी तरह से संपर्क में रहे।

मेरी यह नासमझी ही थी कि मैंने एंजेला की यादों को संभाल कर रखा था। गीता ने न सिर्फ मुझे गलती करने से बचाया बल्कि तुम्हारे दादा - दादी और नाना - नानी के सम्मान को भी बनाये रखा।"

"विवाह केवल दो व्यक्तियों के बीच का सम्बन्ध ही नहीं होता, बल्कि दो परिवार जन्मों - जन्मों के लिए जुड़ जाते हैं। तुम्हें तो केवल शक है कि सौम्या को जो फोन आते हैं, तो उस व्यक्ति से सौम्या का भी सीधा और गहरा सम्बन्ध होगा ही ! किन्तु मेरे किस्से में तो सब कुछ पारदर्शी काँच की तरह साफ़ था।"

आदित्य ने सिर हिला कर हामी भरी।

सुधीर भावुक होकर आगे बोलते रहा, " तुम्हारी माँ ने उस रात मुझे क्षमा तो कर दिया था पर एक प्रश्न पूछा था जिसका उत्तर मैं तब शीघ्र ही नहीं दे पाया था। उसने पुछा था "सुधीर यदि आपकी जगह मेरे जीवन में सात नंबर का बक्सा होता तो आप क्या करते ?"

"गीता ने सच्चाई जाननी चाही। मैंने सच कहा कि शायद उसे तत्काल ही क्षमा नहीं कर पाता .... मैं ने देर से ही सही पर सच बता दिया तो चूँकि तुम्हारी माँ का हृदय विशाल था, उसने मुझे तत्काल अपना लिया। मैं इसके लिए उसका जन्मों - जन्मों तक आभारी रहूँगा ....जहाँ तक मेरी बात है कि यदि गीता के जीवन में सात नंबर का बक्सा होता तो मेरी क्या प्रतिक्रिया होती .... मुझे संभवतः अधिक समय लगता ये स्वीकारने में.... क्योंकि पुरुष मन के विषय में स्त्री की तुलना में कमज़ोर होता है। स्त्री स्वभावगत करुणामयी होती है ....बेटा, मैंने तुम्हारी माँ के साथ अपने जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा बिताया है और मुझसे अधिक भाग्यवान पुरुष इस सँसार में कदाचित कोई नहीं होगा ! आदित्य बेटा, अभी हमें सच नहीं पता है, क्योंकि तुमने पूछा नहीं है तो फिर किस आधार पर सौम्या को दोषी मान लिया जाये ? और यदि सच में कोई 'सात नंबर का बक्सा' उसके जीवन में है भी तो भी उसे एक मौका तो मिलना ही चाहिए न अपने वर्त्तमान और भविष्य में से एक को चुनने का, जैसा मौका मुझे सालों पहले तुम्हारी माँ ने दिया था !"

आदित्य चुपचाप सुन रहा था। आज मम्मी - पापा के जीवन के इतने बड़े सच से उसका साक्षात्कार हुआ था। केवल शंका के आधार पर इतनी प्यारी सौम्या को वह कैसे छोड़ सकता था ! जबकि हो सकता है, कि वह व्यक्ति ही सौम्या को तंग कर रहा हो। यदि सौम्या का कोई अतीत है भी, तो वह अपनी इच्छा से आदित्य के साथ विवाह के लिए तैयार हुई थी। उस पर कोई दबाव नहीं था। अर्थात वह अपने अतीत को भुलाकर आगे बढ़ना चाहती थी। सौम्या से बात न करके, उसकी अवहेलना करके आदित्य दोनों के लिए समस्या खड़ी कर रहा था क्योंकि दोनों के परस्पर संवाद के बिना समस्या का समाधान नहीं मिल सकता था। आदित्य ने तय किया कि अभी घर जाकर सौम्या से बात करेगा, उसे विश्वास में लेकर फोन करने वाले के बारे में पता करेगा और उसे करारा सबक सिखाएगा ताकि भविष्य में वह फिर ऐसा कुछ न कर सके।

आदित्य ने अपने पिता से कहा, "मैं समझ चुका हूँ पापा। मैं नाहक ही सौम्या पर शक कर रहा था। बल्कि उसे इस समय मेरी सबसे ज्यादा ज़रुरत है। मैं आज ही उस फोन करने वाले की खबर लेता हूँ।"

सुधीर हँस पड़ा, "चल पार्टनर, दोनों ही घर चलते हैं। तेरी मम्मी को भी ये बताना है। सुबह से वह परेशान है। और रास्ते में सौम्या के पसंद के रसगुल्ले भी तो लेने हैं।"

"पापा, संदीप अंकल आपका इंतज़ार कर रहे होंगे !" आदित्य ने याद दिलाया।

सुधीर मुस्कुराकर बोला, "फोन पर बता दूँगा ....अभी घर चलते हैं !"

बाप - बेटा ख़ुशी - ख़ुशी घर पहुँचे। आदित्य चिर परिचित रूप में गुनगुना रहा था। सौम्या को देखते ही बोला, "सौम्या, जल्दी तैयार हो जाओ। चलो, तुम्हारे मम्मी - पापा से मिल आते हैं। आकर हमें सारी पैकिंग भी करनी है। तुम्हारे सर्टिफिकेट्स, डाक्यूमेंट्स आदि सबकुछ ध्यान से रखना है। देखो, तुम्हें वहाँ से जल्दी तो वापस भेजूँगा नहीं मैं, ठीक है न ?" आदित्य के आँखों में अपने लिए वही पहले जैसा प्रेम देख कर सौम्या लजा गयी और

नाश्ता लगाने के बहाने वह रसोई में भाग गयी। आदित्य भी मुस्कुराते हुए फ्रिज से पानी निकालकर पीने लगा।

ये बदलाव देखकर गीता अत्यंत प्रसन्न थी। चकित भी थी। उसने आँखों के इशारे से ही सुधीर से इस बदलाव का कारण पूछा तो सुधीर ने हँसते हुए कहा "कुछ नहीं। आदि और सौम्या के जीवन में आने वाली उलझनों को सुलझाने के लिए मैंने आदि को सात नंबर के बक्से की कहानी बता दी है।"

गीता भी सुधीर के साथ हँस पड़ी।

****

काला टीका

जब से डॉ.भास्कर मंच पर आये थे, सारा माहौल ही बदल गया था। एक प्रसिद्ध मीडिया हाउस ने अपने लोकप्रिय टी.वी. चैनल के लिए तीन दिन की संगोष्ठी का आयोजन किया था जिसमें लगभग सभी क्षेत्रों जैसे राजनीति, खेल, मनोरंजन, चिकित्सा, विज्ञान, इंडस्ट्री आदि से गणमान्य लोग भाग लेने वाले थे। मंच पर डॉ.भास्कर का साक्षात्कार एक आकर्षक और लोकप्रिय एंकर ले रही थी। वह घुमा - फिरा कर सवाल किये जा रही थी जिनके उत्तर डॉ.भास्कर विनोदप्रियता से देते जा रहे थे। उनकी वाकपटुता एवं हास्य से हॉल में सभी आनंदित थे। मंच के सामने ही एक गोल सुसज्जित मेज पर एक महिला बैठी थी जो मंद - मंद मुस्कुराती हुई साक्षात्कार का आनंद ले रही थी। उसने हलके नीले रंग की रेशमी साड़ी, मोतियों की माला और कानों में बून्दे पहन रखे थे। सुनहरे चश्में के फ्रेम से झाँकती उसकी आँखें प्रभावपूर्ण थीं।

बातें करते हुए कभी - कभी डॉ.भास्कर उस महिला की ओर देख लेते तो उसका मुख और कांतिवान हो उठता, और होठों पर स्मित और फ़ैल जाता। उस महिला के बाल कन्धों तक लम्बे थे जिन्हें रंगा हुआ नही था अतः बालों में सफेदी झलक रही थी। किन्तु ये श्वेत - श्याम केश उस महिला के व्यक्तित्व को और निखार रहे थे। माथे पर बड़ी सी मैरून रंग की बिंदी लगायी हुई थी। बालों की एक मोटी लट जब - तब माथे पर ढलक आती जिसे वह महिला अँगुलियों से कान के पीछे दबाने का असफल प्रयास करती। इस प्रक्रिया में महिला के माथे का बायाँ भाग दिख जाता जहाँ एक काला बड़ा सा दाग़ उजागर हो जाता जो कि अन्यथा बालों की लट से ढँक सकता था।

बालों के पास से आरंभ होकर वह दाग़ बायीं भौं से थोड़ा ही पहले मुड़कर, बायीं कनपटी की ओर जाते हुए कान की लव पर जाकर समाप्त होता

था। उस महिला की मेज पर बैठे हुए लोग तथा आस - पास के कुछ अन्य लोगों का ध्यान उसके इस दाग़ पर गया और वे कानाफूसी करने लगे। इससे और भी लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ। परन्तु इन सबसे अनभिज्ञ वह महिला पूरी तन्मयता से डा. भास्कर का साक्षात्कार सुन रही थी।

डॉ.भास्कर एक बहुत ही सफल प्लास्टिक सर्जन थे। देश - विदेश में उनका बहुत नाम था, पहचान थी। साक्षात्कार के अंत में एंकर आरती ने डॉ.भास्कर से उनके प्रेरणा स्त्रोत्र के बारे में पुछा तो भास्कर ने सीधे दर्शकों की ओर देखते हुए कहा, "मेरी प्रेरणा, मेरी शक्ति, हिम्मत, मेरी सबकुछ मेरी पत्नी श्रीमती पूर्णिमा सरल हैं ....वह सामने ही बैठी हैं ...." कहते हुए भास्कर उठकर मंच के सामने की गोल मेज तक आया और हाथ बढ़ाकर अपनी पत्नी से मंच पर आने का आग्रह किया। पूरा हॉल तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा।

वह नीली साड़ी वाली महिला अर्थात पूर्णिमा सरल गर्वित भाव से उठी और अपने पति के समक्ष जा खड़ी हुई। भास्कर ने सप्रेम पूर्णिमा का हाथ पकड़ा और उसे मंच पर ले आया। मंच की सीढ़ियाँ चढ़ते समय भास्कर थोड़ा लड़खड़ाया तब पूर्णिमा ने तत्परता से भास्कर को सहारा दिया।

एंकर आरती ने मंच पर आई महिला का परिचय बड़ी प्रसन्नता के साथ कराया, "लेडीज़ एंड जेंटलमेन .... आईये, हम स्वागत करते हैं प्रसिद्ध उपन्यासकार पूर्णिमा सरल जी का, जो हमारे चहेते डॉ.साहब की 'बेटर हाफ' भी हैं !...."

तालियाँ रुक नहीं रहीं थीं। एंकर भी उस आदर्श जोड़ी को देख कर सम्मोहित सी खड़ी थी। उसने माइक डॉ.भास्कर के हाथों में दे दिया।

भास्कर ने उत्साह से कहा, "मेरी जीवनसाथी पूर्णिमा, मेरी प्रेरणा, मेरी गुरु भी है .... इसकी लगन और उत्साहवर्धन के कारण ही मैं आज इतना काबिल हो सका कि यहाँ खड़ा हूँ .... ये पीछे न पड़ती तो अपन तो दसवीं में ही लटक गए थे बॉस !" भास्कर ने नाटकीयता से आँखें घुमाते हुए कहा तो सभी हँस पड़े।

"वो कैसे डॉ.साहब ?" किसी महिला ने पूछा । लोग, खास कर के महिलाएँ भास्कर के सुदर्शन व्यक्तित्व से आकर्षित हो जाती थीं ।

"क्या पूर्णिमाजी आपको पढ़ाती थीं ?" किसी ने चुटकी ली । पूर्णिमा बहुत सुन्दर तो नहीं थी परन्तु उसका गरिमामयी व्यक्तित्व अपनी छाप छोड़ जाता था । और हाँ, उसका माथे का काला दाग़ तो लोगों में कौतुहल का विषय था ही !

किसी ने पहले से पूछे हुए सवाल पर ही जोड़कर पूछा, "सर, आपने मैडम के चेहरे की प्लास्टिक सर्जरी क्यों नहीं की .... या फिर मैडम को आप पर विश्वास नहीं !?"

इस अभद्र टिप्पणी को सुनकर सभी लोग सकते में आ गए । एंकर अवसर की संवेदनशीलता को भांपते हुए झटपट आगे बढ़ी और लोगों के समूह को संबोधित करते हुए बोली, "अरे, ये सवाल - जवाब तो चलते ही रहेंगे ....अभी चाय का समय है .... तो हम फिर मिलते हैं कुछ समय के बाद, कुछ और मेहमानों के साथ .... ।"

लेकिन भास्कर उस टिप्पणी से विचलित नहीं हुआ । पूर्णिमा का हाथ कसकर थामे हुए वह बोला, "नहीं आरती जी, मैंने इनके सवालों का बुरा नहीं माना । लगभग सभी जगह, जहाँ मैं जाता हूँ, सभी लोग जानना चाहते हैं कि पूर्णिमा के माथे पर ये निशान क्यों है और मैंने अभी तक इसे हटाया क्यों नहीं ?!" .... फिर भास्कर ने मुड़कर लोगों की ओर देखा और कहा, "बचपन में लगभग हम सभी को हमारी माताओं ने काला टिका लगाया होगा बुरी नज़र से बचाने के लिए, हमारी रक्षा करने के लिए । मैं इस मान्यता के पक्ष या विरोध में कुछ नहीं कहना चाहता, बस यही कहना चाहता हूँ कि ये मेरी पत्नी के माथे पर जो निशान है, वह ईश्वर प्रदत्त है और पूर्णिमा और मेरा संयुक्त निर्णय है कि हम यह निशान नहीं हटायेंगे - यह निशान जितना पक्का है, उतना ही पक्का हमारा साथ है, हमारा प्यार है ।"

भास्कर ने पूर्णिमा के कन्धों पर अपनी बाँह का घेरा डालते हुए उसके माथे के काले निशान को धीरे से चूम लिया । हॉल में सारे लोग भास्कर की

ख़ुशी में सम्मिलित होकर झूम उठे। पूर्णिमा भास्कर के इस सार्वजनिक प्रेम प्रदर्शन से असहज हो गयी थी, लाज से सकुचा गयी थी। किन्तु साथ ही में वह इस क्षण को मन भर के जी लेना चाहती थी। वह स्वयं एक सफल उपन्यासकार थी। बड़ी बेटी विवाह के पश्चात् पुणे चली गयी थी और अपने पति के साथ इंटीरियर डिज़ाइनिंग का सफल व्यवसाय कर रही थी। छोटी बेटी पापा की ही तरह डॉक्टर बन चुकी थी और स्पेशलाइज़ेशन के लिए विदेश में पढ़ रही थी। आज ही वह लौटने वाली थी।

पूर्णिमा चाय के लिए रुकी नहीं। उसे छोटी बेटी को एअरपोर्ट से लेने के लिए जाना था। भास्कर ने ड्राईवर को आवश्यक निर्देश दिए और पूर्णिमा को कार में विदा किया। उसे स्वयं भी टी.वी. स्टूडियो से अपने क्लीनिक जाना था क्योंकि कुछ ज़रूरी सर्जरी के केस थे जिन्हें वह अगले दिन के लिए टाल नहीं सकता था।

बड़ी सी वातानुकूलित कार में बैठी पूर्णिमा अभी - अभी हुए भास्कर के साक्षात्कार के विषय में सोचने लगी थी। सच ! कितना लोकप्रिय था भास्कर .... या कि 'सूरज' ! यही तो नाम पता था पूर्णिमा को, जब उसका विवाह भास्कर से हुआ था !.... भास्कर का प्रेम से उसे मंच पर बुलाना .... और माथे के काले दाग़ को स्नेह से चूमना ! उनके विवाह को पैंतीस वर्ष हो चले थे। उसका सूरज उससे कितना प्रेम करता था, कितना सम्मान करता था ! सोचते हुए पूर्णिमा अपने विवाहित जीवन के इतने सारे वर्ष पुनः जी गयी। उसके मानस पटल पर सारी स्मृतियाँ गहरी अंकित थीं, कुछ भी नहीं भूली थी वह। जैसे सोना तप कर कुंदन होता है, वैसे ही पूर्णिमा और सूरज का प्रेम और विश्वास भी कुंदन हो गया था। आज समाज में उन्हें सफलतम जोड़ा माना जाता था, परन्तु यहाँ तक की यात्रा सरल नहीं थी।

पूर्णिमा को वो सारे दिन, घटनाएँ एक - एक कर याद आने लगे जब वह विवाह करके अपने ससुराल आयी थी। अपने मायके से यहाँ, इस शहर तक वह लम्बा रास्ता तय करके आई थी। हालाँकि उसके साथ उसके ससुराल वाले सभी थे परन्तु वह बहुत अकेला अनुभव कर रही थी। पटना से मथुरा तक की यात्रा बहुत थकाने वाली थी। जून का महिना था। सोलह वर्ष की

पूर्णिमा सुहाग के जोड़े में थी। सारे रास्ते जून की तपिश वाली धूप लगती रही किन्तु पूर्णिमा ने ट्रेन की खिड़की के पास बैठकर ही पूरी यात्रा की थी। आँखों के सामने से विपरीत दिशा में भागते पेड़ों, खेत - खलिहानों, छोटे गाँव - कस्बों, नदियों, पहाड़ों को देखती रही.... ऐसे ही उसका मायका भी पीछे की ओर 'भाग' गया था, छूट गया था। आँखें रो - रो कर सूज गयीं थीं। भूख - प्यास अलग लग रही थी। द्वितीय श्रेणी के डिब्बे में पूर्णिमा के ससुरालवालों के अतिरिक्त भी बहुत सारे लोग बैठे या खड़े थे। पर उसकी बरात सास - ससुर, दो ननंदें और उसका 'पति' .... बस इतने लोगों की ही थी।

विवाह बहुत ही आनन - फानन में हुआ था। पूर्णिमा की विधवा माँ ने जितना हो सका, अपने सामर्थ्य के अनुसार अपनी बेटी को स्वर्णाभूषण दिए थे, जो विवाह के तुरंत ही बाद सास ने रखवा लिए थे कि बच्ची है, कहीं खो न दे इन महँगी चीज़ों को !

पूर्णिमा अपने घूँघट की ओट से अपने पति को देख सकती थी। वह अट्ठारह - उन्नीस वर्ष का दुबला - पतला किशोर था जो कि उससे दूर वाली खिड़की के पास बैठा हुआ, अनवरत खिड़की के बाहर ही मानो शून्य में देखते जा रहा था। घुटने मोड़ कर ठोड़ी के पास खींच रखे थे। साफ़ लगता था कि वह इस असमय, बेमेल विवाह के पक्ष में नहीं था। उसने विवाह की रस्में निभाने के समय सब से अधिक हाय तौबा मचाई थी।

ख़ुशी से तो पूर्णिमा ने भी विवाह नहीं किया था। उसने भी बेमन से सारी रस्में निभायीं थीं। जाने क्यों उसके सास - ससुर और उसके दोनों ताऊजी इस विवाह के लिए उतावले थे ! अब क्या ही हो सकता था। जो था, जैसा था, यही पूर्णिमा का जीवन था।

विवाह, रस्में और विदाई के रोने - धोने के बाद ढलती दोपहर को पूर्णिमा अपने इस नए परिवार के साथ ट्रेन में चढ़ा दी गयी थी। उस सांझ और रात को अपनी माँ और बहन के वियोग में पूर्णिमा ने कुछ नहीं खाया था। अगली सुबह से ट्रेन में पूर्णिमा का भूख और प्यास से बुरा हाल था। एक बार ससुरजी ने औपचारिकतावश सास से कहा भी कि बहू से पूछ लो, कुछ खाना तो नहीं

है। सास ने अनमने भाव से पूछ लिया जिसपर पूर्णिमा ने सकुचाकर न बोल दिया था। बस, फिर क्या था, सारे रास्ते किसी ने कुछ नहीं पूछा या खाने को दिया ! देर सांझ को ससुरजी ने फिर कहा कि कम से कम चाय बिस्कुट तो खा ही लेना चाहिए नयी बहू को, तो सास मुँह बिचका कर बोली, "अब समधियाने से छप्पन भोग तो बाँध कर दिए नहीं हैं, जो भी रूखा सूखा है उसी को खा ले बहू !" सास अपने पल्लू से खुद को ही पंखा झलने लगी। पूर्णिमा की भूख के मारे आंतें मानों ऐंठ रहीं थीं। परन्तु वह कुछ नहीं बोली, न ही कुछ खाने को माँगा। वह घूँघट की आड़ से अपने पति को देख सकती थी। किन्तु वह अपने चेहरे पर निरापद भाव लेकर बैठा था। उसके ऐसे रूखे व्यवहार और डब्बे में चल रही कानाफूसी से पूर्णिमा को इतना अनुमान तो हो ही गया था कि उसका पति इस विवाह के पक्ष में नहीं था। उसने एक बार अपनी अनिच्छा भी प्रत्यक्ष कर दी थी यह कह कर कि, आप सबको बहू मिल गयी है न ? इसी में खुश रहो। मुझ से और कुछ अपेक्षा नहीं करना !

विवाह तो पूर्णिमा भी नहीं करना चाहती थी। किन्तु उसका दुःख कौन समझता ! पिता की असमय मृत्यु के बाद उनका गुजर - बसर दूभर हो गया था। पूर्णिमा ने अपनी पढ़ाई छोड़ कर वहीं गाँव देहात में ही छोटे बच्चों को पढ़ाना आरम्भ कर दिया था। पिता की थोड़ी बहुत पेंशन आती थी। उसकी माँ, सरलादेवी सिलाई का काम करने लगी थी। बस पूर्णिमा यह चाहती थी कि उसकी छोटी बहन आगे पढ़ती रहे। पिता के जाते ही ये दोनों बहनें उनके दोनों ताऊजी को बोझ सी लगने लगीं थीं। पहला अवसर मिलते ही उन्होंने बड़ी बेटी अर्थात पूर्णिमा का विवाह करवा दिया और कर्तव्यों से मुक्ति पा ली। छोटी बहन का ऐसा हश्र न हो, इसका वचन पूर्णिमा ने चलते समय अपनी माँ से लिया था।

मथुरा पहुँचने के बाद टेम्पो किराये पर लेकर पूरा मिश्र परिवार वृन्दावन के मार्ग पर चल दिया। वास्तव में वृन्दावन से थोड़ा पहले ही उनका क़स्बा पड़ता था जहाँ मिश्रजी का एक विशाल, पुश्तैनी हवेलीनुमा घर था। दो मंजिला घर जिसमें कई कमरे थे, बीच में आँगन था। घर पहुँचते ही सास और ननंदें हरकत में आ गयीं। द्वार पर ही लाठी टेकती, दोहरी हो चुकी कमर वाली एक

बूढ़ी स्त्री ने स्वागत किया। पूर्णिमा ने यंत्रवत उस स्त्री के पाँव छुए। वह सूरज की दादी थी। दादी ने पोपले मुख से पोत बहू को ढेरों आशीष दिए। आँगन में एक खाट खींचकर मोटी दरी बिछा दी गयी और पूर्णिमा की दोनों ननंदों ने लगभग खींचते हुए पूर्णिमा को वहाँ बिठा दिया। दादी सास भी उत्सुकता से पास ही बैठ गयी। प्यास के मारे पूर्णिमा का बुरा हाल था। उसने हिम्मत करके अपनी बड़ी ननंद से कहा, "जीजी, थोड़ा पानी मिल जाता तो ....बहुत जोर से प्यास लगी है .... ।"

गट - गट पानी पीती ननंद ने झल्लाकर कहा, "दे रही हूँ भाभीजी ! मैं भी थकी हुई हूँ .... थोड़ा धीरज तो धरो !"

"राधे राधे ! अरे बिटिया, यात्रा में थकी हुई है नयी बहू ....इसे तो छाछ दे दो .... ।" दादी ने प्यार से पूर्णिमा की ठोड़ी अपने कांपते हाथ से पकड़ कर कहा "बहुरिया अब तो कान्हाजी के वृंदावन में आ गयी हो, ... दूध, दही, छाछ पीने की आदत डाल लो !"

"हाँ, बस यही थकी हुई है .... हम तो सब, जैसे ए. सी. वाले डिब्बे में पैर फैला कर सोते हुए आये हैं !" ननंद भड़की।

दूसरी ननंद भी पीछे क्यों रहती !....वह बोली, "वाह दादी ! इसके आते ही आप इसकी तरफदारी करने लगीं ! ....हम भी धक्के खाते हुए आये हैं। भैया के ससुराल वालों ने हमें ए. सी. के टिकिट तो दिए नहीं थे जो हम आराम से आ सकें !"

"अरी ! चुप रहो लड़कियों ! आते ही शुरू हो गयीं ? अभी मोहल्ले पड़ोस से औरतें आने लगेंगीं बहू की मुँह दिखाई के लिए .... तब तक तो चुप रहो ! .... राधे राधे .... कुछ तो बुद्धि आवे इन दोनों में !" सास अलग सिर पीट रही थी।

हवेली के पड़ोस में एक मंदिर था। वहाँ की पंडिताइन के भरोसे ही सूरज की दादी को छोड़कर पूरा परिवार पटना गया था। वही पंडिताइन एक मटका भर कर ताज़ा बिलोया हुआ छाछ दे गयी थी।

तभी आँगन में पूर्णिमा के पति सूरज ने प्रवेश किया। वह थके कदमों से लड़खड़ाते हुए चल रहा था। उसे देखते ही सास भाग कर गयी पास में और उससे छाछ पी लेने का आग्रह करने लगी।

"मन पहले से ही बहुत खट्टा है। ऊपर से नहीं पीना ये छाछ !" सूरज के मुख पर क्रोध झलक रहा था।

"पी ले न बेटा, देख.... कितना थका हुआ दिख रहा है ...." सास ने चिरौरी की। बहनों ने भी बहुत प्रयत्न किया। सूरज तमक कर बोला, "आप सब के मन का हो गया न ! अब मेरे पीछे मत पड़ो।"

सूरज लंगड़ाते हुए सीढ़ियों की ओर बढ़ गया। पूर्णिमा ने देखा - सूरज का दाँया पैर या तो चोट खाया हुआ था, या पोलियो था.... ?, या कोई बचपन की चोट जो ठीक ही न हो पायी हो ! फेरों के समय भी पूर्णिमा का ध्यान गया था पर तब उसे स्वयं की ही सुध नहीं थी ! गौर वर्ण का सूरज नाम की ही भांति तेजस्वी और कुलीन नैन - नक्शों वाला था। उसका मुख गर्मी, थकान और क्रोध के कारण लाल तप्त हो रहा था। वह रुका नहीं। अपनी पत्नी की ओर मुड़कर देखा तक नहीं। भरी आँखों से पूर्णिमा घूंघट की ओट से अपने पति को देखती रही कि कदाचित एक बार तो वह मुड़कर देखेगा, रूककर बात करेगा, कुशल क्षेम पूछेगा... ! किन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। वह सूरज को ऊपर जाते हुए तब तक देखती रही जबतक सूरज आँखों से ओझल न हो गया। सांझ पूरी ढल गयी थी। आकाश का सूरज छिप गया था। सांझ की लालिमा रात के अँधेरे से मिलकर आकाश को मटमैला धूसर कर रही थी।

पूर्णिमा का सूरज भी ऊपरी मंजिल के गलियारों की ओट में कहीं खो सा गया था। और उसे भी अब आगे का जीवन अंधकारमय लगने लगा था।

आस - पास की महिलायें आ जाएँ, इससे पहले दोनों ननंदें पूर्णिमा को खींचकर दादी के कमरे में ले गयीं और उसकी अटैची से एक साड़ी निकालकर पहनने को दी और जल्दी से तैयार हो जाने की हिदायत दी। जैसे - तैसे पूर्णिमा तैयार हुई तो उसे वापस आँगन में बिछी खाट पर बिठा दिया गया। सास ने

भाग दौड़ करके जलपान का प्रबंध कर लिया था। पूरे समय उसका बड़बड़ाना भी कायम था। ससुरजी पेढ़े बंधवा लाये थे।

मुँह दिखाई के लिए महिलाएँ आने लगीं। मुँह दिखाई याने क्या ! ....महिलाएँ आतीं, एक के बाद एक..., पूर्णिमा का घूँघट उठातीं, पूर्णिमा झुककर प्रणाम करती, उसे सब सदासुहागन का आशीर्वाद देतीं, पूर्णिमा के हाथ में नेग रखतीं और अपनी सहेलियों के पास जाकर बैठ जातीं। यहाँ तक ठीक था। लेकिन फिर यही महिलाएँ आपस में खुसर - पुसर करने लगतीं !

पूर्णिमा को कुछ - कुछ अस्पष्ट सा सुनाई दे रहा था। सुनकर वह अपने अश्रुओं को बड़ी कठिनाई से नियंत्रण में रख पा रही थी। उसे पता था कि किस बात पर उन औरतों में कानाफूसी चल रही है। उन सब के आश्चर्य और कौतुहल का विषय वह स्वयं नहीं वरन उसके माथे पर फैला विशाल काला दाग़ था।

जो कुछ भी नेग में आ रहा था वह उसकी सास अपने पास रखती जा रही थी। वाणी में मिश्री घोल कर बात कर रही थी और समय - समय पर पूर्णिमा से चाय कॉफ़ी वगैरह पूछ रही थी।

जाते - जाते कुछ एक वाचाल महिलाएँ बोलना न भूलीं, "मिसराइन, बहू तो एकदम चाँद का टुकड़ा है,

नाम भी देखो पूर्णिमा ही है .... देखो तो, चाँद अपने साथ दाग़ भी ले कर आई है !" और फिर टिप्पणी करने वाली वह महिला जोरो से हँस पड़ी।

"अमावसी का ही चाँद समझो इसे ...." अन्य महिला ने जोड़ा।

"बहुरिया को नज़र न लगे, इसका इंतज़ाम तो ये घर से ही कर के ले आई है .... है न बहुरिया ?" अगली ने पूर्णिमा का घूँघट ही पूरा उठा कर रख दिया। वहाँ बैठी अन्य महिलाओं का "हाय हाय....!" का सम्मिलित स्वर सुनाई दिया। वो महिलाएँ विस्फारित नेत्रों से पूर्णिमा को ही देख रहीं थीं और काना - फूसी करने लगीं।

पूर्णिमा का मन किया कि अभी के अभी यह धरती फट जाये और वह धरती मैय्या की गोद में हमेशा के लिए समा जाये। उसकी रुलाई फूट पड़ी।

इतनी देर से बाँधा हुआ संयम टूट गया। अश्रु पलकों के तटबंध तोड़ कर बह चले।

"काय री बिहारी की बहू ! ऐसे बर्ताव करत हैं का ? देखो बिटिया को रुवा दिया !.... राधे राधे .... क्या तमासा लगा है यहाँ ?" दादी ने आगे बढ़ कर पूर्णिमा के अश्रु पोंछे और उसका घूँघट ठीक किया। दादी का ये रौद्र रूप देख कर सारी महिलाएँ खिसिया गयीं और बाद में किसी ने अनावश्यक प्रपंच नहीं किया।

धीरे - धीरे सभी महिलाएँ चली गयीं। आँगन खाली हो गया। बस अब घर के ही लोग थे। सास ने चैन की सांस ली और खाट पर ही पैर पसार कर बैठ गयी। दोनों ननंदें मिठाई और नाश्ते पर हाथ साफ़ करने लगीं। दादी सास ने ही उठकर पूर्णिमा को कुछ खा लेने का आग्रह किया जिसे वह मना नहीं कर पायी।

थोड़ी देर में एक कार हवेली के सामने आ कर रुकी। उसमें से दो किशोर वय के लड़के, एक स्त्री और एक पुरुष उतरे। उस संभ्रांत महिला ने दादी के पैर छुए , और पूर्णिमा का घूँघट उठाकर आशीर्वाद दिया। पूर्णिमा की गोद में एक महँगी साड़ी, मिठाई, गहनों का डब्बा और कई अन्य उपहार रखे। ये सब देखते ही पूर्णिमा की दोनों ननंदें लगभग चीखते हुए भागकर आयीं और उस स्त्री की गलबहियाँ लेने लगीं।

"हाय चाची, कितनी सुन्दर और महँगी साड़ी पहनी है आपने ! .... आप हमेशा बड़े अच्छे कपड़े पहनती हो ! ....और ये आपके कान के बून्दे .... कित्ते सुन्दर हैं ! कब बनवाये ? .... हमारी शादी में भी ऐसे ही बनवाकर देना।" बड़ी ननंद चहक कर बोली।

"अरे, बून्दे ही क्यों .... सारे गहने चाची से बनवायेंगे .... अम्मा तो फिर पुराने डिज़ाइन के ही गहने बनवा देंगी !"दोनों ननंदों ने समवेत स्वर में ये सब कहते हुए पूर्णिमा के उपहारों को झपट लिया और सबकुछ खोल कर देखने लगीं।

"चाची, ये क्या ....केवल एक साड़ी ? ....दो देती तो हम दोनों के लिए एक - एक हो जाती !" छोटी ननंद बोली।

बड़ी ननंद फूहड़ पने से हँसकर बोली, "अब इसी साड़ी के दो टुकड़े करके हम बहनें दुपट्टे बना लेंगीं ....क्यों छोटी ?" दोनों बहनें साड़ी को हाथों में लेकर खींच - तान करने लगीं।

पूर्णिमा को समझ आया कि यह संभ्रांत स्त्री उसकी चाची सास है। उसने आगे बढ़कर पाँव छुए। दोनों किशोर वय के लड़के अपनी 'भाभी' को प्रणाम करके अपने भाई सूरज से मिलने ऊपर के कमरे में चले गए। चाचा ने भी हृदय से नयी पुत्रवधू को आशीर्वाद दिया और पूर्णिमा के ससुर से बात करने लग गए।

इस परिवार का आना पूर्णिमा को जून के महीने की उमस भरी रात में ठंडी बयार के झोंके जैसा लगा। पूर्णिमा से कुछ दूर तुलसी चौरे के पास उसकी सास और चाची सास खड़े थे। उनकी भाव भंगिमाएँ प्रसन्नता या उल्लास का परिचय नहीं दे रहीं थीं। पूर्णिमा की सास की भृकुटी तनी हुई थी, पेशानी पर बल थे परन्तु गर्दन झुकी हुई थी। चाची सास कुछ समझाने के लहज़े में बात कर रही थी। बहुत कुछ सुनाई दे रहा था।

"इतनी जल्दी क्या थी ब्याह की ? अभी सूरज की उम्र ही क्या है ....अब तो पढ़ाई में तो और भी मन नहीं लगेगा ! ....जीजी.... कहीं दहेज के चक्कर में तो नहीं कर दी शादी ? ....जेठजी एक बार तो 'इनसे' भी मशवरा कर लेते .... इतनी जल्दी क्या थी ! और जल्दबाजी में आप लोगों को मिला ही क्या!"

अपनी वाणी नीची करके चाची ने बात जारी रखी, " थोड़ा रुक कर, समय के हिसाब से ब्याह करते तो घर और ठाठ - बाट, सब कुछ मन माफिक मिलता ....सबसे बड़ी बात, लड़की तो सुन्दर मिल ही जाती ....अब देखो, साधारण नैन नक्श और ऊपर से ये काला धब्बा ! ....मैं लड़की को क्या दोष दूँ.... वह तो बेचारी गाय की तरह है, जिस खूंटे से बाँधो, बंध ही जायेगी ....पर आप लोगों को और बहू के घर वालों को सोचना तो चाहिए था ....ये कोई उम्र है भला शादी की ! ....मैं कहे दे रही हूँ, सूरज कभी माफ़ नहीं करेगा !"

“और जीजी, आप लोग तो बस गर्मी की छुट्टियाँ बिताने आपके मायके गए थे,फिर ये शादी कराने का विचार कैसे आ गया ? ....और वो आपके समधियाने वाले भी मान गये.... ! हमें तो पटनेवाले मेरे ममेरे भाई ने फोन करके बताया कि जो गणित वाले शर्माजी शिक्षक थे, जो पिछली जाड़ों में चल बसे थे, उनकी बेटी से सूरज का ब्याह हो रहा है.... “ चट मंगनी, पट ब्याह !” कहते - कहते चाची सास ने एक हथेली पर दूसरी हथेली की मुट्ठी बना कर मारी। पूर्णिमा को लगा कि जैसे उसे ही घूँसा मारा गया हो।

चाची सास का गुस्सा शांत नहीं हुआ था अभी। वह एक दो क्षण चुप रहकर फिर से बोल उठी, “मेरी तो समझ में ये नहीं आ रहा जीजी, कि आपको बहू लाने की इतनी जल्दी क्यों थी ! अरे, केवल सगाई करके भी तो आ सकते थे। फिर जब सूरज अपने पाँवों पर खड़ा हो जाता, कुछ पढ़ - लिख लेता तब कर देते शादी ! .... ऐसे ही घर में इतने लोग हैं, एक सदस्य और बढ़ गया। हम सब को पता है कि, भाईसाहब की ज्योतिष - पतरी और पंडिताई से घर नहीं चल पा रहा है। अब ‘ये’ अगले महीने से और अधिक पैसे भेजेंगे लेकिन फिर भी इन सब बातों पर भी तो गौर करना चाहिए था न ! सूरज पिछले साल फिर फ़ेल हो गया है। अब पता नहीं मन कैसे लगाएगा पढ़ाई में। दोनों बेटियाँ भी पढ़ाई से जी चुरातीं हैं, ...बस गहने, कपड़े, खाने को दे दो .... इसके आगे कुछ समझ नहीं आता दोनों को।”

“बस, बस ! यहाँ बस सुनाने के लिए ही आई हो क्या ? इतना दर्द है तो कम से कम अम्मा को ही अपने साथ ले जाओ। मैं अपने बेटे और बेटियों को संभाल लूँगी !” पूर्णिमा की सास ने गुस्से में कहा।

चाची शांति से बोली, “मेरा ये आशय नहीं था जीजी। सासू माँ चलना चाहें तो मैं ले जाऊँगी.... पर उनका मन वहाँ नहीं लगता है.... चलो, अब तो ब्याह हो ही गया है। अब आगे भी सब ठीक हो जायेगा राधाजी की कृपा से। बहू बहुत दूर से लायी हो जीजी ....लेकिन आपके मायके वाले शहर से आयी है आपकी बहू। राधाजी से मैं प्रार्थना करूँगी कि उसे अपनी बेटी की तरह ही अपनओगी आप ....।”

फिर चाची पूर्णिमा के पास आकर स्नेह से बोली, "बेटा अब से यह तुम्हारा घर है। मैं आती रहूँगी मिलने के लिए।"

चाची की बात पूरी नहीं होने दी बड़ी ननंद ने। वह बोली, "चाचा - चाची के पास फुर्सत कहाँ है ! ये लोग तो नामी डॉक्टर हैं !"

"फिर भी ....पूर्णिमा बेटा कहाँ तक पढ़ी हो तुम ?" चाची ने कहा।

पूर्णिमा ने संकोच करते हुए बताया, "पापा के देहांत के बाद दसवीं की पढ़ाई छोड़नी पड़ी। मैं नौंवी तक पढ़ी हूँ।"

"आगे पढ़ने का मन है ?"

"हाँ !" पहली बार पूर्णिमा की आँखों में चमक आई।

"अच्छा, तो ये मेम साहब पढ़ने जायेंगी और पीछे सारा घर - बार इनकी सास और ननंदें संभालेंगी !" छोटी ननंद चिढ़कर बोली।

चाची कुछ नहीं बोली। बस दोनों हाथों में पूर्णिमा का मुख लेकर स्नेह से बोली, "बिटिया, अपना ध्यान रखना। सूरज बहुत अच्छा लड़का है। थोड़ा गरम स्वभाव का है पर मन का साफ़ है। मैं मिलने आती रहूँगी, बस ये समझना कि चाची का घर ही तुम्हारा मायका है।" पूर्णिमा को जैसे डूबते को तिनके का सहारा मिला। उसने झुक कर चाची को प्रणाम किया।

थोड़ी देर में वे लोग खाना खाकर चले गए। सूरज नीचे नहीं आया खाना खाने। सास ही ऊपर गयी लाडले को खाना खिलाने। ननंदें अपने कमरे में चली गयीं। रसोई समेट कर सास भी अपने कमरे में चली गयी। जाते - जाते पूर्णिमा को कह गयी कि नीचे ही दादी सास के कमरे में वह अपना सामान रख ले और सो जाए , क्योंकि सूरज के कमरे में उसकी पढ़ाई की मेज, कुर्सी और पलंग के बाद और जगह बचती ही नहीं थी !

पूर्णिमा को क्या फर्क पड़ने वाला था ! वह दादी के कमरे में दरी डाल कर लेट गयी। नींद आँखों से कोसों दूर थी। उसे समझ में आ रहा था कि आगे का जीवन बहुत लम्बा, नीरस, बोझिल और कठिनाइयों वाला रहने वाला था। क्या नव वधु का स्वागत ऐसे होता है ! वह अपनी माँ, बहन, अपने शहर से

बहुत दूर एक अनजान, अपरिचित शहर में बेगाने लोगों के बीच आ गयी थी। एक बेमन ही सही परन्तु नाता जुड़ गया था इन लोगों के साथ जिसे तोड़कर वह वापस नहीं जा सकती थी, अन्यथा छोटी बहन का भविष्य संकट में पड़ सकता था। पूर्णिमा आगे पढ़ना चाहती थी। उसकी माँ भी यही चाहती थी कि दोनों बेटियाँ पढ़ लिखकर सफल बनें और अपने पिता का नाम रौशन करें। वह हमेशा अपनी बेटियों को प्रोत्साहित करती थी परँतु इधर परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी बन गयीं थी कि बड़ी बेटी का विवाह करना पड़ा। जैसी परिस्थिति थी, उसे वैसी ही स्वीकारने में भलाई थी।

अगली सुबह से ही पूर्णिमा की कभी न समाप्त होने वाली संघर्ष भरी दिनचर्या आरम्भ हो गयी। भोर होते ही चकरी की तरह पूरे घर में घूम - घूम कर वह काम करती। देर रात तक उसका काम पूरा होता। सास काम में मीन मेख निकालती, ननंदें अलग हुकुम चलातीं, दिन भर कुछ न कुछ खाने को मांगतीं; ससुर का भाव निरापद होता। कहने को पति, लेकिन सूरज तो पूर्णिमा की ओर देखता भी नहीं था। ससुर का, सास पर और ननंदों पर कोई वश नहीं था। निरंकुश सी वो स्त्रियाँ अपनी मनमानी करती रहतीं। कभी - कभी दादी सास पूर्णिमा के पक्ष में बोल भी दे तो कोई ध्यान नहीं देता था। दादी की दलील 'नक्कारखाने में तूती की आवाज़' हुआ करती थी। किसी भी कार्य विशेष में दादी से सलाह लेना ज़रूरी नहीं समझा जाता था।

सूरज को साफ़ सफाई पसंद थी। कपड़े भी सुरुचि पूर्ण, साफ़ सुथरे पहनता था। जब वह स्कूल गया होता, तब ही पूर्णिमा उसके कमरे में जा कर सफाई कर आती थी। वैसे सूरज का कमरा प्रायः साफ़ ही रहता था - सब वस्तुएँ अपने निर्धारित स्थान पर ! हाँ, पुस्तकें अवश्य पुरानी हो गयीं थीं। स्थान - स्थान पर पुस्तकों की 'जिल्द' फटने लगी थी, परन्तु सूरज को इसकी चिंता नहीं थी। यद्यपि जब वह घर पर रहता तो अपनी किताबों में उलझा हुआ दिखाई देता था। पूर्णिमा को समझ नहीं आता कि इतने सारे अच्छे गुण होते हुए भी वह परीक्षा में असफल क्यों हो जाता था। ये पूछने की हिम्मत नहीं होती थी। होती भी कैसे ! आज तक दोनों ने दो शब्द बात तक ठीक से नहीं की थी।

सूरज की पुस्तकों को देख कर पूर्णिमा के हृदय में टीस सी उठती थी। उसका सपना था बहुत पढ़ाई करने का। पर भाग्य को कुछ और ही स्वीकार्य था। अब वह चाहती थी कि उसकी छोटी बहन की शिक्षा पूर्ण हो जाए। सूरज की अनुपस्थिति में जब पूर्णिमा उसका कमरा साफ़ करती तब उसकी पुस्तकों को खोलकर पढ़ने का लोभ संवरण नहीं कर पाती थी। पुस्तकों को छूना, पेन - पेन्सिल को हाथों में लेकर कल्पना करना कि मानो वह अभी लिखने बैठ जाएगी ! ....और कापियों के अलिखित पृष्ठों को पलटकर समान दूरी पर बनी हुई नीली रेखाओं को देखना ....कभी - कभी पुस्तक के पन्नों को जापानी पंखे की भांति फ़र्राटे से खोलना और बंद करना ....यह सब करना उसे उसके बचपन की और मायके में बिताये हुए चिंतामुक्त दिनों की याद दिला जाता था।

ससुराल आकर उसे तीन - चार महीने हो चले थे। मायके जाने का प्रश्न ही नहीं उठता था। सूरज की चाची ही हर दस - पंद्रह दिनों में चक्कर लगा जाती थी। उस दिन पूर्णिमा को बहुत अच्छा लगता था। वह बड़े उत्साह से सारे काम करती थी। चाची सास ने कुछ पुरानी कहानी की पुस्तकें भी लाकर दीं थीं। वह हृदय से चाहती थी कि पूर्णिमा आगे पढ़े। परन्तु इसके लिए उसकी सास को मनाना टेढ़ी खीर था।

पूर्णिमा दिन भर काम करती थी। सास या ननंदें कुछ मदद नहीं करती थीं। हाँ, ताने मारने में कोई कमी नहीं करता था। आखिर पूर्णिमा केवल सोलह वर्ष की ही तो थी ! उससे घर की साज - संभाल, सफाई, रसोई में काम आदि में कभी न कभी त्रुटी हो जाया करती जिस पर सास और ननंदों की तिकड़ी उपहास करना नहीं छोड़ती थीं। इस के ऊपर उसे लम्बा घूँघट भी निकालकर रखना होता, ताकि किसी को आते - जाते गलती से भी उसका काला दाग न दिख जावे !

हवेली बड़ी अवश्य थी, किन्तु बहुत पुरानी थी। जगह - जगह पर दरारें पड़ रहीं थीं। पैसों की तंगी हमेशा बनी रहती थी। बैठक के साथ एक छोटा कमरा था जहाँ पूर्णिमा के ससुर अपनी जीविका का साधन अर्थात पोथी - पत्री आदि रखते थे। वहीं बैठ कर कुण्डलियाँ बनाते, पत्री पढ़ते, मिलान करते, गुण - दोष बताते और रत्नों के विषय में सलाह देते। उनके पास ऐसे लोग आते

रहते जो अपने अतीत से आहत, वर्त्तमान से दुखी और भविष्य के बारे में असमंजस की स्थिति में होते थे। ससुरजी पत्री पढ़कर, गणनाएँ करके कुछ - न - कुछ उपाय बता देते थे। ये उपाय ग्राहक की आर्थिक स्थिति पर बहुदा निर्भर होते थे। जो जितना संपन्न होता, उपाय उतने खर्चीले हो सकते थे। थोड़ा बहुत धनोपार्जन पुरोहिती से भी हो जाता था। किन्तु ये सब पूरा नहीं पड़ता था अतः उनका छोटा भाई, जो कि मथुरा का नामी डॉक्टर था, आर्थिक मदद करता था।

घर का वातावरण उदासीन, नीरस और मंथर गति वाला था। ससुरजी ने अपने पिता का ही पुरोहिती और ज्योतिष का व्यवसाय अपना लिया था। सास पढ़ी लिखी नहीं थी। अपनी पुत्रियों को भी पढ़ने के लिए ठीक से प्रोत्साहित नहीं करती थी। वो तो चाची के कहने पर दोनों ननंदें घिसट - घिसट कर ग्रेजुएशन कर रहीं थीं। सूरज दसवीं में दूसरी बार असफल हो गया था। दोनों पुत्रियों के बाद कई वर्षों के अंतराल के बाद हुए पुत्र पर सभी को बहुत अभिमान था। सूरज वास्तव में बहुत लाडला था सबका, विशेषकर अपनी माँ का। गौरवर्ण, तेजस्वी व्यक्तित्व के सूरज के सामने पूर्णिमा बहुत ही साधारण लड़की थी। सास को पूर्णिमा कतई पसंद नहीं थी। वह समय - समय पर अपनी निराशा प्रत्यक्ष भी कर देती थी। पूर्णिमा चुपचाप रोती रहती। सोचती कि उसका विवाह हुआ ही क्यों जब उसे यहाँ कोई पसंद नहीं करता ! वह ऐसे बंधन में बांध दी गयी थी जो न छोड़ते बन रहा था, न ही निभाते बन रहा था।

पूर्णिमा अपनी दिनचर्या का आरम्भ ससुरजी के कमरे को साफ़ करने से करती थी। वह पोथियाँ, पत्रियाँ आदि ठीक से जमाकर रख देती। पुराना अखबार हटाकर नया रख देती, जब एक दो बार उसने ग्रह नक्षत्रों की गणना समझने में रूचि दिखाई तो ससुरजी ने स्नेह से सिखा भी दिया। जो वह गणना करते या भविष्य बताते तो पूर्णिमा अपनी सुन्दर लिखावट में लिख कर रख देती। ग्राहक भी साफ़ सुथरी पत्री या कुंडली देखकर प्रसन्न हो जाते। पूर्णिमा भी यह काम करके खुश हो जाती क्योंकि उसे कुछ तो पढ़ने - लिखने को मिल जाता था। सूरज को इन सब बातों से कोई सरोकार नहीं था। प्रतिदिन स्कूल जाना और बाकि समय अपने कमरे में पड़े रहना यही उसकी दिनचर्या थी।

पूर्णिमा को आस - पास देखते ही सूरज का मन जैसे कसैला हो जाता। उसे वस्तुतः पूर्णिमा से हुआ विवाह ही स्वीकार्य नहीं था। दोनों सामान्य रूप से या औपचारिकतावश भी बात नहीं करते थे। कोई भी पहल करने को तैयार नहीं था। सास और ननंदें पूर्णिमा के इस तिरस्कार से अति प्रसन्न थीं। उनके ताने भी आग में घी का काम करते थे। कोई कारण न होते हुए भी वह सूरज के क्रोध भंजन का पात्र बन जाती थी।

परन्तु एक ही छत के नीचे रहते प्राणी कब तक एक दूसरे से बचते ! पूर्णिमा हमेशा सूरज की अनुपस्थिति में ही उसका कमरा साफ़ करती थी। उस दिन भी कर रही थी। उसका ध्यान गया कि लगातार दो - तीन दिनों से गणित की कॉपी मेज पर पड़ी रहती और सही - गलत किये हुए कुछ सवाल फाड़े हुए पन्नों में दिख जाते जो मेज के नीचे टोकरी में पड़े होते। अंग्रेजी और संस्कृत की किताबों की हालत ठीक नही थीं। उन पर चढ़ी हुई जिल्द भी कई जगह से फट गयी थी। फटना तो था ही, आखिर पिछले दो सालों से सूरज इन्हीं पुस्तकों से जो पढ़ रहा था। पूर्णिमा को ये सारे विषय प्रिय थे। गणित तो विशेषकर ! वह गणित के गलत हो रखे सवाल सही करने का लोभ संवरण नहीं कर पायी। उसे अनुमान था कि सूरज को घर आने में अभी समय था। झटपट उसने झाड़ू, पोछा और बाल्टी कोने में रखे और कचरे की टोकरी से एक फाड़ा हुआ पन्ना निकाल कर गणित के प्रश्न हल करने बैठ गयी। उसने सोचा था कि प्रश्न हल करके उस कागज़ के टुकड़े को पुनः कचरे में फैंक देगी। वह नहीं चाहती थी कि सूरज को कुछ भी पता चले कि उसने सूरज की अनुपस्थिति में उसकी पुस्तकें या अन्य वस्तुएँ छुई थीं।

उसके लिए प्रश्न सरल थे। हल करके वह बहुत प्रसन्न थी। वह संस्कृत पढ़ने का लोभ संवरण नहीं कर पायी। उसने संस्कृत की पुस्तक उठाई ही थी कि उसका ध्यान कमरे के द्वार पर गया। किवाड़ से टिक कर सूरज खड़ा था। उसकी आँखों से जैसे ज्वाला निकल रही थी। भृकुटियाँ तनी हुई थीं। अपनी बैग पटक कर सूरज गरजा, "यहाँ क्या कर रही हो ? और मेरी किताबों को क्यों छू रही हो ?"

आज सूरज की जल्दी छुट्टी हो गयी थी अतः वह घर जल्दी आ गया था। पूर्णिमा को यह अंदेशा कतई नहीं था। वह सकपका गयी। वह नहीं चाहती थी कि सूरज की गर्जना कोई नीचे सुने। हिम्मत करके वह बोली, "कुछ नहीं, बस कमरा साफ़ कर रही थी।"

"पर मेज पर रखी चीज़ें क्यों छू रही थी?" सूरज का पारा चढ़ा हुआ था। वह कहते - कहते पूर्णिमा के पास आ गया और उसके हाथ से संस्कृत की पुस्तक छीन ली। मेज पर ही वह कागज़ का टुकड़ा था जिस पर पूर्णिमा का हल किया हुआ गणित का प्रश्न था। उसे देख कर सूरज ठिठक गया।

"ये तुमने हल किया ? ये त्रिकोणमिति के सवाल कैसे हल कर लिए तुमने ?"

"मैंने पिताजी से सीखा है। पिताजी स्कूल में गणित ही पढ़ाते थे और घर पर भी आस - पास के बच्चे पढ़ने आते थे। तब ऐसे ही रूचि होने के कारण मैंने सीख लिया था। फिर नौंवी में भी पढ़ा था ....वो तो आगे दसवीं की पढ़ाई नहीं कर पायी, नहीं तो ...."

"बस - बस.... तुम्हारी राम कहानी नहीं सुननी है।" सूरज की अग्नेय दृष्टि से पूर्णिमा सहम गयी। किन्तु अब वह पूर्णिमा के हल किये हुए प्रश्न को ध्यान से देख रहा था।

"इतने समय से मैं प्रयास कर रहा था ....तुमने कैसे कर लिया ?" लंगड़ाते हुए सूरज अपनी कुर्सी पर बैठ चुका था। पूर्णिमा पीछे हटी और अपना झाड़ू-पोछा समेट कर बाहर जाने लगी।

"रुको !"

अब भी सूरज उस कागज़ के टुकड़े को ध्यान से देख रहा था।

"संस्कृत की किताब से क्या कर रही थीं ?"

"बस ऐसे ही खोल कर देख रही थी".... पूर्णिमा ने घूँघट और नीचे तक खींच लिया। उसके माथे के काले दाग के कारण सभी लोग टीका टिप्पणी करते थे। आज पहली बार उसका पति उससे बोल रहा था, गुस्से में ही सही,

पर बात तो कर रहा था ! अपने माथे का काला दाग़ दिखा कर उन दोनों के विचित्र परिस्थितियों में हुए विवाह की काली स्मृतियों को फिर से उजला नहीं करना चाहती थी।

"तुम्हें ये सारे प्रश्न हल करने आते हैं ?"

"मैं कोशिश कर सकती हूँ।" पूर्णिमा हिम्मत कर के बोली।

"अच्छा, तो तुम मेरी मदद करोगी ? ये संस्कृत भी मेरी कुछ समझ नहीं आती .... पिताजी कहते हैं कि पढ़ा देंगे, पर मेरा मन नहीं लगता .... ये पढ़ाई करना भी ज़रूरी है क्या .... स्कूल में संस्कृत पढ़ने का क्या मतलब ? .... मैं थक गया हूँ .... मुझे स्कूल जाना अच्छा नहीं लगता, पर पिताजी समझते ही नहीं ....!" सूरज धड़ाधड़ बोलता चला गया।

या तो पूर्णिमा प्रायः सामान आयु की थी इसलिए, या संभवतः वह 'बाहर' के परिवार आई थी इसलिए उसके सामने अपने हृदय का गुबार निकालना सूरज को सरल लगा होगा तभी तो उसके मन की परतें खुलती जा रहीं थीं। स्वयं की विकलांगता, पढ़ाई में असफलता, स्कूल और मोहल्ले में मित्रों द्वारा अस्वीकृत, उपहास का पात्र बना रहना .... जाने कितनी सारी कड़वाहट थी जो अनायास ही पूर्णिमा के सामने निकल गयी जिसका चेहरा भी उसने ठीक से देखा नहीं था !

पूर्णिमा चुपचाप खड़ी होकर सुनती रही। प्रत्यक्ष रूप से घर का लाडला, राजकुमारों सा सम्मान पाने वाला सूरज अन्दर से कितना दुखी, असहाय और अप्रसन्न था।

"अरी ओ बहू .... ! इतनी देर से क्या कर रही हो ऊपर ! नीचे इतने काम फैले पड़े हैं - कब निपटेंगे ?" नीचे से सास की क्रोध से भरी आवाज़ आई जो सीधे शूल की मनीन्द हृदय में चुभ गयी। पूर्णिमा हड़बड़ा कर मुड़ी और बिना कुछ कहे कमरे से बाहर निकल गयी।

"और भी सवाल हैं .... कब हल कर के दोगी ?" पीछे से सूरज ने आवाज़ लगायी।

"अपनी कॉपी - किताब दादी के कमरे में रख दोगे ? मैं काम पूरे करके सवाल हल कर दूँगी और ऊपर वाले कमरे के बाहर रख दूँगी !".... उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना पूर्णिमा वहाँ से चली गयी।

देर रात जब सारे काम पूरे करके पूर्णिमा दादी के कमरे में पहुँची तो कॉपी - किताब तो थे ही, सूरज भी वहाँ बैठा हुआ था। पूरे घर में बस दादी का कमरा ही था, जहाँ पूर्णिमा निःसंकोच आराम से बैठ सकती थी, हँस सकती थी, दरी पर लेटकर दो घड़ी आराम कर सकती थी। दादी का स्नेह स्पर्श और सहानुभूति के दो शब्द सुनकर पूर्णिमा की सारे दिन की थकान मिट जाती थी।

लेकिन आज तो सूरज वहाँ आकर बैठ गया था। संकोच में भर गयी पूर्णिमा। फिर भी उसने हिम्मत करके कहा, "आप कॉपी - किताब छोड़ जाओ, मैं सवाल हल करके ऊपर, कमरे के बाहर रख आऊँगी।"

"क्यों ?, मेरे सामने क्यों नहीं ? मैं कहीं नहीं जा रहा। मैं भी देखूँगा कि तुम कैसे सवाल हल करती हो। क्या पता शायद कुछ पल्ले ही पड़ जाए !"

पूर्णिमा ने झुकी नज़रों को तिरछा करके दादी की ओर देखा। दादी ने पोपली मुस्कान के साथ स्वीकृति दे दी। पूर्णिमा थोड़ा सहज होकर बैठ गयी। सूरज की किताब खोलकर पूर्णिमा तन्मयता से सवाल हल करने लगी। गणित होते ही पूर्णिमा ने संस्कृत की पुस्तक उठाई ही थी कि उसने देखा, सूरज उसके त्रिकोणमिति के हल किये प्रश्नों को उत्साह के साथ ध्यान से देख रहा था। बरबस पूर्णिमा के मुख पर भी मुस्कान तैर आई।

"कैसे किया ये सब ? मुझे शुरू से समझाओ !" सूरज ने मानो आदेश दिया। उसकी आँखों में चमक थी।

"अरे अधिक कुछ नहीं, वो त्रिकोणमिति में अलग - अलग समीकरण होते हैं, जो कोई भी प्रश्न हल करते समय आवश्यकता के अनुसार उपयोग में लाते हैं, जैसे ...." पूर्णिमा की बात पूरी नहीं हुई थी की सूरज ने उसे टोक कर रोका और कहा, "नहीं, ऐसे नहीं ....मुझे शुरू से समझाओ - याने कि मानो

मुझे कुछ भी नहीं आता है और ये त्रिकोण मिति - विती मैं पहली बार पढ़ रहा हूँ तो कैसे समझाओगी ?"

"ओह, उसमें तो बहुत समय लग जायेगा .... पहले नौंवी की त्रिकोण मिति, फिर दसवीं की की पढ़ाई .... कैसे होगा ...." पूर्णिमा ने मायूसी से कहा।

"अब इतना भी गधा नहीं हूँ मैं पढ़ाई में। कुछ - कुछ तो आता है मुझे .... बाकि तुम सिखाओगी।" सूरज ने प्रतिवाद किया।

"गधा नहीं, अड़ियल टट्टू है हमरो लल्ला ! अरे, कितनी बार तिहारे पिताजी नहीं भेजे तुम्हें .... वो काह कह्यो जात है..., टयूसन ! .... हाँ, कायकूं नहीं जात हो लल्ला ?" दादी बोल पड़ी। वह अभी तक चुपचाप अपने पोते और पोत बहू की पढ़ाई - लिखाई का आनंद ले रही थी।

ट्यूशन की बात आते ही सूरज गुस्से में लाल हो गया किन्तु कुछ बोला नहीं। पूर्णिमा को तत्काल समझ आ गया। ट्यूशन पर बाकि लड़के सूरज की विकलांगता का उपहास बनाते होंगे तभी उसने वहाँ जाना छोड़ दिया होगा।

"कोई बात नहीं .... हम अभी से कोशिश करते हैं फिर तुम्हें .... मेरा मतलब है कि आपको थोड़ा तो आता ही है, बाकि बार - बार अभ्यास करने से सब आ जायेगा....। " पूर्णिमा ने ट्यूशन का विषय बदला।

सूरज के चेहरे के भाव बदल गए। तनी हुई भृकुटियाँ शिथिल हो गयीं थीं। वातावरण की कड़वाहट थोड़ी कम हो गयी थी। फिर क्या था, देर रात तक पूर्णिमा सूरज को पढ़ाती रही। त्रिकोणमिति के मूल नियम समझाए। अगले दिन के लिए आवश्यक गृहकार्य के प्रश्न हल कर के दिए। साथ ही में समझाती भी गयी। दादी थक कर सो चुकी थी। अंत में झिझकते हुए पूर्णिमा ने गणित की पुस्तक में पिछले अभ्यासों से कुछ प्रश्नों पर गोल निशान लगाकर दिए।

"ये क्या है ?" सूरज सब कुछ ध्यान से देख रहा था।

"ये प्रैक्टिस होमवर्क है।" पूर्णिमा दृष्टि नीचे करके बोली।

“अच्छा, यानि मास्टरनीजी मुझे गृहकार्य दे रहीं हैं !” कुछ हास्य पुट के साथ सूरज बोला।

“नहीं करना है तो कोई बात नहीं। बस हल किये हुए प्रश्नों को कई बार ध्यान से पढ़ लेना ....।” पूर्णिमा अचकचा कर बोली।

“अरे नहीं .... कर लूँगा मैं। वो कहते हैं न, ‘प्रैक्टिस मेक्स द मैन परफेक्ट’! ....अच्छा, यदि कुछ गलती हो जाय तो छड़ी से मार तो नहीं पड़ेगी न ?” सूरज ने दादी की छड़ी उठाते हुए कहा।

पूर्णिमा ने ‘नहीं’ में सिर हिला कर उत्तर दिया। घूँघट के अन्दर ही पूर्णिमा लजा गयी थी। इतने सारे दिनों में पहली बार दोनों सामान्य रूप से बात कर रहे थे।

“और संस्कृत का क्या ? वो कब समझाओगी ?”

“छःमाही परीक्षा पास ही है। हमें गणित के साथ विज्ञान और अंग्रेजी पर भी ध्यान देना होगा। संस्कृत को तो रट कर ही पास करना पड़ेगा .... उसे शुरू से समझाने का समय नहीं है .... ऐसा करते हैं, इसकी पुस्तक यहीं छोड़ जाओ। मैं एक कॉपी पर प्रश्न पत्र बना दिया करुँगी .... रोज़ .... आपको रोज़ एक प्रश्न पत्र हल करना पड़ेगा। बाज़ार से प्रश्न पत्रों की कुछ कुंजियाँ भी लानी होंगी ....बार - बार अभ्यास करने से व्याकरण की त्रुटियाँ दूर हो जायेंगीं ....आपको प्रतिदिन केवल आधा घंटा तो इस विषय के लिए निकालना ही होगा .... ।”

पूर्णिमा बोलती जा रही थी। उसकी आँखें उत्साह और रोमांच से चमक रही थीं। बहुत समय के बाद वह सभी पुस्तकों को छू पा रही थी। वह आगे पढ़ना चाहती थी। जो संभव नहीं था। बस इस बात का संतोष था उसे, कि सूरज को पढ़ाते हुए कम से कम वह सारे विषय एक बार पढ़ सकती थी, अपना ज्ञान संवर्धन कर सकती थी।

“राधे, राधे !, तुम तो एकदम मास्टरनी के अवतार में ही आ गयी हो ! खैर,कोई बात नहीं। तुम्हारी आज्ञा सर आँखों पर !” सूरज उठते हुए बोला।

"नहीं, नहीं .... ऐसी बात नहीं है .... वो तो हमारे पास समय कम है अतः योजना बनाकर समय की पाबन्दी से हम पढ़ाई करेंगे तो परिणाम अवश्य हमारी इच्छा के अनुरूप आयेगा। वास्तव में जो छात्र पढ़ने में कमजोर होता था, और समय की कमी होती थी तो पिताजी ऐसे छात्र की इसी तरह तैयारी करवाते थे .... ।" पूर्णिमा ने कहा।

"तो तुमने मान ही लिया कि जाने किस मंदबुद्धि से पाला पड़ गया !"

पूर्णिमा की अवस्था दयनीय हो गयी। वह घबराकर खड़ी हो गयी।

"अरे मैं तो ठिठोली कर रहा था !" सूरज ने पूर्णिमा की अवस्था भाँप ली थी। फिर वह गंभीर होकर बोला, "लेकिन ये सच है कि यदि इस वर्ष मैंने दसवीं पार नहीं की तो आगे की पढ़ाई छोड़ कर पिताजी से ज्योतिष - पत्री आदि सीखूँगा और वही काम करूँगा।"

सूरज अपने कमरे में चला गया। पूर्णिमा ने बहुत उत्साह से संस्कृत का प्रश्न पत्र बनाया। सुबह होने ही वाली थी परन्तु वह बहुत खुश थी कि उसका पढ़ा - लिखा होना सार्थक हो रहा था।

अगली सुबह कोई नया सवेरा लेकर नहीं आई थी। वही दिनचर्या, वही ढर्रे में चलता जीवन, वही ताने, टीका टिप्पणी और अनवरत काम ! एक ही सकारात्मक घटना हुई थी कि सूरज ख़ुशी - ख़ुशी रिक्शे में बैठकर स्कूल गया था। उसकी लचक वाली चाल में भी ठसक थी, आँखों में चमक थी। जैसी प्रसन्न मुद्रा में सूरज गया था, वैसे ही वापस भी आया था सूरज। आते ही उसने पूर्णिमा को बुला भेजा। पूर्णिमा डरते हुए उसके कमरे में गयी। उसके कमरे में आते ही सूरज ने विजयी मुद्रा में कहा, "आज किसी ने मेरा मज़ाक नहीं बनाया। हाँ, सारे सवाल तो सही हल नहीं कर पाया, पर दस में छः तो सही थे !"

पूर्णिमा बरबस मुस्कुरा दी।

"पूर्णिमा इस लंगड़ेपन का कोई उपाय नहीं है। इसपर तो आज भी लोग पीठ पीछे हँस ही रहे थे। पर मुझे ख़ुशी इस बात की है कि गणित कुछ - कुछ मेरी पकड़ में आ रहा है। ये हँसने वालों पर मेरा ध्यान कम गया।"

सूरज पूर्णिमा से सहजता से बात कर रहा था। पूर्णिमा को भी साहस आया। उसने संकोच से ही सही पर पूछ लिया, "ये समस्या कब से है आपको ? मेरा मतलब है कि क्या बचपन से है या कोई दुर्घटना हुई थी ?"

"पोलियो का नाम तो सुना ही होगा तुमने ! बचपन में टीके का ध्यान ही नहीं रहा किसी को ! असल में दो पुत्रियों के कई साल बाद जब बेटा हुआ तो सभी को इतनी ख़ुशी और चिंता हो गयी थी कि 'टीके' की जगह 'टोटकों' पर अधिक विश्वास किया गया ! क्या याद करना पुरानी बातों को ?" सूरज ने कहा। हलके - फुल्के ढंग से कही गयी बात में छिपी हुई पीड़ा पूर्णिमा भाँप गयी।

उसने विषय बदला, "सही बात है। अच्छा, मैंने संस्कृत का प्रश्न पत्र बना दिया है .... और आज से हम विज्ञान और अंग्रेजी पर भी ध्यान देना शुरू करेंगे।" पूर्णिमा उत्साहित थी। वास्तव में उसे इस घर में रहने का एक उद्देश्य जो मिल गया था। सूरज को पढ़ने में मदद करने के चक्कर में उसके पास जो भी कुछ खाली समय था, वह भी पुस्तकों, कापियों, अलग - अलग विषयों में व्यतीत होने लगा था। पूरे उत्साह से वह स्वयं समझती, सूरज को समझाती, प्रश्नों के उत्तर ढूँढती, प्रश्न पत्र बनाती, ...और गृहकार्य भी देती !

अगले दो - तीन महीने जल्दी ही बीत गए। छः माही परीक्षाएँ हुई। सूरज ने पहले की तुलना में अच्छा प्रदर्शन किया था। वह गणित और संस्कृत में पास हो गया था। विज्ञान और अंग्रेजी में भी बेहतर अंक आये थे। घर में उत्सव का वातावरण था। खीर - पूरी, छोले बने थे। कान्हाजी को मक्खन मिश्री का भोग लगा था। चाचा - चाची और पूर्णिमा के दोनों देवर भी आये थे। पेढ़े बांटे जा रहे थे। सास और ननंदें सूरज की नज़र उतारते नहीं थक रहीं थीं। पूर्णिमा चुपचाप इस उत्सव में सम्मिलित हो गयी और भाग - भाग कर काम कर रही थी।

फिर ऐसा कुछ हुआ जिसकी पूर्णिमा को आशा नहीं थी।

"बेटा, ऐसे ही मेहनत करते रहो तो देखना वार्षिक परीक्षा में इससे ज़्यादा अच्छे परिणाम आयेंगे। मुझे पूरा विश्वास है।" सूरज के चाचा स्नेह से बोले।

"मैं न कहती थी !, सूरज है ही ऐसा .... बस, ऐसे ही मेहनत करते रहो। तुम्हें पता नहीं है, तुममें बहुत प्रतिभा है। .... ज़रुरत इस बात की है कि तुम उसे पहचानों !" चाची ने सूरज के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा।

"मैं सारा दिन, सारी रात कान्हाजी से मन्नत माँगती थी लल्ला की सफलता के लिए .... तभी तो कान्हाजी ने आशीष दिए हैं" पूर्णिमा की सास भी पीछे क्यों रहती ! उन्हें तो सूरज की सफलता का पूरा श्रेय चाहिए था।

"मेरा जो भी रिज़ल्ट आया है, उसका पूरा श्रेय पूर्णिमा को जाता है। यदि वह मुझे नहीं पढ़ाती तो इस बार भी वही ढाक के तीन पात थे !" सूरज ने कहा।

यह सुनकर सभी सकते में आ गए। पूर्णिमा के लिए भी सूरज का उसे श्रेय देना अप्रत्याशित था। वह जहाँ खड़ी थी, वहीं मानों बुत बनकर रह गयी। वह अपनी सास और ननंदों की क्रोधाग्नि की आंच का मानो अनुभव करने लगी। उसने अपना घूंघट यथा स्थान है कि नहीं, यह सुनिश्चित कर लिया। घूंघट की ओट में वह सुरक्षित रूप से रो सकती थी। चाचा - चाची आश्चर्य से देख रहे थे। बस दादी और सूरज के पिताजी मंद - मंद मुस्कुरा रहे थे। आखिर वो दोनों ही पूर्णिमा की प्रतिभा के साक्षी थे।

"ये क्या बे फालतू बात कर रहे हो ? तुमने मेहनत की है, ये बहू ने क्या किया है बताओ भला ?!" सास फुफकारी।

"हाँ, और क्या, इसे क्या पता कि दसवीं की पढ़ाई कित्ती होती है ?" बड़ी ननंद पेढ़ा खाते हुए बोली।

"नहीं !" सूरज ने प्रतिवाद किया, "उसने मुझसे ज़्यादा मेहनत की है। पूर्णिमा घर के काम भी करती थी। रात के काम निपटा कर मुझे पढ़ाती थी और रात भर जाग कर मेरे लिए पेपर बनाती थी।"

"हैं....?!" "तो तुम रात भर पढ़ाई करते थे ?.... और भला ये बहू कैसे तुम्हें पढ़ा सकती है !" सास को विश्वास नहीं हो रहा था।

"हाँ अम्मा। पूर्णिमा ने मुझसे दोगुनी मेहनत की है। घर का सारा काम करते हुए उसने मुझे पढ़ाया है। मुझसे ज्यादा हकदार तो वो है इस बधाई की।"

"जाने क्या जादू - टोना कर दिया है इस लड़की ने मेरे लल्ला पर जो इतने गुणगान किये जा रहा है ....।" सास सिर थाम कर बैठ गयी। बेटे पर विश्वास ही नहीं हो पा रहा था। लल्ला को पढ़ाने लायक बुद्धि और समय कहाँ से आया लड़की के पास ?

विश्वास तो पूर्णिमा को भी नहीं हो रहा था। वाणी कंठ में अटक सी गयी थी। प्राण सांसत में आ गए थे। वह सास के रौद्र रूप की कल्पना करने लगी।

"अम्मा सच यही है। ये सहायता नहीं करती तो मैंने तो इस बार भी पास होने की आशा नहीं की थी। अब छः माही में पास हो गया हूँ तब वार्षिक में भी पास होने की आशा जगी है।" सूरज स्नेह से पूर्णिमा की ओर देखते हुए बोला।

चाची ने स्नेह से पूर्णिमा को अपने अंक में लेकर कहा "मैं पहले ही जानती थी की ये बेटी हीरा है हीरा !"

"छोटी बहू, ठीक कहत हौ। सही में पूनी बिटिया, तुम बहुत गुनी हो।" दादी ने मुस्कुराते हुए कहा।

"मैं तो यह सोच रहा हूँ कि पूर्णिमा को आगे पढ़ने का अवसर मिलना ही चाहिए...." सूरज बोल उठा, "पिताजी, अगले वर्ष पूर्णिमा का भी दाखिला करवा दीजिये स्कूल में !"

"अरे हाँ !, अब शादी के बाद भी कोई पढ़ता है भला ! ....राधे, राधे क्या कह रहे हो बेटा ?" सास हैरान थी।

"मैं सच कह रहा हूँ अम्मा। ये दिन में काम करती और रात को मुझे पढ़ाती थी। वास्तव में मैं नहीं, पूर्णिमा ने दसवीं की छः माही परीक्षा पास की है। वैसे भी अपने मायके में वह पढ़ ही रही थी। वो तो उसके पिताजी का

अचानक देहांत हो गया, नहीं तो पूर्णिमा की पढ़ाई आगे चलती ही रहती न....?! ....और अब क्यों नहीं पढ़ सकती वह ?.... अब तो यही घर है उसका!"

सास अब भी अनमयस्क थी। घोर कलयुग आ गया था। बेटा बहू की वकालत कर रहा था। ननंदें भी हतप्रभ थीं। कल तक तो भाई को ये काले दाग़ वाली लड़की फूटी आँख नहीं सुहाती थी, आज उसी के हित के लिए सबसे कह रहा है ! क्या हो गया था भाई को !

चाची को जैसे अवसर मिल गया। कह उठी वह, "बस, अब तय हो गया। अगले वर्ष पूर्णिमा का दाखिला करवा देंगे।"

"अरी, क्या गजब कर रही हो ! घर में तुमसे भी बड़े लोग हैं फैसला करने को .... तुम अनावश्यक आग में घी डालने का काम मत करो !" सास भड़क गयी।

लेकिन पूर्णिमा के ससुरजी को ये प्रस्ताव अच्छा लगा था। वो सहर्ष मान गए। सास ने हार नहीं मानी। अपनी दोनों बेटियों को ढाल बनाकर आगे किया, "अरी निगोड़ीयों कुछ कहती काहे नहीं ? अगर तुम्हारी भाभी स्कूल जाने लगेगी तो तुम दोनों को घर का सारा काम करना पड़ेगा, कॉलेज की पढ़ाई का हर्जा होगा की नहीं ?"

"हाँ अम्मा, सही कह रही हो। फिर इसको बाहर भेज कर जग हँसाई थोड़े ही करनी है ! सारे लोग यह कहकर हम पर हँसेंगे कि लो, मिसरजी की काले दाग़ वाली बहू आ गयी !" छोटी ननंद ने कटाक्ष किया।

"जाने क्या जादू कर दिया है भाभी तुमने हमारे भाई पर .... मति ही भ्रष्ट हो गयी है भाई की।" बड़ी ननंद बोली।

"देखो, सब ध्यान से सुनो।" सूरज गंभीर होकर बोल रहा था, "जैसे मैं इस विवाह के विरुद्ध था, पूर्णिमा भी विवाह नहीं करना चाहती थी। उसने भी दबाव में आकर विवाह के लिए हामी भरी होगी। आप लोगों ने और इसके दोनों ताऊजी ने अपनी - अपनी जमीन, कर्जे आदि के विवाद को निपटाने के

लिए हम दोनों का विवाह करवा दिया .... और इन सब में आप लोगों ने हमारी क्या इच्छा है, ये भी जानने का प्रयत्न नहीं किया। यही सच है।"

घर के सभी लोग चुप थे। ये कड़वा सच अंततः बाहर आ ही गया था।

"पूर्णिमा के पिता असमय गुजर गए। उसके परिवार पर दुखों का पहाड़ टूट पड़ा। ये दोनों बहनें, यानि पूर्णिमा और इसकी छोटी बहन, अचानक से बोझ लगने लगीं होंगीं ....तो ऐसे में सामने से आये रिश्ते को कैसे मना कर दिया जाता ! चाहे लड़का - लड़की बालिग़ हों या न हों; और उससे भी बड़ी बात - चाहे लड़का अपाहिज ही क्यों न हो !" सूरज बोलता गया।

सूरज की अम्मा का मुँह अविश्वास से खुला रह गया था। वो कुछ बोलने को हुई परन्तु सूरज ने संकेत कर चुप रहने को कहा और पुनः बोला, "जल्दी से हमारा विवाह करवा दिया गया और बोझ से मुक्ति पा ली गयी। ....कभी जानने की कोशिश की अम्मा, कि पूर्णिमा एक लंगड़े से ब्याह करना चाहती थी भी या नहीं ?!"

"ऐसे न बोल लल्ला, ... तो बदले में हमें भी तो काले दाग़ वाली साँवली बहू मिली है, वो भी बिना दहेज़ के !" सास के मुँह से निकल गया। इस अप्रत्याशित रूप से उन लोगों का सच सामने आ जायेगा और बेटे को सब पता था, सास को ऐसी आशा नहीं थी।

"ये बोलकर तो अम्मा, आप भी यही बता रही हो कि आपने भी अपने लंगड़े बेटे का मोल - भाव किया इस " काले दाग़ " वाली साँवली लड़की से ब्याह करवा कर ....!" बेटा व्यंग्य से बोला। सास निरुत्तर हो गयी। सूरज यहीं पर नहीं रुका, "क्यों, बताओ न अम्मा, क्या आप बड़ी दीदी या छोटी दीदी का ब्याह किसी ऐसे लड़के से कर दोगी जो लंगड़ाता हो, पोलियो हो, या कोई और ऐब हो .... हाँ, लेकिन दहेज़ की माँग न कर रहा हो !"

सास और ननदें सिर झुकाए खड़ी रहीं। प्रतिवाद के लिए कुछ था ही नहीं।

"और मेरे विवाह में तो आप लोगों ने अपरोक्ष रूप से दहेज़ भी ले लिया है - वो गाँव वाली जमीन का कर्जा माफ़ करवा कर ! यदि जमीन वापस चाहिए थी, तो आप लोगों को पूर्णिमा के परिवार वालों को कर्जे का पैसा देना पड़ता, ठीक है न ?!.... आप लोगों ने और पूर्णिमा के दोनों ताऊजी ने बीच का रास्ता निकाला कि हम दोनों का ब्याह हो गया, आप लोगों को पैसा नहीं देना पड़ा, और जमीन आपकी हो गयी। पूर्णिमा के घरवालों को दहेज़ नहीं देना पड़ा। पूर्णिमा के दोनों ताऊजी के सिर से एक बेटी का बोझ कम हो गया .... बिना किसी खर्चे के। क्यों, पिताजी मैं ठीक कह रहा हूँ न ?"

पिताजी ने हामी में सिर हिलाया। दादी पल्लू से आँसू पोंछने लगी।

"और दीदी, आप लोग क्या कह रहीं थीं .... काला दाग़ ! पूर्णिमा बाहर नहीं जा सकती कि उसका काला दाग़ देखकर लोग डर जायेंगे !, हमारी जग हँसाई होगी .... अरे, वह बेचारी तो घर में भी एक बिलांत का घूंघट काढ़े रहती है कि कोई उसे टोक न दे। उसके काले दाग़ से आप सब को लज्जा आती है, और यहाँ मैं सारे मोहल्ले, बाज़ार में अपनी विचित्र बेढंगी चाल से लंगड़ाता फिरता हूँ और उसे देख लोग हँसते हैं तब क्या आप लोगों का मन मुझे त्याग देने का नहीं होता !"

"नहीं भाई क्या कह रहे हो ...." दोनों बहनें भाग कर भाई के पास आयीं।

"लल्ला, तुम तो घर का सूरज हो। ऐसे सब मत कहा करो ...." अम्मा रोने लगी।

"मैं आप सबका सूरज हूँ तो पूर्णिमा भी घर का पूर्णमासी का पूर्ण चन्द्र है। उसके माथे पर काला दाग़ नहीं, बल्कि काला टीका है, उसे बुरी नज़र से बचाने के लिए ...." सूरज ने गर्व से अपनी पत्नी की ओर देखा।

"अरे वाह, बेटा कितनी सुन्दर बात कही है तुमने हमारी बहू के लिए ...." चाची ने खुश होकर पूर्णिमा का घूँघट माथे तक हटा दिया और ध्यान से उसके काले निशान को देखने लगीं। परन्तु जिससे वो सम्मोहित हो गयी, वो थीं पूर्णिमा की बड़ी - बड़ी सजल सुन्दर आँखें ! पूर्णिमा असहज हो गयी। उसने पलकें झुका लीं।

“तुम्हें आज से इतना लम्बा घूँघट लेने की कोई जरूरत नहीं है बिटिया” चाची ने पूर्णिमा की ठोड़ी पकड़ कर मुख ऊपर उठाया और कहा, “बिटिया, तुम इतने संस्कार वाली और गुणी लड़की हो कि ‘मिसर’ घराने के भाग ही खुल गए !”

“तो पूर्णिमा बेटा, ये तय रहा कि अगले वर्ष तुम्हारा दाखिला करवा देंगे।” सूरज के पिताजी ने कहा।

पूर्णिमा को विश्वास नहीं हो रहा था। सोचने लगी कि किन शब्दों में वह सूरज का धन्यवाद करे। प्रत्यक्ष रूप से वह बोली, “मुझे बहुत ख़ुशी हो रही है लेकिन मैं चाहती हूँ कि .... मैं प्राइवेट स्टूडेंट होकर दसवीं की, और आगे बारहवीं की परीक्षा दूँ .... ताकि मैं घर में अम्मा और दादीजी की सहायता कर सकूँ ....” संकोच के साथ पूर्णिमा ने अपनी बात पूरी की।

“ ....हाँ और घर में ही रहूँगी तो ‘सूरज जी’ के लिए प्रश्न पत्र भी बना सकूँगी ....क्यों है न भाभी ?” पूर्णिमा के चचेरे देवर ने ठिठोली की।

सभी लोग हँस पड़े। सूरज ने दिखावटी गुस्सा दिखाया। मन ही मन वह अवश्य प्रसन्न था क्योंकि उसे पूर्णिमा के पढ़ाने पर पूर्ण विश्वास था। सास और ननंदों ने राहत की सांस ली कि पूर्णिमा घर पर ही रह कर पढ़ाई जारी रखने वाली थी।

“हाँ, ये भी सही है कि घर पर रहोगी तो सूरज की प्रगति पर तुम अधिक ध्यान रख पाओगी और उसे ज़रुरत पड़ने पर मदद भी कर पाओगी, वैसे भी सूरज जैसा अड़ियल विद्यार्थी तुम ही संभाल सकती हो, क्यों, हैं न सूरज ?” चाची मुस्कुरा रही थी। पिताजी, चाचा, दादी और यहाँ तक कि अम्मा ने भी सहमति जताई।

विवाह के इतने समय के बाद घर के लोग सूरज और पूर्णिमा को एक ही इकाई की तरह देख रहे थे और संबोधित कर रहे थे। इस बदलाव को दोनों ने अनुभव किया।

“बारहवीं ही क्यों, वह चाहे तो कॉलेज भी जा सकती है ....और अम्मा, आप पूर्णिमा को साड़ी पहनने के लिए क्यों हठ करती हो .... दोनों दीदी की तरह ये भी तो सलवार कमीज़ पहन सकती है। मैंने देखा है इसे दिक्कत होती है काम करते समय। और दोनों दीदी भी कुछ काम क्यों नहीं करतीं .... ये सब बदलना चाहिए अम्मा।” सूरज ने स्नेह से अपनी पत्नी की ओर देखते हुए कहा।

पूर्णिमा की सास क्या बोलती ! बात तो बेटा सही कह रहा था। वो भी अपनी बेटियों की कामचोरी से तंग आ गयी थी। उनके विवाह की भी चिंता थी। यदि घर के काम नहीं सीखे तो विवाह के बाद दिक्कतें आएँगी....

“ठीक कह रहा है बेटा....” सास ने हामी भरी।

पूर्णिमा ने दसवीं, बारहवीं की परीक्षाएँ बहुत अच्छे अंकों से पास कीं। सूरज पूर्णिमा के सहयोग और संबल से आने वाली सभी परीक्षाएँ पास करता चला गया। उसका खोया हुआ आत्मविश्वास वापस आ गया था। उसने मेडिकल के और पूर्णिमा ने साहित्य के क्षेत्र में अपनी - अपनी पहचान बनायीं। राह कतई आसान नहीं थी। परन्तु पग - पग दोनों एक दूसरे का सहारा बनते गए। बाद में दोनों ननंदों ने भी अपनी भाभी की शरण में आकर अपनी पढ़ाई पूरी की। कड़ी मेहनत और संघर्ष के बाद सूरज यानि भास्कर एक सफल प्लास्टिक सर्जन बना। पूर्णिमा की पहचान एक सफल उपन्यासकार की बन चुकी थी। वह अपनी माँ की मेहनत और कई कठिनाईयों के बाद भी दोनों बेटियों को पढ़ाने की इच्छा को सम्मान और पहचान देना चाहती थी। इसीलिए उसने स्वयं के नाम के साथ अपनी माँ का नाम “सरल” जोड़ा था।

सूरज का वास्तविक नाम भास्कर था जो उसके दादाजी ने रखा था। घर में सब उसे सूरज कहा करते। भास्कर और पूर्णिमा के विवाह को तीन दशक से ज्यादा समय बीत गया था। किन्तु अब भी ऐसा लगता कि कल की ही तो बात है जब पूर्णिमा ब्याह के आई थी। शुरूआत के कलुषित वातावरण को छोड़कर पूर्णिमा ने बाकी सारी सुन्दर यादें संजोकर रखी थी। वह और भास्कर एक दूसरे के पूरक थे।

एअरपोर्ट पहुँचने में डेढ़ घंटा लगा। टी. वी. स्टूडियो में हुए उसके काले टीके के चर्चे पूर्णिमा को पुनः विवाहित जीवन के आरंभिक दिनों की याद दिला गए थे। समाज बहुत अधिक नहीं बदला था इतने वर्षों में। लोगों की संकीर्ण मानसिकता पर मन ही मन दया दिखाते हुए पूर्णिमा मुस्कुरा उठी। छोटी बेटी की फ्लाइट बस उतरने ही वाली थी। माथे पर ढलकती हुई लटों को कान के पीछे दबाती हुई पूर्णिमा अपनी बेटी की प्रतीक्षा करने लगी। उसके माथे का काला टीका उसकी मुस्कराहट की तरह ही दमक रहा था।

****

बिछुवे

बरेली से बदायूँ बहुत दूर नहीं था। बस यही कोई पचास कि.मी. ! लेकिन बस से लगभग दो घंटे लग गए थे। रास्ता आज भी बहुत ख़राब था। बरेली से सुबह नौ बजे निकले थे वो लोग। आखिरकार हिचकोले खाते हुए बस बदायूँ पहुँच ही गयी। लता बस से उतरते ही बदहवास सी रिक्शा ढूँढने लगी। पीछे - पीछे उसकी छोटी बेटी भावना एक बैग संभालती हुई भागी और माँ को रोका, "मम्मी, क्या कर रही हो ! इतनी भीड़भाड़ वाली जगह में कहाँ भागे जा रही हो.... ठहरो, मैं रिक्शा कर रही हूँ।"

भावना ने हाल ही में आई .पी .एस . परीक्षा उत्तीर्ण की थी और जल्दी ही ट्रेनिंग के लिए जाने वाली थी। रिक्शे से जैसे - तैसे वे दोनों लता के मायके पहुँचे।

मायका तो अब बस कहने को ही रह गया था। लता के नाना - नानी, मामा, उसकी माँ आदि सब गुजर गए थे। मामी को लकवा मार गया था। वह पूरी तरह से असमर्थ, सदा खाट पर लेटे रहती थी। लता का ममेरा भाई बसंत, एक बैंक में छोटे से पद पर काम करता था। भाभी स्थानीय गर्ल्स स्कूल में पढ़ाती थी। कुल मिला कर मध्यम वर्गीय परिवार था। मामी की देखभाल के लिए कमली नाम की महरी रखी हुई थी। वह सबके सामने निर्विकार भाव से काम करते रहती थी। परन्तु अकेले में असहाय मामी को दुखी करती थी। मामी के लिए लाये गए फल, दूध या जूस आदि में से आधा तो स्वयं ही चट कर जाती। लकवे की मारी मामी चुपचाप सहती रहती,अपने बेटे - बहू से शिकायत भी नहीं कर सकती थी क्योंकि लकवे से मुँह भी टेढ़ा हो गया था। सारे दिन लार गिरती रहती, कंठ से घों घों के सिवा कोई स्वर नहीं निकलता। मामी को संभवतः विश्वास हो चला था कि ये सब उसके इसी जन्म के बुरे कर्मों का परिणाम है जो ऐसा नारकीय जीवन जीना पड़ रहा था। पहले लता की माँ

को, फिर लता को मामी ने बहुत सताया था। अब तो ये अवस्था थी कि बिस्तर भी गीला हो जावे तो कोई पूछने वाला नहीं था। वह अपने ही अपविष्ट में घंटों पड़ी रहती। जब कमली से ही दुर्गन्ध असहनीय हो जाती तो वह बड़बड़ाते हुए बूढ़ी हो चुकी मामी के प्रति बिना कोई संवेदना दिखाते हुए उसके कपड़े बदलती, बिस्तर साफ़ करती। इस पूरे अंतराल में वह कई बार मामी को बुड्ढ़ी, खूंसट, बुढ़िया वगैरा कहकर मन का गुबार निकल लेती। बेटा - बहू ये सब जानते तो थे परन्तु कमली को कुछ कहते नहीं थे। अन्यथा सारी साफ़ - सफाई का बोझ उनपर आ जाता।

जब लता और भावना घर पहुँचे तब भी कमली मामी को डांटते हुए उबला हुआ आलू मसल कर खिला रही थी। साथ ही में स्वयं आम का पैकेट वाला जूस पी रही थी। अचानक अपने सामने दो महिलाओं को खड़ा देखकर वह चौंक गयी पर जल्दी ही संभलते हुए जूस परे रखा।

कमली मामी का लार से सना मुँह पोंछते हुए बोली, "अरे लता जिज्जी!, कैसे आना हुआ .... बहुत अरसे बाद आई हो ...., इधर मायके का रास्ताई भूल गयी हो जिज्जी !" स्वर में यथा संभव मिश्री घोलते हुए कमली ने बोलना जारी रखा "और ये कित्ती प्यारी सी बिटिया हैगी, भाव्या ? .... अरे उसका तो ब्याह हुई गया है ना .... तो ये छोटी वाली हैगी .... हैं बाबु !? .... इत्ती सी थी ....अबै देखो कित्ती निखर आई हैगी बिटिया ! बैठिये न जिज्जी, नीम्बू पानी अब्बै लाती हूँ ।"

वह झटपट शरबत ले आई। लता के साथ आई युवती को कद काठी से नापने लगी। भावना को ये कमली बिलकुल पसंद नहीं आई थी। उसने अग्नेय दृष्टि से देखा तो कमली सहम गयी।

पसीना पोंछते हुए लता ने कमली से कहा, "ये मेरी छोटी बेटी भावना है, पुलिस इंस्पेक्टर बन गयी है।"

कमली ने अब आगे चुप ही रहना ठीक समझा।

भावना को इस घर का माहौल जरा भी पसंद नहीं आया। खाट पर पड़ी बूढ़ी औरत, गन्दगी, बीमार सा वातावरण .... कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा

था। तो ये है उसका ननिहाल ! मम्मी तो घर कितना साफ़ रखती है। यहाँ माँ का बचपन कैसे बीता होगा !

तभी लता का ममेरा भाई बसंत बैंक से आ गया । आते ही बोला, "दीदी,अच्छा हुआ जो आप आ गयीं। ज़्यादा समय नहीं है हमारे पास। चलो चलते हैं।"

लता तो पहले से ही अधीर हो रही थी। उसने शरबत का गिलास नीचे रख कर भावना से कहा, "बेटा वीनू, सुन !, तू चाहे यहीं रुक जा। मैं अभी आती हूँ।" बरबस ढलकते हुए अश्रुओं को वापस पलकों के नीचे ही रोकने का प्रयास करते हुए लता ने भावना का सिर सहलाया।

भावना को अपनी माँ के आँसू दिख गए। वह किसी अनहोनी की आशंका मात्र से सिहर उठी। वह त्वरित उठ खड़ी हुई। माँ का हाथ थाम कर वह बोली, "मम्मी मैं आपके साथ चलूँगी।"

लता के भाई ने रोकना चाहा पर लता जानती थी कि भावना नहीं मानेगी। एक भावना ही तो थी जो हमेशा ढाल बनकर अपनी माँ के साथ खड़ी रहती थी। वह लता की हिम्मत थी, संबल थी। तभी तो लता यहाँ, बदायूँ आने का दुस्साहसी निर्णय ले पायी थी।

घर से निकलते समय लता ने एक बार मामी को देखा। मामी मुँह टेढ़ा करके उसी को देख रही थी। आँखों से आँसुओं की धार निकल रही थी। होंठ फड़फड़ा रहे थे। संभवतः कुछ कहना चाह रही थी परन्तु पोपले मुँह से बस लार ही निकल रही थी। कमली ने बेमन से लार पोंछी। लता को अपनी मामी पर करुणा आई। बचपन में उसे और उसकी विधवा माँ को नाना इस घर ले आये थे क्योंकि लता के दादा - दादी नहीं रखना चाहते थे। तब मामी ने बहुत हाय - तौबा मचाई थी कि अब दो मुँह और बढ़ गए, निवाले के हकदार बन गए ! परिणाम स्वरूप दो समय की रोटी के लिए लता की माँ और लता कमरतोड़ मेहनत करते थे।

घर से निकलते ही लता लगभग भागने ही लगी। उसे किशोर का घर पता था। कैसे भूल सकती थी वह ! भरी दोपहर में लता, उसका भाई और

भावना मोहल्ले की संकरी गलियों में चल रहे थे। अब ये सारा भाग बहुत बदल गया था। खेत - खलिहान कम हो गए थे। घर बहुतायत में बन गए थे। आगे गली और संकरी हो गयी थी। गली के दूर वाले छोर पर एक हवेली थी जिसके सामने बड़ा बगीचा था और एक विशाल कुआँ भी था। ये हवेली लता के दादा ससुर की थी। दादा ससुर तो अब रहे नहीं। परन्तु हवेली अब भी पूरी शानो - शौक़त के साथ खड़ी थी। लता इस हवेली को अच्छे से जानती थी। यहीं से तो उसका विवाह हुआ था। उन दिनों उसकी शादी बहुत चर्चा का विषय बन गयी थी।

परन्तु लता वहाँ नहीं गयी। वह और आगे बढ़ गयी। इस क्षेत्र में घर कम थे। गली एक घुमावदार मोड़ के बाद छोटी, धूल भरी पगडण्डी का रूप ले चुकी थी और खेतों की ओर चली गयी थी। इसी मोड़ पर किशोर का घर था। घर के पास वही पुराना विशाल आम का पेड़ था जिसकी छाँव में साइकिल रोक कर लता कितनी बार सुस्ताई थी ! वहीं एक छोटा सा मंदिर था जिसके अन्दर सिन्दूर से रंगा हुआ एक गोल पत्थर था जिसे कुछ श्रद्धालु श्रद्धा से देवी मैया का मंदिर मानते थे। लता को याद आ रहा था कि बचपन में वह भी कई बार आई थी और संध्या को दिया जलाकर गयी थी।

पेड़ के पास स्थित किशोर का घर बहुत पुराना हो चुका था। इस घर की दीवारों का पलस्तर जगह - जगह उखड़ गया था। कहीं - कहीं ईंटें भी दिखने लगीं थीं। दरिद्री ने मानों सारी बखिया ही उधेड़ कर रख दी थी। घर के द्वार पर पहुँचकर बदहवास सी लता घंटी बजाती रही, साथ ही में चौखट पर लगी सांकल भी हिलाती रही। पीछे से उसका भाई और बेटी भी आ गए थे। भावना ने आगे बढ़कर किवाड़ को हल्का धक्का दिया तो वह खुल गया। वह बंद था ही नहीं, बस टिका कर रखा हुआ था ताकि आने - जाने वाले बार - बार घंटी न बजाएँ। दबी आवाज़ में भावना ने अपनी माँ को कहा, “क्या कर रही हो मम्मी, अपने आप को संभालो !”

वह द्वार एक बड़े आँगन में खुलता था। आम के उस विशाल वृक्ष की शीतल छाया पूरे आँगन में पसरी हुई थी। आँगन में खाट पर, कुर्सियों पर और हैंडपंप के बगल में बने चबूतरे पर कुछ लोग बैठे थे। कुछ लोग खड़े भी थे।

सभी के चेहरे पर गंभीरता और शोक के भाव थे। कुछ लोग किसी विषय पर गहन मुद्रा में धीमे स्वर में चर्चा कर रहे थे। क्लांत वातावरण था। भावना सहम गयी। कुछ ऐसा ही दृश्य उसने तब देखा था जब उसके दादाजी की मृत देह उनके बरेली वाले घर में लायी गयी थी। तब भावना बहुत छोटी थी किन्तु वह दृश्य स्मृतियों में जैसे अंकित हो गया था।

उसका ध्यान गया कि माँ के पास धैर्य नहीं था। लता किसी की ओर न देखते हुए, लोक लाज की चिंता किये बिना सीधे अन्दर वाले कमरे की ओर चली गयी। उधर से लगातार खांसने की आवाज़ जोर से आ रही थी .... भावना और उसके मामा भी अन्दर गए। अन्दर एक खाट पर एक कृशकाय पुरुष गठरी बना लेटा हुआ था। हाँफ रहा था। खांसी का दौर बस अभी ही रुका था। खाट के एक छोर पर एक बूढ़ी स्त्री बैठी थी जो कदाचित उस व्यक्ति की माँ थी। उस स्त्री की आँखें नेत्र कोटरों में धंस सी गयीं थीं। अश्रुओं की धार बह - बह कर सूख गयी थी। वह धीरे - धीरे उस दोहरे हुए पुरुष की पीठ सहला रही थी और अस्पष्ट वाणी में कुछ बुदबुदा रही थी। एक व्यक्ति खाट के पास ही जमीन पर बैठा भगवत गीता का अट्ठारहवाँ अध्याय पढ़ रहा था।

भावना से यह दृश्य नहीं देखा जा सका। वह बाहर जाने के लिए मुड़ गयी। तभी उसने माँ की आवाज़ सुनी, “किशोर ! मैं लता, ... देखो इधर ....।” लता खाट के बगल में, सिरहाने के पास घुटनों के बल बैठ गयी थी। सहसा उस व्यक्ति में मानो जान आ गयी ! उसने अपनी बची - खुची शक्ति समेटकर करवट बदल ली और लता की ओर देखने लगा। निस्तेज आँखों में चमक आ गयी। सिर पर बाल नहीं थे। शरीर बस हड्डियों का ढाँचा रह गया था। साँसें धौंकनी की तरह चल रहीं थीं। पर उसके मुख पर क्षीण सी मुस्कान आ गयी।

“लता तू आ गयी ! मैं इंतज़ार ही कर रहा था। बस अब कोई इच्छा नहीं रही .... मैं आज बहुत खुश हूँ, आराम से जा सकता हूँ ....” फिर से किशोर को खाँसी का दौर आ गया।

“कहाँ जाने की बात कर रहे हो ? तुम ठीक हो जाओगे .... मैं तुम्हारा इलाज करवाऊँगी .... तुम चिंता मत करो।” लता रूंधे गले से बोली। इतनी देर रोके हुए अश्रु पलकों से ढुलक कर बह चले।

“लता, तू बहुत भोली है। अरे ये कैंसर है। मुझे लेकर ही जायेगा। खैर छोड़ .... तू अपना ध्यान रख। बस तुझे देखने की इच्छा थी। पूरी हो गयी। मुझे क्षमा करना जो ऐसे अचानक बुलवा लिया .... ।” किशोर खिड़की के बाहर देखने लगा। उसे भी अपने आँसू रोक पाना असंभव लग रहा था। ये कैसी विडम्बना थी कि उसके जीवन की एकमात्र ख़ुशी, उसकी लता, उसके घर आई थी और वह इस संसार को छोड़ने की तैयारी में था।

किशोर ने देखा बाहर बहुत सारे लोग थे। वे सब उसे जानने वाले, सगे - सम्बन्धी ही तो थे। सभी किशोर के निरंतर गिरते स्वास्थ्य के लिए चिंतित थे। किशोर का अंतिम समय पास आ रहा था, ये कटु सत्य सभी अनुभव कर रहे थे। कैसा विरोधाभास सा था कि मानो वो सब उस क्षण की प्रतीक्षा ही कर रहे थे ! ऐसा विचार मन में आते ही किशोर के मुख पर विद्रूप सी हँसी आ गयी।

नियति से कौन लड़ सका है भला। किशोर ने अपने आप को संयत किया। ये सभी परिजन उसके अंतिम प्रवास की तैयारी करने आये थे। लता को देखने की उसकी अंतिम इच्छा भी पूरी हो गयी थी। अब कुछ शेष नहीं रह गया था। उसने कांपते हाथों से लता का हाथ थाम कर कहा, “लता तुम्हें सुखी देख कर अच्छा लगता है ....मैं निश्चित ही इतना संपन्न घर संसार नहीं दे पाता तुम्हें। वैसे यहाँ की चिंता मत करो। तुम्हारे स्वर्गीय दादा ससुर की हवेली के व्यवसाय की लिखा पढ़ी का काम मैंने बहुत पहले ही अपने छोटे भाई को सिखा दिया था। वह ठीक से काम संभाल लेता है। माँ का भी ध्यान रख लेगा ....और मेरे जाने से दवा और अस्पताल का खर्चा भी बचेगा ....चल, चलता हूँ .... अब अगले जनम में इस्मत चुगताई .... और शकील बदायूँनी .... की लड़ाई पूरी करेंगे .... ठीक है ....” अटकते हुए किशोर ने बात पूरी की।

लता कुछ नहीं बोली। बस रोती रही। किशोर आँखें मूँद चुका था। संभवतः मूर्छित हो गया था। पास ही में डॉक्टर खड़ा था। उसने तत्काल किशोर की नाड़ी देखी जो अब बहुत ही क्षीण हो चली थी। लता वहाँ से हटना नहीं चाहती थी परन्तु भावना ने उसे सहारा देकर उठाया और कमरे से बाहर ले आई।

मंथर गति से चलते हुए लता घर वापस आ गयी। रास्ते में किसी ने बात नहीं की। भावना के मामा तो चुप थे ही, भावना भी कुछ समझ नहीं पा रही थी। सच ही है, ये मानवीय सम्बन्ध कितने उलझे हुए होते हैं !

जब वे तीनों लोग घर पहुँचे तब तक भावना की मामी स्कूल से वापस आ चुकी थी। उसने बेमन से खाना बनाकर रखा था। उसकी अनिच्छा और द्वेष की तीव्रता पटक कर रखे गए बर्तनों की आवाज़ से ही पता चल रही थी। वह उपहास और छींटाकशी का कोई अवसर जाया नहीं होने देना चाहती थी। लता को देखते ही बनावटी दुःख दिखाते हुए बोली, "हाय - हाय जीजी ! मिल आयीं अपने बचपन के दोस्त से !? सच्ची, बेचारा बहुत बीमार है। लगता है इस बार के सावन नहीं देख पायेगा .... ।" बात में छुपे हुए व्यंग्य को सब समझ सकते थे।

लता के भाई ने डपट कर कहा, "ये क्या कहे जा रही हो रानो !? कोई जान से जा रहा है और तुम्हें ऐसी बेशरमी से बात करनी है !"

"ठीकई तो कै रईन हैं रानो भाभी .... देखो तो कैसे भागे - भागे गईंन थीं लता जिज्जी ....! ठीक से शरबत भी नहीं पिया, अम्माजी से भी ना मिलीं जिज्जी।" कमली ने धृष्टता से कहा। उसे रानो की शह जो मिल रही थी। उत्तर में लता कुछ नहीं बोली। उसका चित्त कहाँ था इन सब बातों में ! चुपचाप कुर्सी पर बैठ गयी।

खाना खाने का किसी का मन नहीं हुआ। रानो का मन खिन्न हो गया। एक तो स्कूल से भागकर आओ, खाना बनाओ, पर ननंद रानी को 'भूख'नहीं है ! अजीब नखरे हैं ! गुस्से में उसने सारा खाना उठा कर रसोई में रख दिया और अपने कमरे में चली गयी।

लता गुमसुम सी थी। भावना माँ के पास ही बैठी रही। दो घंटों बाद ही किशोर के देहांत का समाचार आ गया।

लता बड़ी कठिनाई से अपने अश्रुओं पर नियंत्रण रखने का प्रयास कर रही थी। घर का वातावरण शोकाकुल हो गया था। परिस्थिति की गंभीरता को भाँपते हुए रानो और कमली चुप लगा गए। कुछ बखेड़ा नहीं खड़ा किया।

भावना ने एक भी क्षण माँ को अकेला नहीं छोड़ा। ढांढस बांधने वाले शब्दों की कमी नहीं थी, परन्तु माँ के कंधे पर बस उसका स्नेह से भरा स्पर्श ही बहुत था। मूक भाषा में ही माँ - बेटी में संवाद होता रहा।

दोपहर कब की ढल चुकी थी। लता भी बहुत संभल चुकी थी। एकाएक भावना ने एक निर्णय ले लिया। उनका बैग तो बंधा ही हुआ था। उसने माँ को हाथ - मुँह धोने को कहा और मामा से बात करने पहुँची।

"मामा, हम दोनों कासगंज, मम्मी की बुआ के पास जाना चाहते हैं। एक - दो दिन रह कर बरेली लौट जायेंगे। कासगंज पहुँच कर आपको फोन कर दूँगी।"

"लेकिन बेटा, यहीं रुक जाते तुम दोनों ....कम - से - कम आज के लिए।" मामा ने रोकना चाहा।

"नहीं मामा, आज ही जाना ठीक रहेगा। फिर मुझे तीन दिनों के बाद ट्रेनिंग पर भी जाना है।" मामी की पेशानी पर आती - जाती रेखाओं को पढ़ते हुए भावना ने कहा। मामी ने चैन की सांस ली ! नहीं तो ननंद भतीजी की आव भगत करनी पड़ती !

जैसा बेटी ने कहा, लता निर्लिप्त भाव से करती रही। मामा ने दोनों को बस स्टैंड तक छोड़ दिया। कासगंज जाने वाली बस हिचकोले खाते हुए चल पड़ी। बदायूँ छोड़ते समय वे लोग सोत नदी पर बने लाल पुल के ऊपर से गुजरे। लता को अपना अल्हड़ बचपन और किशोरावस्था याद आ गयी। अब तो सोत नाम मात्र के लिए नदी रह गयी थी। बचपन में कैसे वह, और उसके छोटे ममेरे भाई - बहन, आस - पड़ौस की सहेलियाँ आदि खेत खलिहानों में,

मेड़ों पर, पगडंडियों से होते हुए, नदी के किनारे घंटों खेलते रहते थे .... तब भी सोत नदी गहरी नहीं थी, परन्तु पानी अधिक साफ़ था। वे लोग गोल पत्थर बीन कर घर बनाते, कच्चे आम और लीचियाँ तोड़ते, कभी जाड़ों में मटर के खेतों से फल्लियाँ तोड़कर चट कर जाते! .... कभी किसी के पिता सब बच्चों को हाँककर अपने खेत में ले जाते और फिर सब बच्चे मिलकर आलू खोद निकालते! जब साँझ ढले घर पहुँचते, तो ममेरे भाई - बहन तो बच जाते थे, लता को सबके हिस्से की डांट पड़ जाती थी! पर लता बुरा नहीं मानती थी। बस, काम में जुट जाती थी, अपनी माँ के साथ। इतना ही क्या कम था कि नाना - नानी के कहने से लता को स्कूल पढ़ने जाने मिलता था ....।

वहीं तो किशोर मिला था! दुबला - पतला साँवला सा लड़का! तब लड़के - लड़कियों का स्कूल अलग - अलग हुआ करता था। हालाँकि दोनों स्कूल एक ही ट्रस्ट चलाता था। वार्षिक अंतरशालेय प्रतियोगितओं के समय ही प्रतियोगी एक दुसरे के स्कूल में जा सकते थे। एक बार निबंध लिखकर पठन की प्रतियोगिता में लता ने भी भाग लिया था। तब कदाचित वह दसवीं में थी। उसने बदायूँ की ही देन इस्मत चुघताई पर निबंध लिखा था और बोला था। उसकी सहेलियों ने सलाह दी थी कि इंदिरा गाँधी, अमृता प्रीतम, विजयलक्ष्मी पंडित या महादेवी वर्मा पर बोले किन्तु लता ने इस्मत चुघताई को चुना था क्योंकि वह बदायूँ से थीं।

ये संयोग ही था, कि ऐसी ही सोच किशोर की भी थी, अतः उसने प्रतियोगिता में शकील बदायूँनी पर बोला था। लिखावट, सन्दर्भ, बोलने का प्रभावशाली तरीका आदि पर मूल्यांकन हुआ जिसमें उन्नीस - बीस के अंतर से किशोर प्रतियोगिता में जीत गया था। वैसे तालियाँ लता को अधिक मिलीं थीं। तभी से दोनों में प्रतियोगिताओं में ठनने लगी, एक दूसरे को हराने का प्रयत्न होने लगा। नोंक - झोंक वाली दोस्ती धीरे - धीरे हँसी ठिठोली तक जा पहुँची।

किशोर लता के नानाजी के घर से अधिक दूर नहीं रहता था। एक दिन अचानक रविवार को किशोर घर आ गया! आँगन में ही लता बर्तन मांज रही थी। उसे सामने देख कर लता खिन्न हो गयी। वह नहीं चाहती थी, कि किशोर

उसे इस अवस्था में देखे। किशोर ने उसे देखकर भी अनदेखा किया और बैठक खाने के बाहर बने बरामदे में जाकर लता के नानाजी की प्रतीक्षा करने लगा। फिर काम हो जाने के बाद वैसे ही लता की ओर बिना देखे चला गया।

एक दो दिन बाद जब किशोर गली में दिखा तो लता ने सीधे ही पूछ लिया। वह इसी उधेड़ बुन में थी कि किशोर उसके घर क्यों आया था ! तब किशोर ने बताया कि वह लता के नानाजी की लकड़ी की टाल पर कभी - कभी काम कर लेता था। बदले में थोड़े पैसे मिल जाते थे। किशोर के पिता को गुजरे हुए पाँच साल बीत गए थे। पेंशन आती थी किन्तु ऐसे छोटे - मोटे काम करके किशोर और उसका भाई पवन थोड़ा बहुत कमा लेते थे। माँ सिलाई का काम कर लेती थी। एक पैतृक घर था अतः सिर छिपाने के लिए जगह थी।

लता की स्थिति भी कोई बहुत अच्छी नहीं थी किशोर से। अर्थात दोनों ही बहुत अभावों में जीवन यापन कर रहे थे। लता और उसकी विधवा माँ, लता के नानाजी के यहाँ रहते थे जहाँ मामी बहुत दुखी करती थी। कुछ समय से माँ बहुत बीमार भी रहने लगी थी, तो लता पर ही माँ के हिस्से के कई काम आ जाते थे। तब किशोर ही उसके स्कूल के गृह कार्य में मदद कर देता था। अभावों में जीते हुए दोनों किशोर वय के प्राणी भावनात्मक रूप से जुड़ते चले गए थे।

उपचार से माँ का तपेदिक तो ठीक हो गया था किन्तु शरीर हड्डियों का ढाँचा रह गया था। खाना भी पूरा नहीं मिलता था। कुपोषण और दिन - रात की मेहनत और थकान का परिणाम ये हुआ कि लता की माँ सह नहीं पायी और एक रात उसने चुपचाप इस संसार से विदा ले ली। लता की मामी तो प्रसन्न ही हो गयी थी कि चलो एक मुँह तो कम हुआ निवाला डालने को ! लता की पढ़ाई छुड़ा दी गयी। उसकी पुस्तकें वगैरा छोटे ममेरे भाई बहनों के लिए रख दी गयीं। काम की दोहरी मार पड़ने लगी। एक किशोर ही था जो लता के दुःख को समझता था।

जब तक माँ थी तो लता आम के पेड़ के नीचे वाले देवी मैया के मंदिर में दिया जलाने जाती थी और अपनी माँ के अच्छे स्वास्थ्य की कामना करती

थी। घर में मामी के ताने, माँ की अनवरत खांसी के दौर और काम के अम्बार से जब लता थक जाती तो आम के पेड़ की छाया में बैठे रहना अच्छा लगता। माँ के गुजर जाने के बाद भी लता कभी - कभी दिया जलाने मंदिर चली जाती। वहीं, कभी घर से निकलता हुआ या घर की ओर जाता हुआ किशोर दिख जाता। किशोर से अपना दुःख दर्द बांटना उसे कब सामान्य लगने लगा वह समझ नहीं पायी थी।

दिन ऐसे ही बीत रहे थे। उस वर्ष अक्खा तीज पर संध्या के समय लता आम के पेड़ के नीचे वाले मंदिर में दिया रखने गयी। उस दिन वह माँ की याद में दिया जलाने आई थी। किशोर उस समय वहीं था। उसे वहाँ देख कर लता ठिठक गयी। बरबस ही उसका ध्यान किशोर के घर के दरवाजे की ओर गया कि कहीं उसकी अम्मा तो नहीं देख रही !

किशोर जैसे समझ गया हो ! उसने कहा, “अम्मा सोत के पास वाले शिवमंदिर गयी है। पवन भी साथ गया है।”

“तो तुम भी चले जाते !” बनावटी अवहेलना दिखाते हुए लता ने कहा।

“मैं तुम्हारे लिए कुछ लाया हूँ .... ये देखो ....।” किशोर ने अपनी मुट्ठी में कुछ छिपा कर रखा था।

“क्या है ?”

“तुम देखो न ! आज अक्खा तीज है। मैं तुम्हें यह देना चाहता हूँ ....!” कहकर किशोर ने मुट्ठी खोल दी।

लता ने जो देखा, उसे विश्वास नहीं हुआ। नेत्र विस्फारित करके लता देख रही थी। तत्क्षण उसे लाज भी आई किन्तु साथ में गुस्सा भी दिखाते हुए वह बोली, “बिछुवे !? .... ठिठोली करने के लिए कोई और तरीका नहीं सूझा तुम्हें, है न....?”

“नहीं लता, मैं सच्चे मन से लाया हूँ। बहुत सोच समझ कर यही ठीक लगा खरीदना।”

“पागल !, ये बिछुवे तो ब्याह के बाद पहनते हैं ! अभी हमारी उम्र नहीं है शादी - ब्याह की !” कहते हुए लता के गाल लाल हो चले ।

“जानता हूँ। जब पढ़ - लिख लूँगा, एक पक्की नौकरी होगी तभी तुम्हारे नानाजी से बात करूँगा। ये तो बस तुम्हारी हाँ सुनने के लिए हैं....! ” किशोर अब भी मुस्कुरा रहा था।

लता के मानो काटो तो खून नहीं था। किंकर्तव्य विमूढ़ सी खड़ी रही वह।

किशोर उसके पास आकर घुटनों के बल बैठ गया और बोला, “लाओ, मैं पहना दूँ ....।”

बिजली की फूर्ती से पीछे हटी लता। तेजी से बोली, “पूरे पागल हो गए हो तुम, किशोर ! .... फिर लजा कर बोली, “ऐसे नहीं, ब्याह के बाद पहना देना .... ।”

“तुम इन्हें ऐसे ही रख लो। समय आने पर पहना दूँगा।” किशोर ने वो चाँदी के पतले - पतले बिछुवे लता के हाथ में धर दिए।

लता ने बिछुवों वाली मुट्ठी भींच ली। वह रुकी नहीं .... एक बार मुड़कर किशोर को देखा और मुस्कुराई और फिर लगभग भागते हुए घर जा पहुँची। उस रात को जब सब सो चुके थे तब खिड़की से आती हुई गली की रौशनी में चुपचाप वे बिछुवे अपने पैरों की उँगलियों में पहन कर देखे थे। गली की मद्धम रौशनी में जब वह अपने पाँव दायें - बायें हिलाती तो वो नन्हे बिछुवे चमक उठते थे। गहने के नाम पर बस यही बिछुवे थे लता के पास .... बाकि सब छोटा - मोटा तो मामी ने लता की माँ के गुजरने के बाद अपने पास रखवा लिया था।

गहना क्या था, बस पतले - पतले चाँदी के छल्ले थे, तार थे। किन्तु यही लता के लिए सारी जमापूंजी थे। बिछूवों को अपने पैरों में देखकर उसे किशोर का ध्यान आ गया और उसने लजाकर अपना चेहरा अपनी हथेलियों

से छुपा लिया। तभी आँगन में कुछ हलचल सुनाई दी तो उसने बिछुवे निकाल कर माँ के कपड़ों वाले संदूक में रख दिए।

अगले दिन से लता का संसार बदल गया। नाना के घर से कुछ दूर बनी हवेली से, जो किशोर के घर जाने वाले रास्ते में पड़ती थी, लता के लिए रिश्ता आया था। रिश्ता हवेली के मालिक के पोते का था। दहेज़ की मांग नहीं थी। यह सबसे बड़ा कारण था नाना और लता के मामा के लिए हाँ कहने को। लड़के के बारे में अधिक जानने की आवश्यकता ही नहीं रह गयी थी अब ! आखिर इतने बड़े और धनी घर से प्रस्ताव आया था।

धीरे - धीरे और जानकारियाँ मिलने लगीं। लड़का थोड़ा मंदबुद्धि था। कभी - कभी हिंसक भी हो उठता था। लता से लगभग बारह वर्ष बड़ा था और ये उसकी दूसरी शादी थी। पहली पत्नी ने दूल्हे की मानसिक स्थिति सामान्य न होने के आधार पर तलाक माँग लिया था। लगभग तीस वर्ष का मदन लता का पति बनाने वाला था।

लता ये विवाह नहीं करना चाहती थी। वह आगे पढ़ना चाहती थी। वह हर हाल में किशोर से मिलना चाहती थी। पर वह वहाँ, उसके घर जाती कैसे ! जाती भी किस बहाने .... फिर क्या वह किशोर की माँ से कह पाती कि उसका और किशोर का ब्याह कर दे !

किशोर जैसे नानाजी के छोटे मोटे काम कर देता वैसे ही लता के भावी दादा ससुर की हवेली पर भी कर देता था। लता अधीरता से किशोर से मिलना चाहती थी किन्तु किशोर हवेली के काम से कासगंज गया था।

पहले सगाई और फिर विवाह आनन् - फानन् में हो गया। बरेली से बारात के नाम से कुछ मुट्ठी भर लोग ही आये थे। लता के मामा और नाना को अधिक कुछ खर्चा करना ही नहीं पड़ा। लड़के वाले ही शादी की जल्दी में थे। लता की मंशा जानने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया।

किशोर समय पर नहीं आ सका। उसे काम पूरे करने में कासगंज में अधिक समय लग गया। जबतक वह आया, लता मंडप में बैठ चुकी थी।

लता की आँखें रो - रो कर सूज गयीं थी पर अब भी वह किशोर को मंडप की भीड़ में ढूँढ रही थी।

वह था वहाँ। दूर, कोने में खड़ा ....जैसे मानों निष्प्राण सा। वह क्या कर सकता था ! उसपर माँ और छोटे भाई का उत्तरदायित्व था। आर्थिक रूप से वह समर्थ नहीं था। समाज में कोई भी उन दोनों का साथ देने आगे नहीं आने वाला था। उल्टे उसी को समाज से बाहर कर दिया जाता। रही बात लता की, तो उसे उसके घरवाले पहले ही बेमेल विवाह के बंधन में धकेल चुके थे।

लता का मदन के साथ विवाह एक तरह का आजीवन कारावास था। आरम्भ से ही लता ने पति - पत्नी के संबंधों में मधुरता नहीं देखी थी। विवाह के एक वर्ष के अन्दर ही एक पुत्री हो गयी। मायके जाने का कोई प्रश्न था ही नहीं। वैसे भी वहाँ कौन था ! एक ही प्रसव में लता इतनी दुर्बल हो चुकी थी कि उसे लगता, काश मृत्यु आ जाय तो शांति मिले। बच्ची बहुत सुन्दर थी। लता पालने में सक्षम नहीं थी। लता की ननंद संतानविहीन थी। सास ने सहर्ष लता की पुत्री को अपनी पुत्री की गोद में डाल दिया - लता की सहमति जाने बिना। लता ने इसे ही अपना भाग्य समझ कर स्वीकार कर लिया था। पहली बेटी के एक ही वर्ष के भीतर वह पुनः एक और बेटी की माँ बन गयी थी। सास बहुत खिन्न हो गयी। छोटी आयु में लगातार माँ बनने के कारण लता की शक्ति क्षीण हो चली थी परन्तु उसकी सुध लेने वाला कोई नहीं था। पति के साथ लता का कोई भी भावनात्मक जुड़ाव नहीं था। मदन को भी अपनी पत्नी और पुत्री के हित की कोई चिंता नहीं थी। पति सो जाता, और लता जागती रहती। ऐसी कई रातें लता पुत्री को गोद में लिए चुपचाप रोकर काट देती.... और किशोर की स्मृतियों को जगाकर रखती। आश्चर्यजनक रूप से किशोर के साथ बिताये हुए अल्हड़पने के स्कूल के दिनों को याद करने से लता का मन शांत हो जाता था। किशोर की स्मृतियाँ लता के आहत ह्रदय पर फ़ाहे का काम करतीं। उसके टूटे मन को जोड़तीं।

यह अग्निपरीक्षा जाने कितने वर्ष चलती किन्तु होना कुछ और ही था। लता के विवाह के लगभग दस वर्षों बाद एक दिन अत्यधिक नशे की स्थिति में मदन को दौरा पड़ा और इसके बाद वह जीवित तो बच गया किन्तु पूरा शरीर

एक ओर से लकवा मार गया। अब पूरे समय वह व्हील चेयर पर बैठा रहता। लता उसका पूरा ध्यान रखती, परन्तु वैसे ही, जैसे एक नर्स एक मरीज़ का रखती है।

जीवन अपनी गति से चल रहा था। बड़ी लड़की भाव्या हमेशा से ही लता की ननंद के पास रही थी, अतः उसने अपनी माँ के साथ कभी भावनात्मक जुड़ाव अनुभव ही नहीं किया। वह अपनी माँ और छोटी बहन भावना के प्रति उदासीन ही रहती थी। उचित समय पर एक अच्छे घर में उसका विवाह भी कर दिया गया था। एक भावना ही थी जिसने अपनी माँ के संघर्ष भरे जीवन को पास से देखा था। वह अपनी माँ का सहारा, संबल, सहेली सबकुछ थी।

****

लता अपने वर्त्तमान के घटनाक्रम और अतीत की स्मृतियों में उलझी हुई थी। जब बस कछला घाट पर रुकी तो लता की तन्द्रा टूटी। भावना ने माँ को पानी दिया पीने को और हौले - हौले माँ की पीठ सहलाने लगी। बेटी के प्रेम भरे स्पर्श से लता के धैर्य का बाँध टूट गया और वह फफक कर रो पड़ी। बस के अधिकाँश यात्री चाय - पानी के लिए उतर गए थे। फिर भी पीछे बच गए बुज़ुर्ग एवं महिलाओं में कुछ का ध्यान माँ - बेटी पर गया। जल्दी ही लोग खुसुर - पुसुर करने लगे।

भावना के मन में एक विचार आया। उसने झटपट ऊपर रखा बैग उतारा और माँ से कहा, “मम्मी, चलो यहीं उतर जाते हैं। गंगा मैया के भी दर्शन हो जायेंगे ....”

लता चौंक गयी। बोली, “यहाँ क्या करेंगे ? कासगंज अभी दूर है। बुआ चिंता करेगी यदि समय से नहीं पहुँचे तो। फिर थोड़ी देर में रात घिर आएगी.... न बेटा, सीधे चलते है।”

“चलो न मम्मी, यहाँ की गंगा आरती भी देख लेंगे .... सोच रही हूँ, ट्रेनिंग जाने से पहले एक डुबकी गंगा मैया में लगा लूँ, तो मैया के आशीर्वाद ही मिल जायेंगे !”

“पर अब रात होने को है ....।” लता का विरोध बहुत क्षीण था।

“चलो न मम्मी, यहाँ से कासगंज के लिए दूसरी बस ले लेंगे ....वैसे, यहाँ, घाट पर अधिक देर नहीं लगायेंगे .... बस एक घंटा ! लेकिन यदि देर हो ही गयी तो किसी धर्मशाला में रुक जायेंगे.... और सुबह की बस ले लेंगे !”

लता ने हार मान ली। सूर्य अस्ताचलगामी हो चला था। गोधुली बेला में गंगाजी की छटा ही निराली थी। घाट पर हमेशा की तरह श्रद्धालुओं का जमघट था। प्रसाद - पूजा की थाली की दुकानों की सजावट देखते ही बनती थी। कई सारी फूल मालाओं की दुकानें, चना, चिरौंजी, मुरमुरे की दुकानें, चाय - नाश्ते की दुकानें घाट से थोड़ी ही दूर पर लगी हुई थीं। ये दुकानें अधिकतर अस्थाई लग रहीं थीं। घाट पर गंगा आरती की तैयारियाँ चल रहीं थीं। हरिद्वार या काशी के जैसा भव्य तो नहीं किन्तु फिर भी बहुत सुन्दर और नयनाभिराम दृश्य था। आस - पास के मंदिरों की घंटियों के स्वर, भजन मंडलियों के सुर, अगरबत्ती, धूप और फूलों की गंध आदि से पूरा वातावरण सरोबार था। भावना और लता शीघ्र ही घाट से थोड़ा दूर, नदी के कच्चे किनारे तक पहुँच गए। लोगों की भीड़ से थोड़ा दूर, ऐसा स्थान चुना जहाँ आवाजाही कम थी। इधर पानी कुछ उथला था। लता गंगाजी के किनारे ही बैग रखकर बैठ गयी। भावना ने जूते उतारे और जीन्स टखनों तक चढ़ा ली। उसने पवित्र सलिला गंगा को प्रणाम कर के पैर पानी में रखे। उसने संकेत से अपनी माँ को भी बुला लिया। लता ने भी प्रणाम करके पाँव पानी में डुबोये। ठन्डे शीतल पानी की नन्ही - नन्ही लहरें बन कर किनारे से टकरा रहीं थी और विलीन हो जाती थीं।

पानी के स्पर्श ने मानों दोनों की सारी थकान हर ली। बहुत देर तक दोनों ऐसे ही एक दुसरे का हाथ थाम कर खड़े रहे। फिर लता वापस किनारे पर आ कर बैठ गयी। सांझ हो चुकी थी, अतः भावना ने डुबकी तो नहीं लगायी परन्तु गंगाजल को उलीच कर अच्छे से सिर और शरीर पर डाल लिया। थोड़ा जल अंजुली में भर कर वह अपनी माँ के पास आई और उसे लता के सिर पर डाल दिया।

लता चौंक गयी पर कुछ बोली नहीं। भावना माँ से सट कर बैठ गयी और बोली, "मम्मी, जो चला गया, वो पवित्र आत्मा थी। उसकी यादों को हृदय में संजो कर रखो। लेकिन रो - रो कर याद मत करो, नहीं तो उसे मुक्ति नहीं मिलेगी।"

लता फिर चौंक गयी। उसने भावना को देखा फिर आँखें नीचीं कर लीं।

क्या वह लज्जित थी ?

भावना ने माँ की हथेली अपने हाथ में लेकर कहा, "मम्मी, ऐसे नज़रें झुकाने की आवश्यकता नहीं है। आपने कुछ ऐसा काम नहीं किया जो कि आप नज़रें झुकाओ। किशोर अंकल अपने अंतिम समय में बहुत तकलीफ में थे। बस इसी आस में जी रहे थे कि शायद लता आएगी .... मम्मी, उन्हें आपकी प्रतीक्षा थी। उनके प्राण आप से मिलने के लिये ही अटके हुए थे। .... सच माँ, इतना निःस्वार्थ प्रेम करने वाला पुरुष भला कहाँ हर किसी को मिलता है ! उनके अंत समय में मिल कर आपने उन्हें मुक्त कर दिया। "

लता चुप थी। उसने भावना को कुछ भी नहीं बताया था। उसकी बेटी स्वयं ही सब कुछ समझ गयी थी। भावना ने लता के कन्धों पर हाथ रखकर कहा, "मम्मी, जो भी इतने वर्षों से हृदय में दबाकर रखा है, अभी सब कह डालो। यहाँ आपकी कही गयी हर बात के साक्षी होंगे बस मैं और गंगा मैया ! आपका और किशोर अंकल का प्रेम, पवित्र प्रेम था। फिर उसे मलिन मानकर मन में ही दबाकर कुंठित क्यों होना ! विशेषकर तब, जब वो इस दुनियाँ में हैं ही नहीं।"

लता को लगा मानो गंगा के ठंडे पानी की फुहार ने उसे सरोबार कर दिया हो। उसकी आँखों से अश्रु धारा बह निकली। उसने भावना को गले लगा लिया। अब उसे कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं थी। बेटी ने सब समझ लिया था। न बोले हुए शब्दों को भी बेटी ने सुन लिया था। जीवन की रीत भी विचित्र होती है ! लता ने समाज के दबाव में बेमेल विवाह कर संसार तो बसा लिया, किन्तु वह कभी भी मन से मदन की नहीं हो सकी। वह जीवन भर

किशोर से प्रेम करते हुए भी किशोर से विवाह नहीं कर सकी। उधर किशोर ने आजीवन विवाह नहीं किया और लता से ही प्रेम करता रहा।

लेकिन आज वह कुछ और भी बताना चाह रही थी अपनी बेटी को ! उसने धीरे से भावना को अपने से अलग किया और ज़मीन पर पाँव फैला कर बैठ गयी। भावना को कुछ समझ नहीं आया। वह अपनी माँ को एकटक देखती रही। लता ने एक - एक कर पाँव के अंगूठे के बगल वाली अँगुलियों पर पहने हुए चाँदी के मोटे - मोटे बिछुवे उतार दिए। उन मोटे बिछुवों के नीचे, पतले छल्लों की तरह, स्याह हो चुके चाँदी के एक जोड़ी और बिछुवे थे ! भावना उन्हें आश्चर्य से देख रही थी। लता के नेत्रों में अश्रुओं के साथ अब अधरों पर मुस्कान भी थी। धीरे - धीरे करके उसने उन पतले बिछुवों को उतार कर हौले से हथेली पर रख लिए और उठकर गंगाजी की ओर चल पड़ी। किसी आशंका के डर से भावना भी माँ के पीछे तेजी से चल पड़ी।

"चिंता मत कर बिटिया .... अभी आई मैं !" लता ने कहा और गंगाजी में उतर गयी। वो पतले बिछुवे उसने कसकर मुट्ठी में रखे थे। थोड़ी दूर जाकर लता ने अपना हाथ कंधे तक डुबोया और वो छल्ले गंगाजी की रेत में गाड़ दिए। उसने एक झटके में सिर पानी में डुबोया और फिर वह धीरे - धीरे बाहर आ गयी। उसकी मांग धुल गयी थी। माथे की टिकुली भी गिर गयी थी।

लता जैसे सम्मोहित सी चल रही थी, उसे कोई दिशा ज्ञान न रहा, मानो किसी ने वशीभूत कर रखा हो। भावना ने जल्दी से जूते पहने, बैग कंधे पर टांगा, वो मोटे बिछुवे भी उठा लिए। दूसरे हाथ में माँ की चप्पलें लेकर माँ के पीछे भागी वह।

"मम्मी, आपने ये वाले बिछुवे वहीं छोड़ दिए थे" भावना हाँफते हुए बोली।

"पता वीनू, बिछुवे सुहाग की निशानी होते हैं। मैंने तो वो सुहाग की निशानी वाले बिछुवे बहुत पहले ही पहन लिए थे - किशोर के नाम के ! उसी ने लाकर दिए थे। अब वो नहीं रहा। अब उसकी लायी सुहाग की निशानी का क्या करूँ मैं ! इसीलिए गंगा मैया को सौंप दिए।"

सम्मोहित सी लता बोलती जा रही थी, “किशोर भी गंगाजी में समा जायेगा। उसकी लता भी उसके साथ ही रहेगी गंगाजी में .... उन बिछुवों के रूप में, क्यों ठीक है न ?”

“और पता वीनू, ये चूड़ी, कंगन, टिकुली, ये सब भी सुहाग के प्रेम के प्रतीक होते हैं। प्रेम बंधन होते हैं। मेरे पास प्रेम तो रहा नहीं .... बस बंधन है।” लता ठिठकी और बोली, “अच्छा लाओ, वो मोटे वाले बिछुवे दे दो। पहन लेती हूँ .... आखिर समाज के लिए तो मैं अब भी सधवा हूँ !” व्यंग्य से लता ने बात पूरी की।

लता आगे चलती रही। पीछे भावना सामान समेटे चलती रही। आज माँ ने अपनी बेटी के सामने अपने पहले और सच्चे प्रेम को स्वीकार किया था। इतने वर्षों तक लता किशोर के दिए बिछुवे पहनती रही ! सब कुछ जान कर भी भावना को न जाने क्यों बुरा नहीं लग रहा था। वह अपनी माँ के लिए आज बहुत खुश थी ।

सहगामी

“सुनो, आज तुम्हें अकेले ही जाना पड़ेगा, ऑफिस से फोन था ....मेरी एक बहुत ही आवश्यक मीटिंग आ गयी है ऑफिस में, मैं इसे दूसरों पर टाल नहीं सकता।” हरीश ने फ़ोन बंद करते हुए कहा। उसका पूरा ध्यान सड़क पर दौड़ रहे यातायात पर था। जुलाई माह की उमस भरी दोपहर थी। आकाश में धुंध सी छाई हुई थी। अब ये धूल का गुबार था, या महानगर का प्रदूषण था, या हलके, ऊंचाई पर पसरे हुए बादल थे; जिनके कारण सूर्यदेव की किरणों का प्रचंड तेज थोड़ा कम था। हालाँकि उमस में कोई कमी नहीं थी।

सुमन हरीश की बात से थोड़ी अनमनी हो गयी। अब अकेली कैसे जाए वह ? उसे तो इस महानगर की भाग दौड़ वाली जीवन शैली से पहले ही बड़ी समस्या रहती थी।

“क्यों .... चलो न आप भी ! सतीश भैया और भाभी को बहुत अच्छा लगेगा ....। वैसे भी हम लोग बहुत समय बाद, बल्कि कई सालों बाद मिलेंगे .... ।” सुमन ने हरीश से कहा। कैसे भी करके वह पति को मनाना चाहती थी। वह अकेले नहीं जाना चाहती थी।

“इट्स वैरी इम्पोर्टेन्ट मीटिंग, आई टोल्ड यू।” हरीश क्रोधित होकर बोला। थोड़ी देर दोनों चुप रहे। फिर थोड़ा संयत होकर हरीश बोला, “देखो, मैं पहले ही ऑफिस के काम से परेशान हूँ। ऊपर से ये सगाई में जाना ! सुमन, जाना तो मैं भी चाहता हूँ, पर ऑफिस के काम अधूरे छोड़कर कैसे जा सकता हूँ !.... ऐसा करते हैं, तुम अभी चली जाओ.... फिर इस रविवार को, या किसी छुट्टी के दिन उनसे मिल आयेंगे....। ठीक है ?”

“लेकिन मैं अकेले कैसे .... ” सुमन के शब्द जैसे कंठ में अटक गए।

“क्यों, क्या समस्या है ? देखो, मैं तुम्हें कालकाजी पर उतार देता हूँ। वहाँ से ‘पर्पल लाइन’ लेकर लाजपत नगर पर उतरना। फिर ‘पिंक लाइन’ लेकर मयूर विहार फेस वन पर उतर जाना। आगे तुम्हें ई रिक्शा या ऑटो करना पड़ेगा, जो कि तुम्हें वेन्यू तक छोड़ देगा। वहाँ सतीश के लिए पूछ लेना। कोई भी बता देगा ....ठीक है ? ....अच्छा, मेट्रो कार्ड तो लायी हो न ? या मोबाइल की तरह वो भी भूल आई ?”

सुमन रुआंसी हो गयी थी। अश्रुओं को पलकों से ढलकने से रोकने में संघर्षरत थी। ये तो चलो अच्छा था कि काले धूप के चश्मे के पीछे वह अपनी आँखें छुपा सकती थी।

हरीश ने कार सड़क के किनारे रोककर पूछा, “फिर क्या तय किया सुमन ? जा रही हो या तुम्हें घर छोड़ आऊँ ?”

चौंक गयी सुमन। उसे शीघ्र ही निर्णय लेना होगा। वहाँ उस सगाई में जाने के लिए उसने ही तो बहुत मनुहार की थी। हरीश तो ऑफिस की व्यस्तता के कारण नहीं जा सकता था। अब मना कैसे कर दे वह ? पर अकेले कैसे जाएगी वह ? आज तक कहीं भी गयी है तो हरीश के साथ या मनु - राशी के साथ या किसी सखी - सम्बन्धी के साथ ही गयी है। मनु और राशी उनके किशोर वय के पुत्र - पुत्री थे। सतीश, हरीश और सुमन के चचेरे भैया, तीनों साथ ही में कॉलेज में पढ़े थे। इस महानगर में हरीश का स्थानांतरण छः वर्ष पूर्व हुआ था। बच्चे और पति तो यहाँ की भाग - दौड़ वाली जीवन शैली में पूरी तरह से रच बस गए थे। एक सुमन ही थी जिसे पुराना छोटा शहर याद आता। सारी दुकानें, गलियाँ याद थीं उसे, घर से बाज़ार बहुत ही पास था। आवश्यक हो तो पड़ोस की किसी भी भाभी या दीदी को या किसी सहेली से साथ चलने को कह देती और हँसी ख़ुशी बाज़ार के काम निपटा लेती।

यहाँ तो आधे से अधिक पड़ोस की महिलाएँ स्वयं ही कार चलाकर चली जातीं या ‘ऑनलाइन’ खरीदारी कर लेतीं ! उन्हें साथ चलने के लिए कहने को संकोच होता था। सुमन, हरीश के साथ जाने के लिए रविवार की प्रतीक्षा करती रहती। कभी राशी या मनु ‘ऑनलाइन शौपिंग’ करवा देते थे।

वे दोनों ही नयी तकनीक सीखने के लिए अपनी माँ को प्रोत्साहित करते परन्तु सुमन ही गंभीरता से नहीं सीखती थी। मोबाइल की पूरी कार्य प्रणाली समझने में भी सुमन को बहुत समय लगा था। कंप्यूटर से तो बहुत दूर भागती थी वह! हरीश और बच्चे समझाते भी, कि कभी आवश्यकता पड़ गयी तो कैसे करोगी, परन्तु सुमन हँस कर टाल देती थी।

"मैं टैक्सी कर देता, पर तुम्हें टैक्सी से अकेले भेजने से डरता हूँ। मुझे लगता है कि तुम मेट्रो में सुरक्षित रहोगी। तो तुम जा रही हो न ?"

"अं.... हं....। हाँ, चली जाती हूँ।" बेमन से सुमन कार से उतरी।

"अच्छा, सुनो ....!, मेरा काम जैसे ही पूरा हो जायेगा, मैं वहीं आ जाऊँगा, अब तो ठीक है ?" हरीश ने कहा। सुमन ने मुस्कुरा कर हामी भरी। लगा जैसे अब सुमन सब कुछ अकेले कर लेगी।

हरीश ने मेट्रो स्टेशन के पास उतारा था। सुमन ने अपना बड़ा सा पर्स बगल में दबाकर मेट्रो स्टेशन के अन्दर प्रवेश किया। काला चश्मा पहले ही पर्स में रख चुकी थी। ललाट पर स्वेद बिंदु बढ़ते जा रहे थे। स्वयं को शांत रखने का हर संभव प्रयास कर रही थी वह, किन्तु उसकी व्यग्रता बढ़ती जा रही थी। सुमन को राशी की बहुत याद आने लगी। उसी के साथ तो एक बार वह मेट्रो से दिल्ली हाट गयी थी। काश आज वो साथ में होती !

मुट्ठी में मेट्रो कार्ड इस प्रकार से कस कर पकड़ रखा था मानो कि चाँदी का सिक्का हो ! मन मस्तिष्क पर ज़ोर लगाकर वह याद करने लगी कि राशी के साथ आई थी तो पहले क्या किया था। वह अन्य लोगों के क्रिया कलापों को भी देखती जा रही थी। उसे याद था कि सुरक्षा जाँच से होकर जाना पड़ता है। मन ही मन स्वयं पर क्षुब्ध भी हो रही थी कि वह घर पर मोबाइल क्यों भूल आई !.... अभी होता तो फ़ोन पर राशी से सब पूछकर कर लेती ! अरे बुला ही लेती उसे यहाँ पर.... !

वह फिर भी घबराकर पर्स हाथ में ही लिए गेट की ओर बढ़ गयी। तभी वहाँ नियुक्त महिला संतरी ने उसे टोक कर रोका, "मैडम, इधर से जाइये और पर्स वहाँ रखना है।"

क्षमा माँगते हुए सुमन बताये हुए तरीके से करने लगी। हड़बड़ी में कार्ड पर्स में डाल दिया था। पुनः कार्ड ढूँढ़ते समय ए.टी.एम्. कार्ड हाथ में आ गया था जिस पर सुमन का ध्यान ही नहीं गया था। खैर सुरक्षा जाँच से बाहर निकल कर वह प्लेटफ़ॉर्म के अन्दर जाने वाले गेट पर पहुँची जहाँ मेट्रो कार्ड निर्धारित स्थान पर रखना पड़ता है, तभी गेट खुलते हैं। अब सुमन प्रयत्न कर रही थी पर गेट नहीं खुल रहे थे। घबराहट में उसका ध्यान ही नहीं गया था कि वह ए.टी.एम्. कार्ड प्रेस कर रही थी। तभी कहीं से देवदूत की तरह एक युवती पास आई और विनम्रता से सुमन को उसकी गलती बताई। सुमन बहुत लज्जित हुई। उसने सही कार्ड निकाला तो उसी युवती ने कार्ड किस तरह से प्रयोग में लाना है, यह सिखाया। अंततः शांति से सुमन आगे बढ़ी। तभी उसने देखा कि जिस तरह उसे परेशानी हुई थी, वैसे ही एक अन्य महिला को भी हो रही थी। उसका पहनावा और गाँव की खड़ी बोली सुनकर सुमन ने ये अनुमान लगाया कि संभवतः वह कुछ पढ़ी - लिखी भी नहीं लग रही थी ! प्रशंसा की बात यह थी, कि अपनी कमियों के बाद भी वह अकेले यात्रा कर रही थी !

परन्तु सुमन तो पढ़ी - लिखी, शिक्षित, संभ्रांत परिवार की थी। फिर भी अटक गयी ! उसे स्वयं पर क्षोभ हुआ। लज्जित भी हुई। अपनेआप से प्रण लिया कि अब कोई त्रुटी नहीं ! ध्यान से आगे बढ़ते हुए ऊँचाई पर लगे सूचना पटलों को ध्यान से पढ़ने लगी। स्थान - स्थान पर मेट्रो रेल के विभिन्न मार्गों की जानकारी हिंदी और अंग्रेजी भाषा में दी हुई थी। नक़्शे भी लगे हुए थे। किस गंतव्य के लिए किस प्लेटफार्म पर जाना है, ये लिखा हुआ था। फिर भी अपनी शंका का समाधान करने के लिए सुमन ने एक अपनी ही आयु की महिला से पूछ लिया जो संयोग से उसकी ओर ही देख रही थी। उसके आश्चर्य की सीमा न रही जब उसने वही सब स्टेशन बताये जो हरीश ने बताये थे....और तो और वह लगभग आधे रास्ते साथ ही जाने वाली थी ! वह महिला कदाचित समझ गयी थी, कि सुमन पहली बार अकेले जा रही थी। जो भी था, सुमन की प्रसन्नता का ओर - छोर नहीं था। एक अपरिचित गंतव्य के लिए, अनजान रास्ते पर सुमन चल पड़ी थी .... और एक अपरिचित महिला से मैत्री कर चुकी थी। खैर, जैसे - तैसे सुमन अपने अंतिम मेट्रो स्टेशन तक पहुँच ही गयी।

मेट्रो स्टेशन से बाहर आकर सुमन ने एक ऑटो किया और निमंत्रण पत्र पर लिखे पते के अनुसार वह चल पड़ी। अभी तक तो सब ठीक हो रहा था। अकेले आना - जाना इतना भी कठिन नहीं था ! तभी बूँदाबाँदी आरम्भ हो गयी। और साथ ही में सुमन की व्यग्रता भी। उसे क्या अंदेशा था कि उसे आज अकेले यात्रा करनी पड़ेगी, जो घर से छतरी लेकर चलती ! वह तो हरीश के साथ आने वाली थी ! ये हरीश भी.... उसे मंझधार में छोड़ दिया ! हाँ, एक बात के लिए मन ही मन सुमन ने हरीश को धन्यवाद दिया, क्योंकि उसीने आग्रह किया था, कि सुमन साड़ी के स्थान पर सलवार कमीज़ पहने। गहने भी खास नहीं, हलके - फुल्के ही थे। मानो हरीश को पहले से ही अनुमान था कि सुमन को अकेले ही जाना होगा !

ऑटो एक झटके के साथ रुका। सुमन का गंतव्य आ चुका था। साथ ही में उसके चेहरे पर घबराहट भी ! एक बड़े से गेट पर खड़े गार्ड ने उड़ती हुई दृष्टि सुमन के हाथ में पकड़े हुए कार्ड पर डाली और सुमन को अन्दर जाने दिया।

हरीश ने कहा था, सतीश के लिए पूछना। वह गार्ड से पूछने के लिए मुड़ी तो गार्ड वहाँ नहीं था। चलो, अन्दर जाकर किसी से पूछती हूँ .... उसने सोचा। आस - पास सब अपरिचित चेहरे थे। किससे पूछूँ.... ?! सुमन सोचने लगी। उसके ही पग नहीं उठ रहे थे, मानों कई किलो के पत्थर बाँध दिए हों। ऊपर से संयमित और शांत दिख रही सुमन के अंतस्थः में आन्दोलन चल रहा था। वह यहाँ आई ही क्यों ....! स्वयं को इस दलदल में धकेला था, अब निकलने का रास्ता नहीं दिख रहा था। अब ये सतीश भाई क्यों नहीं दिख रहे .... मैं किसी और को जानती भी नहीं ....। और वो.... उनकी पत्नी का चेहरा भी याद नहीं आ रहा ! कैसे याद आता .... बहुत साल पहले मिली थी वह उनसे। सतीश भाई का चेहरा भी बहुत बदल गया है। गंजे हो गए हैं, मूँछें रखना बंद कर दिया है। सुमन के माथे पर पुनः स्वेद बिन्दु उभरने लगे।

सुमन को राशी की बात याद आ गयी। "मम्मी, जब आपको बहुत स्ट्रैस हो, घबराहट हो, तो ब्रीद इन, ब्रीद आउट ! वरीज़ दूर भाग जायेंगीं।"

मन ही मन सुमन ने राशी को पुचकारा और गहरी साँसें लेने लगी। थोड़े ही समय में उसे ठीक लगने लगा। अन्दर हॉल में बहुत लोग थे। कुछ बैठे हुए, कुछ छोटे - छोटे समूह बनाकर खड़े थे, हँसी ठहाके, मधुर स्वर लहरियाँ, बैयरे नाश्ता और ठन्डे पेय लेकर इधर - उधर घूम रहे थे। सुमन को अभी तक कोई भी जाना - पहचाना चेहरा नहीं दिखा था। पूरा हॉल वातानुकूलित था परन्तु सुमन को पसीने आने लगे। हरीश, राशी, मनु.... उसे सबकी याद आने लगी। न बैठते बन रहा था न खड़े ही रहते बन रहा था। वह इधर - उधर देख ही रही थी कि एक नवयुवती पास में आई और मीठी वाणी में सुमन से कुशल क्षेम पुछा। सुमन को अच्छा लगा। लगा जैसे राशी ही सामने खड़ी थी।

युवती ने स्नेह से कहा, "आपके बाल बिखर गए हैं, लाईये मैं ठीक कर देती हूँ।"

"नहीं, नहीं ....मैं स्वयं ठीक कर लूँगी।" सुमन ने मुस्कुरा कर कहा। उसकी हृदयगति नियंत्रण में आ गयी थी।

युवती उसे महिलाओं के प्रसाधन कक्ष की ओर ले गयी। अन्दर छोड़कर वह चली गयी। सुमन उसका नाम भी नहीं पूछ पायी। खैर, प्रसाधन कक्ष में कुछ महिलाएँ थीं। अपना मेकअप ठीक कर रही थीं, बाल ठीक कर रहीं थीं। एक - दो महिलाओं ने मुस्कुराकर सुमन की ओर देखा भी। सुमन ने बाल ठीक किये, थोड़ा लिपस्टिक को भी ताज़ा किया। एक महिला ने कहा, "आप भी चलिए न.... , मेहन्दी लगाने वाली लड़कियाँ आई हैं .... वो हॉल के लेफ्ट साइड में कोने में बैठी हैं।"

मेहन्दी ?! .... किन्तु आज तो सगाई है न ? .... सुमन के मन में विचार चल रहे थे। उसने अपने मन को समझाया। आजकल कुछ भी चलन में हो सकता है। आखिर आये हुए मेहमानों को भी तो व्यस्त रखना होता है !

हॉल में बहुत सुन्दर सजावट वाला मंच बना हुआ था जिस पर राजसी ठाट वाले सोफे रखे थे, जैसे विवाह समारंभ के अवसर पर वर - वधु के बैठने के लिए होते हैं। परन्तु.... यहाँ तो सगाई होने वाली थी न ! .... खैर जाने दो, हर दिन ही कुछ न कुछ नया देखने को मिलने लगा है शादी ब्याहों में ....सुमन

चुपचाप एक कुर्सी पर बैठ गयी और हाथ में ठंडा पेय ले लिया। अब वह उत्कंठा से उन सतीश भाई की प्रतीक्षा करने लगी।

दोपहर का समय ढलता चला था। कुछ अतिथि अपने - अपने परिचितों के साथ छोटे समूहों में खाने की मेजों की ओर चले गए थे। सुमन भूखी थी परन्तु कुछ खाने का मन नहीं हो रहा था। अतः कुछ नहीं खाया। उन अपरिचित लोगों के बीच उसे लगभग ढाई घंटे हो गए थे।

अब सुमन व्यग्रता से हरीश की प्रतीक्षा करने लगी। उसने कहा था कि काम समाप्त होने पर वह भी यहीं आ जायेगा। यहाँ अभी तक कोई भी जाना - पहचाना व्यक्ति सुमन को नहीं दिखा था। वह उठकर हॉल के बाहर आ गयी। आकाश में घनेरे मेघ घुमड़ रहे थे। एक बार अच्छी वर्षा हो चुकी थी, यद्यपि बहुत कम समय के लिए हुई थी। हॉल के बाहर का लॉन, फूलों की क्यारियाँ, अशोक के नुकीले शंक्वाकार वृक्षों की कतारें आदि सभी कुछ वर्षा के जल से धुलकर चमकीले चटकदार हो गए थे। इतना सुन्दर दृश्य भी सुमन को मोहित करने में असमर्थ था। लो, अब तो पुनः बूँदाबाँदी आरंभ हो गयी थी। सुमन अनिच्छा से वर्षा होते हुए देख रही ही थी कि उसके पास एक वृद्ध संभ्रांत दंपत्ति आए।

दंपत्ति ने बहुत ही अपनेपन से सुमन का कुशल क्षेम पूछते हुए कहा, "बेटा, बहुत देर से देख रहे हैं, आपने कुछ खाया नहीं। कुछ स्नैक्स, आइसक्रीम या ठण्डा भिजवाऊँ ?" पुरुष ने कहा।

"अरे, अब तो मौसम गरम चाय वाला हो गया है .... बेटा, चाय मंगवाती हूँ .... ।" महिला ने कहा।

सुमन उन अपरिचित लोगों के प्रेम से भरे हुए बोलों को सुनकर अभिभूत हो गयी। उसे अपने ही माता - पिता याद आ गए।

"नहीं, नहीं मैं ठीक हूँ। मैं 'इनकी', मेरा आशय.... मेरे पति हरीश की प्रतीक्षा कर रही हूँ।"

“हरीश .... अच्छा, मेरे पुत्र आलोक का मित्र होगा .... बेटाजी, आप आराम से बैठो। कुछ चाहिए तो निःसंकोच कहना, अच्छा ?” उस महिला के पति ने कहा।

“आलोक ? .... पर मैं तो सतीश भाई को ढूँढ रही हूँ !” सुमन के मुँह से हड़बड़ाहट में निकला। वह असमंजस में पड़ गयी। उसने पूछा, “ये सतीश भाई के बड़े भैया उमेश भाई की बेटी की सगाई का समारोह है न ?”

वह दंपत्ति सशंक एक दूसरे को देखने लगे। अंत में महिला के पति ने कहा, “बेटा मुझे नहीं मालूम ये ‘सतीश भाई’ कौन हैं। शायद आलोक या मेरे बड़े बेटे का कोई दोस्त हो या ऑफिस कलीग हो .... मेरी जानकारी में तो ऐसा कोई मेहमान हमारी ओर से नहीं है। हाँ, शायद लड़के वालों की ओर से हो!”

“और ये सगाई नहीं, बल्कि विवाह समारोह है। यहाँ हमारी बड़ी पोती मेधा का विवाह है। बेटा आपको तो पता ही है कि आजकल घराती और बाराती एक ही स्थान पर रुकते हैं और विवाह की सारी विधियाँ हँसी ख़ुशी निपट जातीं हैं !” उस महिला ने कहा।

सुमन को लगा जैसे चक्कर आ रहे हों ! हड़बड़ी में उसने निमंत्रण पत्र पर्स से निकाला। “मेघा संग रोहित” लिखा हुआ था। उस पर वधु का नाम मेघा था, न कि मेधा ! सिर पकड़ लिया सुमन ने। लेकिन पता तो यही था ! फिर नामों वाली गड़बड़ कैसे हो गयी ? और इतना बड़ा संयोग कि केवल लड़की के नाम में अंतर था .... लड़के के नाम भी एक ही थे !

तभी कहूँ, कि मेहन्दी वाली क्यों आयीं हैं .... मंच पर लड़का या लड़की कोई नहीं आये थे अबतक .... आखिर गाजे - बाजे के साथ बारात आती ! वह गलत समारोह में आ गयी थी। ....परन्तु पता तो यहीं का था !

सुमन रुँआसी हो गयी। किसी तरह स्वयं को संभाला। तो क्या उमेश भाई की बेटी मेघा की सगाई आज नहीं है ? या लिखा हुआ पता गलत है ! उसने उस दंपत्ति से क्षमा मांगी।

“कोई बात नहीं बेटा .... ये तो शेक्सपियर की “कॉमेडी ऑफ़ एरर” या कहें मिस्टेकन आइडेंटिटी की घटना हो गयी ! हो जाता है कभी - कभी .... अभी आप यहीं रूककर अपने पति की प्रतीक्षा करो। चिंता मत करो, वो आते ही होंगे !” वृद्ध दंपत्ति सुमन के प्रति सहानुभूति रख रहे थे।

सुमन को अब वहाँ रुकना तर्कसंगत नहीं लग रहा था। एक - एक क्षण बहुत भारी लग रहा था। सांझ घिर गयी थी। बादलों के कारण अँधेरा सा होने लगा था। वहाँ खड़े रहना या बैठना चोरों की भांति लग रहा था। लगता था मानों सभी लोग उसे ही घूर रहे हों। खुद को ही दोष दे रही थी वह। यहाँ पहुँचते ही उसका ध्यान ये ‘मेधा’ और ‘मेघा’ नामों के अंतर पर क्यों नहीं गया ! स्वयं पर क्षोभ होने लगा। उसके पास फोन भी नहीं था। किसी से फोन माँगने में संकोच भी हो रहा था। उसने तय किया कि वह लौट जाएगी - जैसे आयी वैसे ही वापस चली जाएगी। वर्षा प्रारंभ हो गयी थी। किन्तु सुमन के मार्ग में अवरोध नहीं उत्पन्न कर सकती थी ! सुमन ने ठान लिया था। अब वह मेट्रो स्टेशन पहुँच कर ही रुकने वाली थी। बारिश में ही चल पड़ी। किसी ने छतरी ले लेने का आग्रह किया जिसे सुमन ने अनमने मन से स्वीकार कर लिया। हवा भी चल रही थी। हवा के झोंके छतरी को स्थिर नहीं रहने दे रहे थे। समारोह स्थल से बाहर आकर उसने देखा कि कहीं रिक्शे नहीं दिख रहे थे। बरसते पानी और हवाओं के झोंकों से दुबक कर कहीं छुप से गए थे सारे रिक्शे वाले ! सड़क पर भरे पानी के गड्ढों से बचते हुए सुमन पैदल ही चलने लगी। एक्के - दुक्के लोग छतरी थामे सड़क पर चलते दिख रहे थे। लगता था मानो सुमन को ही घूर रहे थे। सुमन को पहना हुआ अपना सादा सूट भी भड़कीला लगने लगा। नेत्र अश्रु पूरित हो गए। चलते - चलते पैर मुड़ गया और दुखने लगा। तभी एक ऑटो दिखा जिसे सुमन ने बेतहाशा दौड़कर रोका। उसके हाथ से छतरी भी छूट गयी। परन्तु उसे परवाह नहीं थी। शीघ्र ही ऑटो में सवार होकर सुमन ने मेट्रो स्टेशन ले चलने को कहा। जब ऑटो में बैठ गयी तो उसका ध्यान गया कि ऑटो वाला रियर व्यू मिरर से उसे देख रहा है और जैसे उसने सुमन की बात को सुना ही न हो ! सुमन ने अपनी आवाज़ को यथासंभव संयत रखते हुए सख्ती से ऑटो वाले को एक बार पुनः मेट्रो स्टेशन की ओर चलने को कहा। अब ऑटो वाला बिना कुछ बोले रास्ते

पर अपना ऑटो सरपट दौड़ाने लगा। सुमन के मन में उथल - पुथल हो रही थी। हृदय रह - रह कर कंठ तक आ रहा था। घबराहट के मारे रोम - रोम काँप रहा था, परन्तु ये समय भावुक हो कर स्वयं को ग्लानी की गर्त में डालने का नहीं था। वह सुरक्षित सकुशल अपने घर पहुँचना चाहती थी। बारिश के कारण सबकुछ धुंधला दिख रहा था। बगल से जा रहे वाहन पानी से भरे गड्ढों से गुज़र कर छींटें उड़ा रहे थे और दूसरी ओर से आ रहे वाहनों की हेड लाइट्स से आँखें चुंधिया रहीं थीं। तभी उसका ध्यान गया कि ऑटो वाले ने एक चौराहे पर दाहिने के स्थान पर बांये हाथ की ओर ऑटो मोड़ दिया था। डर और संशय से आतंकित होकर उसने थोड़ी तेज़ आवाज़ में ऑटोवाले से गलत मोड़ लेने के बारे में पूछा तो उसने बताया कि चौराहे पर वर्षा का जलभराव हो गया है और दाहिनी ओर की सड़क पर बड़े गड्ढे हैं जिसमें ऑटो पलट सकती है। इसलिए आगे वाले चौक से घुमाकर, अगली लाल बत्ती पर दाहिना लेकर मेट्रो स्टेशन तक ले जायेगा।

सुमन के पास उसपर विश्वास करने के सिवा कोई और मार्ग नहीं था। खैर वह सकुशल मेट्रो स्टेशन पहुँच गयी। प्रसन्न होकर उसने ऑटोवाले को बीस रुपये अतिरिक्त दे दिए। सुमन मेट्रो स्टेशन के अन्दर आकर फिर घबरा गयी - वह सहसा भूल ही गयी, कि यहाँ से कौन सी लाइन की मेट्रो लेनी है, ब्लू या पिंक ! भगवान का शुक्र है कि जल्दी ही उसे याद आ गया कि पिंक लाइन से जाना है। अब कालकाजी जाने के लिए कौनसे स्टेशन से मेट्रो लाइन बदलनी है... ये याद करने में उसे थोड़ा समय लगा। इतना कठिन नहीं था परन्तु हड़बड़ी में सुमन अपना ध्यान केन्द्रित करके सोच नहीं पा रही थी। अंत में ध्यान आया कि उसे लाजपत नगर जाना है, फिर वहाँ से कालकाजी के लिए दूसरी मेट्रो लाइन पर जाना है ! लो, उसे सारे स्टेशन याद आ गए थे ! सुमन मन ही मन अपनी इस सफलता से बहुत प्रसन्न हुई। चलो, कालकाजी तक तो वह पहुँच ही जाएगी। परन्तु फिर उदास हो गयी क्योंकि उसका घर तो और आगे था - हरीश ने तो बीच रास्ते में कालकाजी मेट्रो स्टेशन के पास उतार दिया था। एक बार कालकाजी पहुँचकर आगे घर तक कैसे जाएगी वह ? वह अकेले निकली ही क्यों ! क्या ज़रुरत थी ऐसे दुस्साहस करने की ? देखो अब न ठीक से रास्ता पता है, न फोन है, न कोई साथ ही है, जैसे दिन के समय उस

महिला का साथ मिल गया था। अब तो सच में पूरा सफ़र अकेले ही करना होगा.... वो भी पूछ - पूछ कर।

स्टेशन पर दिन की अपेक्षा इस समय अधिक लोग दिख रहे थे। कदाचित अनवरत वर्षा के कारण लोग भीगने से बचने के लिए भी खड़े थे। ये सब देख कर जान में जान आई। सुमन की बढ़ी हुई हृदय गति भी धीरे - धीरे सामान्य होती गयी। उसने घर पर फोन करने की सोची। उस जूस कार्नर वाले से फोन माँगकर कर सकती हूँ। जाने क्यों लोगों की भीड़ में से किसी से फोन माँगने का मन नहीं था। किसे फोन करूँ, हरीश को ? या फिर राशी बिटिया को ? बार - बार मन ये चाह रहा था कि कहीं से हरीश सामने आ जाए और उसे अपने साथ ले जाये। साथ ही में हरीश पर गुस्सा भी आ रहा था कि उसने एक बार भी सुध नहीं ली।

हरीश सुध लेता भी कैसे ! वह स्वयं फोन लाना जो भूल गयी थी। घबरा मत सुमन, सब ठीक हो जायेगा। तू अकेली नहीं है। थोड़ा धैर्य रख सब ठीक होगा। ऐसे स्वयं को समझाते हुए जैसे सुबह किया था, वैसे ही अनुसरण करती हुई सुमन मेट्रो के कोच में घुस गयी। अब तक तो सब ठीक ही था। यद्यपि अन्दर बहुत भीड़ थी, फिर भी एक सज्जन व्यक्ति ने उठकर सुमन को बैठने के लिए अपनी सीट खाली कर दी। कुछ स्टेशन गुज़रे ही थे कि मेट्रो में घोषणा हुई कि कुछ अपरिहार्य कारणों के चलते यह मेट्रो लाजपतनगर पर नहीं रुकेगी, वरन सीधे 'आई.एन.ए'. मेट्रो स्टेशन पर रुकेगी। वहाँ से यात्रिगण पीली मेट्रो लाइन से अमुक-अमुक स्थानों के लिए आगे की यात्रा कर सकते हैं। स्वाभाविक ही था, सुमन बहुत घबरा गयी। उसे चिंता होने लगी कि कैसे आगे जाएगी वह ! आस - पास देखा तो अधिकतर लोग शान्त ही दिख रहे थे। जैसे, ऐसे किस्से होना उनके लिए सामान्य बात थी। सुमन तो कुछ क्षणों के लिए व्याकुल हो गयी थी। गहरी सांस ली उसने। दो स्टेशन के बाद अन्य यात्रियों के साथ ही सुमन भी मेट्रो से उतर गयी।

हर स्टेशन पर सभी ओर जाने वाली हर रंग की मेट्रो लाइनों के सभी स्टेशनों का उल्लेख करते हुए बड़े - बड़े नक़्शे लगे होते हैं। सुमन ने ध्यान दिया कि ज़मीन पर भी विभिन्न रंगों के चरण बने हुए थे जो विभिन्न दिशाओं

की ओर जा रहे थे और अमुक रंग की मेट्रो लाइन का प्लेटफार्म अमुक तल पर होने का संकेत देते हुए छपे हुए थे अतः सुमन को अपने गंतव्य स्टेशन तक जाने के लिए अगली मेट्रो लाइन ढूँढने में बहुत असुविधा नहीं हुई। एक - दो बार अन्य यात्रियों से पूछना पड़ा, और लोगों ने उसे सही जानकारी दी। उसके जैसे और लोग भी असमंजस में घूम रहे थे। उन्हें देखकर भी सुमन ने धीरज धरा।

शीघ्र ही सुमन अपनी मेट्रो लाइन में चढ़ गयी थी और बैठने के लिए भी स्थान मिल गया था। सुमन को कालकाजी के लिए आगे एक बार और मेट्रो लाइन बदलनी पड़ी। अंततः वह अपने गंतव्य स्थल के लिए मेट्रो यात्रा के अंतिम चरण में थी ! एक ही दिन में मेट्रो से यात्रा करने का उसे अच्छा - खासा अनुभव हो गया था ! अब अगला यक्षप्रश्न था, गंतव्य स्टेशन से अपने घर तक कैसे पहुँचा जाये ! वह उधेड़बुन में थी। टैक्सी नहीं कर सकती थी। उसके पास मोबाइल नहीं था। ऑटो के हिसाब से दूरी अधिक थी। वह यह भी अनुमान नहीं लगा पा रही थी कि उस क्षेत्र में भी वर्षा हो रही थी या नहीं। वह रह - रह कर अपनी कलाई घड़ी देख रही थी। आज देर तो हो जानी ही थी। जाने हरीश उस सगाई समारोह स्थल पर पहुँचा होगा उसे लेने के लिए ? क्या पता ! .... नहीं, अवश्य ही गया होगा। अब वह भी चिंतित हो रहा होगा। नहीं - नहीं .... मुझे उसे अभी ही फोन करके अपनी सकुशलता के विषय में बता देना चाहिए। क्या हुआ जो फोन किसी से माँगना पड़ेगा। ये काम पहले ही कर देना चाहिए था।

उसने हिम्मत करके पास में बैठी महिला को अपनी स्थिति समझाते हुए फोन माँगा जो उसने सहर्ष ही दे दिया। सुमन ने झटपट हरीश को फोन लगाया।

"हेल्लो .... " हरीश की आवाज़ सुनते ही सुमन निहाल हो उठी। लगा जैसे वह सामने ही हो !

"हेल्लो हरीश, मेरी चिंता मत करना। मैं मेट्रो से कालकाजी तक पहुँच रही हूँ। आप वहाँ, सगाई के लिए पहुँचे थे क्या ? मैं किसी से फोन लेकर बात कर रही हूँ। मैं घर तक पहुँचने के लिए टैक्सी नहीं कर पाऊँगी ....।"

“ज़रुरत नहीं पड़ेगी .... सुमि, मैं तुम्हें मेट्रो स्टेशन पर ही मिल जाऊँगा।” हरीश की वाणी कितनी संबल देने वाली थी !

“आपकी मीटिंग कैसी रही ? .... बारिश तेज़ है क्या ? तेज़ बारिश में कार मत चलाना। मैं स्टेशन पर प्रतीक्षा कर लूँगी” सुमन भावुक हो गयी।

“बस, बस फोन रखो। किसी और का है न ! मैं शीघ्र ही पहुँचता हूँ ....।” उसका फोन कट गया था। सुमन ने घड़ी देखी। अभी भी कुछ मिनट शेष थे उसका स्टेशन आने में। सुमन ने उस महिला का धन्यवाद किया और हरीश की शीघ्र पहुँचने वाली बात पर मन ही मन मुस्कुरा उठी। अगले क्षण बड़ी कठिनाई से कटने वाले थे।

सुमन मेट्रो ट्रेन की बड़ी काँच की खिड़की से बाहर देखने का उपक्रम कर रही थी कि अगले स्टेशन पर सुमन के बगल में बैठा युवक उतर गया। और तत्काल एक व्यक्ति आकर बैठ गया। सुमन का ध्यान उस व्यक्ति पर गया।

सुमन को विश्वास नहीं हुआ ! ये तो हरीश ही है !, “हरीश आप ?! ....मैं बता नहीं सकती मैं कितनी खुश हूँ आपको देखकर !” सुमन लगभग चीख ही पड़ी थी।

“और मैं तुम्हें देखकर सुमि !”हरीश ने मुस्कुराकर कहा।

“आप यहाँ कैसे .... मेट्रो में ? और कार कहाँ है ?” सुमन गुत्थी सुलझाने का प्रयास करने लगी।

“कार तो वहीं है, उसी स्टेशन के पार्किंग लॉट में, जहाँ तुम्हें छोड़ा था।”

“सच्ची, मैं बता नहीं सकती, आपको देख कर मैं कितनी खुश हूँ ! मुझे आपकी बहुत याद आ रही थी और बच्चों की भी ! और वहाँ मेघा की सगाई का नहीं, किसी मेधा की शादी का समारोह था .... मैं ही गलत जगह पहुँच गयी .... ” सुमन ने भावातिरेक होकर मानो सबकुछ उगल दिया।

“मैं तो पूरे समय तुम्हारे साथ ही था। मुझे सब पता है, कैसे तुम मेट्रो के सिक्युरिटी चेक में गड़बड़ाई थी, फिर एक लड़की ने तुम्हारी मदद की थी, फिर

वो महिला जो तुम्हें मेट्रो में मिली थी .... फिर उस हॉल के बाहर खड़े गार्ड ने तुम्हें अन्दर जाने दिया .... सुमि, सतीश की भतीजी की सगाई तो है, उसी वेन्यू पर है पर अगले महीने है !"

सुमन को कुछ समझ नहीं आ रहा था। वह उलाहना देते हुए बोली, "तो मुझे क्यों नहीं बताया ?! मैं भी बुद्धू, कार्ड ठीक से देखा ही नहीं और चल पड़ी सगाई अटेंड करने !" सुमन ने कार्ड निकालने के लिए झट से पर्स खोला। हरीश ने प्रेम से उसका हाथ थाम लिया और बोला, "सुमि, इस कार्ड पर आज की ही डेट है !"

सुमि की अविश्वास से आँखें फैल गयीं। ये क्या हो रहा है !

हरीश ने सुमन के कंधे पर हाथ रखकर कहा, "मैं बताता हूँ। ये कार्ड मैंने और सतीश ने अलग से छपवाया था ....रुको, तुम्हें पूरी बात समझाता हूँ ,और हाँ, इस में तुम्हारा भाई और बच्चे भी शामिल है !"

"ये क्या है सब ?" सुमन ने अविश्वास से मुँह ढँक लिया।

"सुमि, मैं और बच्चे चाहते थे कि तुम अकेले सफ़र करो, परिस्थिति का सामना करो। इसलिए ये प्लान बनाया। देखो .... इस बात से तुम मना नहीं कर सकती कि कहीं भी अकेले जाने में तुम कितनी आनाकानी करती हो। तुम बहुत समझदार, सुघड़, बुद्धिमती, प्रतिभावान, घर परिवार पर प्राण न्योछावर कर देने वाली महिला हो .... बस ये किसी न किसी पर तुम्हारा निर्भर रहना मुझे और बच्चों को कचोटता है। अकेले कहीं आना - जाना नहीं चाहती तुम! इस तेजी से बदलती दुनिया में तुम कहीं खो न जाओ 'एक साथ' ढूँढ़ते हुए ! आखिर अकेले ट्रेवल करना इतना भी कठिन नहीं था, है न ?....और सगाई में भेजना तो एक बहाना था ! ऐसे ही, तुम अकेले मेट्रो में सारा शहर घूमने जाने के लिए तो कतई तैयार नहीं होतीं, है न ? आखिर एक कारण भी तो होना चाहिए था, तुम्हारे 'एकला चलो रे' अभियान का !" हरीश ने हँसते हुए बात पूरी की।

"आपको क्या पता .... कितनी बार धडकनें बढ़ गयीं थीं मेरी ! फिर फोन भी नहीं था मेरे पास !" सुमन के चेहरे पर हरीश के मिलने की प्रसन्नता

थी और बच्चों तथा पति ने मिलकर उसके साथ जो युक्ति की थी, उसका विक्षोभ भी था।

“फोन हमारे घर से निकलने से पहले ही मनु ने तुम्हारे बैग से निकल दिया था !” हरीश ने कहा। उसके चेहरे पर मुस्कान खिली हुई थी जिसे देख सुमन और चिढ़ गयी।

“पर सुमि, तुम अकेले होकर भी अकेली नहीं थीं .... मैं पूरे समय तुम्हारे आस - पास ही था। तुम्हें कार से उतार कर मैनें फटाफट कुछ ही दूरी पर खड़े सतीश को कार दे दी थी। वो याद है, सुबह ऑफिस से इम्पोर्टेन्ट मीटिंग का फोन आया था ! वो वास्तव में मैं और सतीश ही बात कर रहे थे। फिर मैं भागकर मेट्रो स्टेशन में घुसा। मुझे अनुमान था कि तुम ज़रूर घबराहट में कुछ उलट - पुलट करोगी .... पर तुमने जल्दी ही अपना आत्मविश्वास पा लिया था।”

“हाँ, वो एक प्यारी सी राशी जैसी ही लड़की मिल गयी थी जिसने मदद कर दी थी !” सुमन ने भावुक होकर उस लड़की को याद किया।

“वो लड़की राशी की सहेली है।” हरीश ने बताया।

हैरान होकर सुमन बोली, “याने वो भी आप लोगों के प्लान में शामिल थी ?”

“हाँ,” हरीश ने कहा।

“हैं.... !?” सुमन को विश्वास नहीं हो रहा था।

“सुमि, तुम्हें अकेले, वो भी बिना फोन के, इस मेट्रो के सफ़र में ऐसे ही तो नहीं छोड़ सकता था ! .... पर मुझे गर्व है कि तुम अकेले सब कर पायीं !”

हरीश कहता गया, “तुमनें ऑटो किया, सगाई वाले वेन्यू तक जाने के लिए। फिर वहाँ गार्ड ने अन्दर जाने दिया था। अन्दर तुम किसी को नहीं जानती थी, पर तुमने साहस और धैर्य से काम लिया .... सतीश का दोस्त है आलोक। भलामानुष है, उसने हमारे प्लान में हमारी मदद की। मैं तो बाहर गार्ड रूम में ही बैठ गया, तुम्हारे बाहर आने तक, तुम्हारी प्रतीक्षा की। यदि

तुम अधिक देर तक वहीं रुकी रहती तो मुझे सामने आना ही पड़ता.... आखिर हम किसी और के शादी समारोह में जो घुस गए थे !" हरीश ने मुस्कुराते हुए बात पूरी की।

सुमन सोचने लगी कि कौन सा व्यक्ति आलोक होगा जो उसे देखकर मन ही मन हँस रहा होगा !

"मेरी भोली सुमन सतीश भाई को खोजती रही जो वहाँ आने ही वाला नहीं था ! अन्त में तुमने तय किया कि वहाँ रुकने का लाभ नहीं है और तुम वापस आने के लिए निकल पड़ीं। सुमन, मैं तुम्हारे ऑटो के पीछे ही दूसरे ऑटो से मेट्रो स्टेशन तक आया था ! एक पल भी तुम्हे अपनी आँखों से ओझल नहीं होने दिया !" और जब मेट्रो तकनीकी कारणों से लाजपतनगर पर नहीं रोकी गयी तो तुमने हिम्मत से काम लिया और घर आने के लिये मेट्रो का नया रूट ढूँढा !"

"सच हरीश आप सारे समय मेरे साथ ही थे ?!" सुमन बहुत भावुक हो गयी।

"कैसे न रहता .... मैं और तुम एक दूसरे के सहगामी ही तो हैं !"

सुमन के चेहरे की प्रसन्नता की सीमा न थी। वह बोली, "अच्छा, चलो जल्दी से घर पहुँचने का मन हो रहा है, बच्चों से भी मिलना है !" सुमन हर्षित थी। गंतव्य का स्टेशन भी आ ही गया था।

"अभी घर नहीं, कहीं डिनर करने चलते हैं। कार इसी स्टेशन की पार्किंग में खड़ी है। कार की दूसरी चाबी मेरे पास है। तुमने सुबह से कुछ खाया नहीं है और मेरे पेट में भी चूहे कूदफांद कर रहे हैं, तो खाना खाकर ही जायेंगे .... बच्चों की चिंता मत करो। वो पहले ही बाहर से खाना आर्डर कर चुके हैं !"

सुमन आज बहुत खुश थी। मेट्रो ट्रेन स्टेशन पर रुकी और वे दोनों स्टेशन से बाहर आ गए ।

सुमन ने हरीश से कहा, "चलो मेरे सहगामी, आज का डिनर मेरी ओर से ! और हाँ, मैं कल ही कार ड्राइविंग स्कूल का रजिस्ट्रेशन फॉर्म भर दूँगी ....

वह भी ऑन लाइन ! थोड़ा राशी से पूछना पड़ेगा, पर कर लूँगी !" सुमन खिलखिला कर हँस पड़ी थी। उसने हरीश का हाथ थाम कर आगे बढ़ने की पहल की। उसका मुख आत्मविश्वास से दमक रहा था।

यही तो हरीश देखना चाहता था !

****

आम की बौर

आज कुछ अधिक ही ट्रैफिक था। गाड़ियों की रेल - पेल थी और नाना प्रकार के हॉर्न सुनाई दे रहे थे। मार्च महीने का अंत था और ठण्ड ने जाने की आहट दे दी थी। दोपहर की तीक्ष्ण धूप थी। चित्रा ने हॉस्पिटल के सामने से ही टैक्सी कर ली थी। उसे अपने पति कैलाश की मेडिकल रिपोर्ट्स एवं फार्मेसी से दवाइयाँ हॉस्पिटल से लेनी थीं जिसे लेकर अब वह घर को जा रही थी। मोबाइल कैसे प्रयोग करना है, ये सब पड़ोस की मीनू ने चित्रा को सिखा दिया था। अब 'ऐप' के द्वारा टैक्सी कैसे बुलाते हैं ये भी चित्रा सीख गयी थी। और आजकल तो अपनी भाषा का भी चुनाव हो सकता था !

वैसे चित्रा पढ़ी - लिखी महिला है किन्तु दिन प्रतिदिन तकनीक में आये बदलावों को समझने में समय लगता है चित्रा को। यद्यपि उसने हार नहीं मानी है। कैलाश, चित्रा के पति, एक सम्मानित पद पर कार्य करके सेवानिवृत्त हो चुके हैं। मधुमेह के कारण उनकी दृष्टि कमज़ोर हो गयी है। कुछ वर्ष पहले बाथरूम में गिर गए थे, तब से बायीं एड़ी में हमेशा पीड़ा रहती है। घुटनों में भी दर्द रहता है। पैरों में सूजन रहने लगी है। जब पति ने कार चलाना छोड़ दिया तो चित्रा ने पचपन वर्ष की आयु में कार चलाना सीखा.... यद्यपि दोनों बेटों ने ड्राईवर रख लेने का आग्रह किया था। तब तो चित्रा और कैलाश टाल गए थे कि वो दोनों 'मैनेज' कर लेंगे। लेकिन अब पिछले कुछ वर्षों से चित्रा ने भी ड्राइव करना बहुत कम कर दिया है - इस महानगर के अनवरत चलते यातायात में स्वयं को अयोग्य मानने लगी है वह। आत्मविश्वास कम हो चला है। आखिर इसी महीने में वह इकहत्तर वर्ष की हो जाएगी ! हाँ, कैलाश भी दिसंबर में चौहत्तर वर्ष के हो जायेंगे ! अगले वर्ष उनकी विवाह की पचासवीं वर्षगाँठ भी पड़ेगी !

चित्रा और कैलाश का बड़ा बेटा चेन्नई में अपने परिवार के साथ रहता है। बहू भी बहुराष्ट्रीय कंपनी में काम करती है। दो युवा बेटियाँ हैं, अपनी माँ की ही तरह सुशील और मेधावी हैं। छोटा बेटा अपनी पत्नी और किशोर बेटे के साथ गुरुग्राम में ही रहता है। कुछ ही वर्ष पहले विदेश से वापस भारत आया है और बहुत ही अच्छी नौकरी कर रहा है। छोटी बहू भी एक निजी कंपनी में अच्छे पद पर कार्य कर रही है।

टैक्सी में बैठकर चित्रा को तेज़ धूप से छुटकारा मिला। टैक्सी थोड़ा आगे बढ़ी ही थी कि पुनः सिग्नल की बत्ती लाल हो गयी। चित्रा अधीर होने लगी। अधिक विलम्ब हो गया तो कैलाश के खाना खाने का समय गड़बड़ हो जायेगा। मधुमेह के कारण वे दोनों ही खान - पान और उनके अंतराल का बहुत ध्यान रखते थे। चूँकि दोनों ही वृद्धावस्था में थे तो शिथिलता आने लगी थी। चित्रा अब घर - बाहर के सारे काम करने में थकने लगी थी। परन्तु कोई और चारा भी नहीं था। चित्रा ने दीर्घ श्वांस ली। दोनों ही बेटे हर बार तो आ नहीं सकते थे दिन प्रतिदिन के कामों का निपटारा करने !

बच्चों की अच्छी परवरिश करने में चित्रा और कैलाश ने पूरा जीवन होम कर दिया। अब जीवन के उत्तरार्ध में पुत्रों के युवा और मजबूत सहारे की आवश्यकता लगने लगी थी। किन्तु बच्चे अपनी - अपनी घर गृहस्थी में व्यस्त थे। बच्चे बहुत पढ़ें, विदेश जाएँ , बहुत कमायें .... ऐसे ही तो सपने देखे थे चित्रा और कैलाश ने ! अब यही कर रहे थे दोनों पुत्र ! पिछले दो - तीन वर्षों से अकेले जैसे सबकुछ संभालना चित्रा को असंभव सा लगने लगा था, विशेषकर जबसे कैलाश की देखने की क्षमता में तेज़ी से कमी आई थी, तब से। चूंकि बच्चे नहीं आ सकते थे तो इन्होनें ही वहाँ जाकर रहना आरम्भ किया था। परन्तु बेटों के घर जाकर भी तो दोनों का मन नहीं लगता था। उनकी आपाधापी की दिनचर्या और नयी पीढ़ी के पोते - पोतियों की भिन्न - भिन्न व्यस्तताओं के मध्य में इन बूढ़े हो गए लोगों के मेडिकल परामर्श, खान - पान का परहेज़ और हर दिन बदलती तकनीकी बारीकियों के बीच सामंजस्य बिठाने में सभी लोगों को समस्या आती थी। परिणाम स्वरुप कुछ दिन रहकर वृद्ध दंपत्ति वापस अपने घर आ जाते थे। कुछ अधिक दिन रुक जाते तो

अपराधबोध की भावना से भर उठते .... ये सोचकर कि सारे समय वो ही रहेंगे तो बहुओं के माता - पिता अपनी बेटियों के पास कब आकर रहेंगे ! आखिर वो लोग भी तो उन्हीं दोनों की तरह ढलती आयु के थे।

"आज बहुत ज़्यादा ही ट्रैफिक है।" बात करने की गरज से चित्रा टैक्सी ड्राईवर से बोली। बहुत देर से मन में चल रहे विचारों की श्रृंखला को तोड़ना चाहती थी वह।

"अरे मैडम, क्या बताऊँ .... मैं तो सुबह तीन बजे से टैक्सी चला रहा हूँ.... !" टैक्सी वाले की आयु लगभग साठ - पैंसठ के आसपास होगी।

"पहले एअरपोर्ट की सवारी थी, फिर घर जाकर 'चा' पी, घरवाली ने रोट्टी बाँध के दी .... फिर रेल्वे स्टेशन के दो चक्कर लगा चुका हूँ। अब आपको छोड़कर कहीं बैठकर रोट्टी खाऊँगा, फिर गाड़ी चलाऊँगा .... देर रात हो जाती है मैडम।" टैक्सी वाले ने एक ही सांस में अपनी पूरी दिनचर्या बता दी।

"इस उम्र में भी काम करना पड़ रहा है ?!" चित्रा के मुँह से निकल गया। तत्काल मन ही मन खेद व्यक्त किया।

" जो दो वक़्त की रोट्टी खानी है मैडम, तो काम तो करना ही पड़ेगा....!"

टैक्सी ट्रैफिक जाम में फंस गयी थी। आगे फ्लाईओवर के पास एक सिटी बस ख़राब हो गयी थी जिससे यातायात अस्त - व्यस्त हो गया था। किसी को धैर्य नहीं था। बस सब अपनी गाड़ी आगे रखना चाहते थे। तिल रखने को जगह नहीं थी। दो पहिया वाहन तो फुटपाथ पर चढ़ - चढ़कर आगे जाने का प्रयत्न कर रहे थे ! ये नयी पीढ़ी के युवा कुछ अधिक ही अधीर हैं ! कभी नहीं सुधरेंगे ! चित्रा का मन खिन्न हो गया।

"बड़े अरमान थे जी, की बहू आवेगी, 'चा' पिलावेगी, गरम खाना खिलावेगी .... मैं और मेरी घरवाली आराम से खाट पर बैठेंगे और पोत्ता - पोत्ती में मन रमावेंगे, बुढ़ापा चैन से कट जावेगा .... पर ना जी ! .... म्हारे छोरे ने नाक कटवा दी .... मैडम !, एकलौता छोरा था म्हारा .... बोलो ! घर जमाई

बन के बैठा सै !.... अपनी अम्मा और बापू खात्तर कोई चिंता नहीं है छोरे को!" टैक्सी वाले की आवाज़ भर्रा गयी थी।

चित्रा अवाक् हो गयी। उसका मुँह खुला रह गया। चित्रा ड्राईवर का चेहरा तो पूरा नहीं देख सकती थी पर उसके चेहरे के भावों की अनुभूति कर सकती थी। वह कुछ बोली नहीं। संभवतः उसके हाव - भाव ड्राईवर रियर व्यू मिरर में देख सकता था। अतः ड्राईवर ने बोलना जारी रखा, "....मैडम जी, कोई फायदा नहीं बच्चों पर पैसा खर्च करने का। वो अपने मन की ही करते हैं .... बोलो !, म्हारा छोरा यहीं रहता है, हमारे घर से आद्धे घंटे की दूरी पे ! पर मजाल है की घर आवै !, बहू कोई पार्लर में नौकरी करने जावे है .... और क्या कहूँ, म्हारा छोरा अपने ससुर के साथ काम करता है .... इब के बार दिवाली पे मेहमान की तरह आया छोरा। दो बेटियों के बाद पैदा हुआ था नालायक ! बेटियाँ ब्याह कर ससुराल चली गयीं फिर भी फोन कर के खोज - खबर लेती रहतीं हैं। मैं तो यो बोलूँ, कि क्या फायदा ऐसे छोरे का ! बुढ़ापा तो हम दोनों बूढ़ा - बूढ़ी को एक दुसरे के सहारे ही काटना है !"

ट्रैफिक रेंग कर चल रहा था। टैक्सी वाले की भड़ास अभी पूरी निकली नहीं थी।

"अपनी कमाई का सौ रूपया भी नहीं देता .... अपनी अम्मा को भी नहीं! जब बच्चे छोटे थे, तब काम किया। अब वो सब घर से चले गए, ... पर अब भी काम करना पड़ रहा है .... जीने के लिए।"

चित्रा चुप थी। विचारों के भंवरजाल में पुनः गुम हो गयी। बुढ़ापे का अकेलापन वह और कैलाश भी काट रहे थे। यद्यपि आरम्भ में दोनों ने ही बच्चों से अलग, स्वतंत्र रूप से रहने का निर्णय लिया था ताकि वे बच्चों की प्रगति में बाधक न बनें। उनके बच्चे उन्नति कर रहे थे। किन्तु कभी - कभी एन केन प्रकारेण वे दोनों अपने बच्चों की प्रगति के कुछ सोपानों में बाधक बन जाते थे। जैसे एक वर्ष, बड़े पुत्र को कंपनी की ओर से तीन महीने के लिए जर्मनी भेजा जा रहा था, तब उन्हीं दिनों चित्रा के पैर का फ्रैक्चर हो गया। ऑपरेशन करवाना पड़ा। पूरे समय बेटा और बहू बारी - बारी से छुट्टी लेकर

रहे। बेटा विदेश नहीं जा पाया। ऐसे ही एक वर्ष बहुत वर्षा होने के कारण जब घर के सामने की बाउंड्री वाल टूट गयी, छत में कई जगह दरारें आ गयीं तो छोटे बेटे ने आकर सब कुछ मरम्मत करवाई। परिणाम ये हुआ कि वह अपने घर में कुछ नया इंटीरियर करवाना चाहता था, जो उसे अगले वर्ष के लिए टालना पड़ा।

ट्रैफिक की गति में सुधार आ गया था। कुछ देर तक टैक्सीवाले और चित्रा में कोई वार्तालाप नहीं हुआ। चित्रा अपने विचारों की उथल पुथल में अभी भी उलझी हुई थी .... उधर टैक्सीवाले के दुःख को भी वह अनदेखा नहीं कर पा रही थी। क्या अपने बच्चों से आशा रखना गलत था ? जब वह और कैलाश युवा थे, और बच्चे छोटे थे तब सीमित आय के साधन होने के बाद भी उन दोनों ने बच्चों और कैलाश के बुज़ुर्ग माता - पिता की देखभाल भली भांति की। दोनों ननंदों के विवाह अच्छे घरों में हुए, इतने वर्षों में दोनों ने किसी भी पास या दूर के सम्बन्धियों के मान - सम्मान में कहीं कोई कमी नहीं रहने दी। कितनी बार हुआ, कि बच्चों की पिकनिक ट्रिप या बर्थडे पार्टी में कैलाश दिल खोल कर खर्च करते, परन्तु स्वयं नयी शर्ट नहीं खरीदते और वही पुराने जूते ठीक करवाकर पहनते रहते ! कहते कि एक वर्ष और चल जायेगा ....अगले वर्ष ले लूँगा ! चित्रा स्वयं भी कई बार नयी साड़ी या गहने की इच्छा मन में ही दबाकर रख लेती।

बच्चों के साथ रहें तो उन्हें 'बोझ' की तरह तो नहीं लगेगा !?.... पर उनसे दूर रहें तो रिक्तता का भी तो अनुभव होता है ! सच यही था, कि बढ़ती आयु के कारण चित्रा और कैलाश को दैनंदिन के कार्य भी बहुत संघर्ष भरे लगने लगे थे। चित्रा को एकाएक बेटे, बहुएँ और पोते, पोतियों की बहुत याद आने लगी। वे लोग नहीं आ सकते। अपने काम छोड़कर कैसे आयेंगे ! विडियो कॉल पर बच्चों को देख - सुन कर मन ही नहीं भरता। इतनी भी क्या व्यस्तता !

चित्रा का गंतव्य आ गया था। कैलाश बाहर बरामदे में बैठे चित्रा की प्रतीक्षा कर रहे थे। गाड़ी रोककर टैक्सी वाला बोला, "मैंने तो तय कर लिया है मैडम जी, ज्यादा से ज्यादा दो साल और टैक्सी चलाऊँगा.... फिर घरवाली

को लेकर सिरसा चला जाऊँगा। टैक्सी और दो कमरे का घर बेचकर आधा पैसा बेटियों में बाँट दूँगा और बचा हुआ पैसा लेकर सिरसा में खेती करूँगा। बेटा - बहू घर आवे तो स्वागत है उनका .... नहीं तो दूर से ही आशीर्वाद सै!"

"भैया मन छोटा न करो, सब ठीक हो जायेगा !" पैसे देते हुए चित्रा बोली।

"हाँ मैडम जी, वो तो सही बात है। आखिर अपने ही बच्चे हैं .... वैसे इतना बुरा भी नहीं है छोरा .... ये नया मोबाइल उसी नालायक ने लाकर दिया है !" मुस्कुराकर टैक्सी वाला बोला। मन की सारी कड़वाहट बोलकर निकालने के बाद संभवतः उसे अच्छा लग रहा था।

चित्रा भी यंत्रवत मुस्कुरा दी। बरामदे तक आते हुए उसने ध्यान दिया कि लॉन की घास बहुत बढ़ गयी थी। कुछ गमलों के पौधे सूख रहे थे। बस बरामदे के आस - पास के गमले और क्यारियाँ हरीभरी थीं क्योंकि कैलाश वहीं तक देखभाल कर पाते थे। खिड़कियों और दरवाज़ों का पेंट होना था। बदरंग दिखने लगे थे। उसे ध्यान आया, घर में कई स्थानों पर टाइलें भी टूट रहीं थीं। बरामदे के बगल में एक पुराना आम का वृक्ष था जो बहुत कमज़ोर हो चला था, दरकने लगा था। वो तो अच्छा था कि उसकी छाँव में पनपकर एक युवा पेड़ मजबूती से खड़ा हो गया था और उसके कारण एक ओर से पुराने वृक्ष को सहारा भी मिल गया था !

तिनका - तिनका करके दोनों ने ये प्यारा घोंसला बनाया था। किन्तु अब लगने लगा था कि उनकी ही तरह ये घर भी बूढ़ा हो गया था। उन आम के वृक्षों को देखते हुए चित्रा के मन में विचार आया.... वह और कैलाश भी तो एक मजबूत सहारा चाहते थे.... अपने युवा पुत्रों का। बच्चे भी ये चाहते थे कि माता - पिता की देखभाल अच्छे से हो सके। इस पुराने घर और अपनी दिनचर्या की स्वतंत्रता के मोह ने उन्हें अपने पुत्रों से दूर कर रखा था। एक विचित्र स्थिति में थे वो लोग। उन्हें बच्चों का सानिध्य चाहिए था .... किन्तु अपना स्वातंत्र्य छोड़े बिना ! वे बच्चों की दिनचर्या में अपना सामंजस्य नहीं बिठा पाते थे। उनका स्नान - ध्यान, नाश्ता, दोपहर का खाना, डिनर, आदि

कुछ भी युवा पीढ़ी के साथ पटरी पर नहीं बैठ पाता था। तीसरी पीढ़ी के साथ तो कुछ भी नहीं जुड़ पाता था ! यद्यपि दोनों ओर से 'एडजस्ट' करने का प्रयत्न पूरी ईमानदारी से होता था। परिणाम स्वरूप दोनों ही पक्ष आधा - अधूरा तालमेल बैठा पाते थे।

कैसा विरोधाभास था ! वह टैक्सी वाला अपने बुढ़ापे का दुखड़ा रो रहा था। उसका पुत्र नहीं पूछता था, जैसी टैक्सी वाले की आशा थी। वह बेटा - बहू के साथ रहना चाहता था, परन्तु ये संभव नहीं हुआ था। यहाँ चित्रा के दोनों पुत्र बहुत ध्यान रखते थे, पास बुलाते थे। परन्तु चित्रा और कैलाश ही वहाँ जाकर अधिक दिन रुकना नहीं चाहते थे। यद्यपि उनसे दूरी चित्रा और कैलाश को अन्दर ही अन्दर खाए भी जा रही थी।

एक तरह से टैक्सी वाला और उसकी पत्नी तथा चित्रा और कैलाश एक ही सिक्के के दो पहलू थे। और 'सिक्का' था संतानों से दूर रहकर उपजा उनका अकेलापन ! दोनों ही अपनी - अपनी संतानों से दूर थे। अंतर ये था कि जहाँ टैक्सी वाला और उसकी पत्नी अपने पुत्र - पुत्रवधू का सानिध्य चाहते थे; बल्कि इधर चित्रा - कैलाश के पुत्र बुलाते थे, किन्तु ये ही वहाँ लम्बे समय के लिए रहने नहीं जाना चाहते थे। दोनों ही सन्दर्भों में संतानों का वियोग तो था ही !

विचारों में उलझी हुई चित्रा खाना गरम करने लगी। कैलाश अपनी 'शुगर लेवल' की जाँच कर रहे थे। मेडिकल रिपोर्ट्स संतोषजनक थीं किन्तु पिछले कुछ समय से कैलाश को मानों ये प्रतिदिन, बल्कि दिन में दो - तीन बार शुगर लेवल जाँच करने की आदत सी बनती जा रही थी ! रसोई की खिड़की से वही आम का वृक्ष दिख रहा था जो पास ही उगे हुए युवा वृक्ष की मजबूत शाखाओं के सहारे मानों टिका हुआ था ! चित्रा प्रकृति के इस उपाय को देखकर सराहे बिना न रह सकी। कभी ये युवा वृक्ष नन्हा पौधा रहा होगा जो बड़े वृक्ष की धूप - छाँव में धीरे - धीरे पनपा होगा। उसे संभवतः बड़े वृक्ष की जड़ों से सींचा हुआ खाद पानी भी मिला होगा। अब वही युवा वृक्ष एक प्रकार से पुराने हो चुके आम के वृक्ष को सहारा दे रहा था। यही संसार का नियम है कदाचित !

चित्रा ने खाना टेबल पर लगाकर कैलाश को आवाज़ दी। उसने गौर किया, कैलाश मुस्कुराते हुए टेबल के पास आये और कुर्सी खींच कर बैठ गए। चित्रा ने प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा तो कैलाश ने बिना बोले ही अपना मोबाइल चित्रा के सामने कर दिया। उनके छोटे पुत्र ने कुछ फोटो भेजे थे। दो दिन पूर्व उनकी सोसाइटी के स्थापना दिवस के उपलक्ष्य पर कई सारे कार्यक्रम आयोजित किये गए थे। चित्रा और कैलाश के पौत्र ने हाल ही में राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित हुई शतरंज प्रतियोगिता में स्वर्ण पदक प्राप्त किया था, तो उनकी सोसाइटी के कार्यक्रम में उसे विशेष रूप से सम्मानित किया गया था। ये तस्वीरें उसी अवसर की थीं। तस्वीरें देखकर दादा - दादी गर्व से फूले नहीं समाये। विशेषकर इन तस्वीरों के बीच एक तस्वीर को देखकर दोनों ही भावुक हो गए। उस तस्वीर में उनका पुत्र और पोता एक साथ गले में हाथ डाले मुस्कुरा रहे थे। दोनों के गले में स्वर्ण पदक थे और मुख पर गर्वित मुस्कान थी। वस्तुतः समारोह से घर आने के बाद पिता - पुत्र ने यह एक विशेष तस्वीर खिंचवाई थी।

चित्रा कैसे भूल सकती थी कि उनका छोटा पुत्र भी राष्ट्रीय स्तर पर शतरंज का विजेता रह चुका था। परन्तु इस तस्वीर से भी अधिक भावुक करने वाली अगली तस्वीर थी। उसमें युवा कैलाश और उनके बगल में उनके दोनों पुत्र खड़े थे - और दोनों के गले में अंतर शालेय शतरंज प्रतियोगिता के पदक थे। कैलाश ने भी तब अपने कॉलेज के जमाने का जीता हुआ पदक गले में पहना हुआ था। ठीक ही तो था ! पिता से पुत्र सीख रहे थे और परंपरा को संजो कर रख रहे थे ! जाने कब ये वाली तस्वीर छोटा पुत्र अल्बम से निकाल कर ले गया था ! अतीत को याद करते हुए चित्रा के मन में आया कि काश वो और कैलाश छोटे पुत्र के पास होते तो सोसाइटी के उस कार्यक्रम को देख सकते थे ! चित्रा ने ध्यान दिया कि कैलाश बहुत स्नेह से पिता - पुत्रों वाली तस्वीर को उँगलियों से छू रहे थे, सहला रहे थे .... मानों स्मृतियों में उन दिनों को याद कर रहें हों !

चित्रा ने कैलाश को इतना प्रसन्न बहुत दिनों बाद देखा था। यह क्षण चित्रा के लिए निर्णायक मोड़ लेकर आया। उसने तत्काल सोचा कि वे इस

दिवाली से पहले छोटे बेटे की ही सोसाइटी में एक छोटा फ्लैट ले लेंगे - इस घर को बेचकर । जो अतिरिक्त राशी बचेगी, वह उन दोनों के ही काम आएगी । बच्चे कितने वर्षों से ऐसा करने को कह रहे हैं । चित्रा और कैलाश ही टाल रहे थे । इस पुराने घर का मोह छोड़ना होगा । वे दोनों बूढ़े हो चुके आम के वृक्ष की तरह कमजोर हो रहे थे । उन्हें अपने पुत्रों के सहारे की आवश्यकता थी । और इसे स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए था । वहाँ रहेंगे तो छोटा बेटा और बहू घर आते - जाते रहेंगे, और उन दोनों को अपनी दिनचर्या में कुछ बदलाव नहीं करना पड़ेगा । वे पास - पास रहेंगे किन्तु अपने - अपने स्वतंत्र घरों में ! बड़े बेटे को भी उनकी चिंता थोड़ी कम होगी । इस बढ़ती आयु की ढलान में चित्रा और कैलाश को बच्चों के सानिध्य का पड़ाव लेना ही होगा, और क्या पता, उनके साथ रहने से, उनके बेटे और पुत्रवधु को थोड़ी मदद ही हो जाय । सोचते - सोचते चित्रा की दृष्टि पुनः रसोई की खिड़की से बाहर आम के वृक्ष पर गयी । उसने पहली बार गौर से देखा, भले ही वह आम का वृक्ष कमजोर हो गया था और नये वृक्ष का सहारा ले रहा था पर उस पुराने आम के वृक्ष पर अब भी छिटपुट बौर आ रही थी । चित्रा विचार करने लगी । वह और कैलाश वृद्ध हो गए थे । परन्तु पुत्रों के जीवन में, और समाज के लिए अब भी महत्वपूर्ण योगदान कर सकते थे । यहाँ एकाकी जीवन व्यतीत करके वे दोनों एक तरह से अपने पुत्रों की प्रगति में व्यवधान ही उत्पन्न कर रहे थे, क्योंकि एन केन प्रकारेण उन दोनों को पुत्रों का सहारा तो लेना ही पड़ता था । इस वास्तविकता को समझ जाने की आवश्यकता थी । ठीक उस बूढ़े हो चुके वृक्ष की तरह जिसने युवा वृक्ष के मजबूत तने का सहारा लिया हुआ था । और तो और, कहाँ समाप्ति की ओर अग्रसर था यह वृक्ष, किन्तु अब इस पर नयी बौर भी आ रही थी !

ऐसे ही अपने छोटे पुत्र की सोसाइटी में रहने से उनका एकाकीपन समाप्त हो जायेगा । वह और कैलाश, दोनों ही प्रबुद्ध हैं, समाज के लिए समुचित योगदान कर सकते हैं । वे दोनों व्यस्त रहेंगे और पुत्रों को उन दोनों के स्वास्थ्य की कम चिंता होगी । अपने निर्णय के विषय में सोचते हुए चित्रा मुस्कुरा उठी और कैलाश के साथ फोटो देखने में व्यस्त हो गयी ।

कैलाश ने चित्रा को मुस्कुराते हुए देखा तो कारण पूछ ही लिया। चित्रा ने कहा, “कैलाश, देखो उस पुराने आम के पेड़ में मजबूती आने लगी है, और अब तो बौर भी आने लगी है मौसम में !”

“हाँ !, मैंने भी ध्यान दिया था। वो एक युवा वृक्ष बगल में ही है न ! उसी का सहारा लेकर ये पुराना वाला मजबूत हो गया है। देखना अभी कुछ और साल फल आते रहेंगे इस पर !” कैलाश की वाणी में उत्साह था।

उत्तर में चित्रा कुछ नहीं बोली बस हामी में सिर हिलाया और मुस्कुरा दी।

जाओ क्षमा किया

सुरक्षा जाँच के बाद मीरा ने शीघ्रता से उस गेट की ओर प्रस्थान किया जिस पर उसकी उड़ान आने वाली थी। दो दिन का मुंबई में काम था, फिर उसे एक सप्ताह के लिए मालदीव्स जाना था। इस बार टेलीविजन अवार्ड शो मालदीव्स में होना था। अधिक कुछ काम नहीं था उसके पास .... बस एक - दो अवार्ड प्रेजेंट करने थे, सपोर्टिंग रोल के लिए नोमिनेट हुई थी वह ....! उसके लिए उत्साह था। यद्यपि वह जानती थी कि प्रतिस्पर्धा में वह अपनी साथ की अभिनेत्रियों से बहुत पीछे रह गयी थी, अवार्ड जीतने के अवसर क्षीण थे किन्तु फिर भी वह शो में जाना चाहती थी। अनंतोगत्वा वह इतने वर्षों के संघर्ष भरे 'शो बिज़' के वातावरण को अच्छी तरह से समझने लगी थी। उगते सूर्य को सब प्रणाम करते थे, डूबते सूर्य को कोई देखता तक नहीं था। वैसे भी उसके बाद काली रात ही तो आती है ! मीरा भी उसी लम्बी, कभी न ख़त्म होने वाली रात में फंसी हुई थी। ये अवार्ड शो जैसे एक तरह से काली घनेरी सुरंग के अंतिम छोर पर चमकती हुई रोशनी थी। कदाचित उसे कुछ ढंग का काम मिल जाय ! पिछले कुछ वर्षों से उसे भाभी या माँ के ही पात्र मिल रहे थे। इस क्षण - प्रतिक्षण बदलती 'टी आर पी' के चक्कर में धारावाहिकों के कथानक इतने जल्दी - जल्दी बदल जाते थे कि उसे लगने लगा था, अब ढलती आयु में उसे दादी माँ के भी रोल मिल जाये तो वह अपने भाग्य को सराहे !

मीरा अपना पर्स एक कंधे पर सँभालते हुए और दूसरे हाथ से छोटा अटैची केस खींचते हुए अपनी उड़ान के गेट नंबर की ओर चल पड़ी थी। थोड़ी दूर पर उसी की तरह अधेड़ अवस्था की एक महिला अपनी किशोरवय पुत्री के साथ खड़ी थी। उसने मीरा की ओर देखते हुए अपनी पुत्री को संकेत किया। वह किशोरी भी मुड़कर देखने लगी। दोनों मीरा को देखकर मुस्कुराने लगे। जब मीरा पास पहुँची तो दोनों ने आगे बढ़कर साथ में खड़े होकर फोटो खींचने का आग्रह किया, जिसे मीरा ने प्रसन्नता से मान लिया। फोटो के समय

मीरा में मानों सहसा पुरानी वाली प्रसिद्ध, युवा और धनाढ्य 'माएरा' का संचरण हो गया ! अब उसकी भाव भंगिमाएँ एक सफल, अभिमानिनी, स्वयंसिद्धा स्त्री की थीं। यद्यपि आज उसका यौवन ढल चुका था और चेहरे की कमनीयता समाप्ति की ओर थी जिसे मेकअप की परतों से ढँक रखा था; फिर भी जो भी था, उस क्षणिक फोटो सेशन ने कई रातों से न सोये हुए सूजे हुए नेत्रों में चमक ला दी थी।

"थैंक यू माएरा जी !" किशोरी की माँ ने मीरा से कहा। मनोरंजन की दुनिया में 'माएरा' ही मीरा का नाम था। प्रत्युत्तर में मीरा मुस्कुरा दी।

मीरा ने अपने पुराने अंदाज़ में हाथ हिलाकर उन माँ - बेटी से विदा ली और आगे बढ़ गयी। उसका मन प्रसन्न हो उठा था। तो आखिर लोग आज भी उसे याद रखते हैं, उसके फैन हैं ! वह अपनी प्रसन्नता के हिलोरों में गोते खा ही रही थी कि उसने उस बेटी की आवाज़ सुनी....

"मम्मा, ये तो वही हिरोइन 'माएरा' है न जिनका धारावाहिक आप तब देखती थी जब मैं दो - तीन साल की थी !"

"हाँ बेटू, तुम उस सिरिअल के गाने के बजते ही डांस करना शुरू कर देती थी, ताली बजाती थी .... कितनी पुरानी बात है न .... अब तो इनका भी तुम्हारी उम्र का बेटा या बेटी होगी।" माँ ने बात पूरी की।

"अरे मम्मा, आपको कुछ पता नहीं है, ये तो किसी अभिनेता के साथ रह रहीं थीं, अब ब्रेकअप हो गया है इनका।"

"चुप कर, वो सुन लेगी ...." माँ ने डपट लगाई।

"मम्मा लेकिन सोशल मीडिया पर तो ये ही सब गॉसिप है .... और देखो, मेकअप भी कितना ज़्यादा किया है !" किशोर पुत्री ने और जानकारी दी।

"चुप ....!" माँ बेटी को खींच कर मीरा से दूर ले गयी। किन्तु उन दोनों का वार्तालाप मीरा के कानों में कर्कश ध्वनी की तरह बजता रहा। उसे ध्यान ही नहीं रहा और वह दूसरे यात्री की अटैची से ठोकर खा बैठी। ऊँची एड़ी की

चप्पल के कारण पैर मुड़ गया और बड़ी मुश्किल से अपना संतुलन बना पायी वह। शरीर पर तो चोट लगी ही, मन भी बुरी तरह से घायल हो गया था।

अपनी उड़ान के निर्धारित गेट के सामने लाउंज में जैसे - तैसे पहुँचकर मीरा बैठ गयी। मोटा काला चश्मा पहन लिया। उसकी आँखों में नमी थी। वैसे क्या गलत कहा था उन माँ - बेटी ने ! वह युवा तो रह नहीं गयी थी .... सच में समय से संतान होती तो किशोर वय की तो होती ही ! आयु के वर्ष रेत की तरह मुट्ठी से फिसलते जा रहे थे। अपने आप को 'सर्कुलेशन' में बनाए रखने के लिए मीरा को बहुत पापड़ बेलने पड़ते थे। ये सोशल मीडिया भी दोधारी तलवार की तरह होता है। जहाँ मीरा की स्वयं के द्वारा ही डाली हुई तस्वीरें लोगों को आसानी से भूलने नहीं देती थीं, वहीं सोशल मीडिया पर ही उसके व्यक्तिगत जीवन पर अनर्गल बातें भी लिखी होती थीं।

कुछ ही क्षणों में मीरा की पिछले बीस वर्षों की जीवन यात्रा उसके मानस नेत्रों के आगे घूम गयी। असंख्य खट्टे - मीठे, यादगार, कुछ हृदय के बहुत समीप, कुछ हृदय को विदीर्ण करने वाले अनुभवों का लेखा - जोखा था। मीरा ने अपने विचारों को विराम लगाते हुए दीर्घ श्वास ली। उसकी उड़ान को अभी बहुत समय था। परन्तु वह एअरपोर्ट पर जल्दी ही आ गयी थी। वैसे भी होटल के कमरे में क्या करती ! यद्यपि वहाँ मुंबई में भी कोई उसकी प्रतीक्षा नहीं कर रहा था ! किसी भी शहर में वह रहे, अकेलापन हर जगह काटने दौड़ता था। यहाँ एअरपोर्ट की चहल - पहल में उसकी व्याकुलता कम हो जाती थी। पिछले कुछ अरसे से मीरा ऐसा कई बार करने लगी थी। एअरपोर्ट, मॉल या मूवी थिएटर के अनगिनत अपरिचित चेहरों के मध्य वह अपने आप को सुरक्षित अनुभव करने लगी थी। बस काला चश्मा पहनो, स्कार्फ डाल लो या किसी पुस्तक में मुख छुपा लो ! यदि किसी ने पहचान ही लिया तो थोड़ी ख़ुशी भी मिल जाती थी।

सहसा मीरा का ध्यान उससे कुछ कतारें आगे बैठे एक परिवार पर गया। माता - पिता एवं एक अट्ठारह - उन्नीस वर्ष की पुत्री। उन लोगों की पीठ मीरा की तरफ थी अतः मीरा उनके चेहरे ठीक से नहीं देख पा रही थी। किन्तु कभी-कभी तनिक सी झलक देखने को मिल जाती थी, विशेषकर पुत्री की। वह

बहुत आकर्षक, चंचल और उत्साह से भरपूर थी। वे तीनों बातों में लगे हुए थे, उनकी भाव भंगिमाओं से वह बहुत ही प्रसन्नचित्त लग रहे थे। पुरुष बीच की कुर्सी पर बैठा था, माँ और बेटी उसके अगल - बगल बैठे थे। बेटी अपने पिता की बहुत लाडली प्रतीत हो रही थी। वह हँसती, खिलखिलाती थी, तो पिता प्रेम से सिर पर हाथ फेर देता। कभी पुरुष और वह स्त्री एक दूसरे की ओर झुककर बात करते, जिसपर कभी पुरुष, कभी वह स्त्री सहमति में हामी भरते दिखते। मीरा उस परिवार के परस्पर प्रेम और उससे बड़ी बात, उस प्रेम के निष्पाप प्रदर्शन को देख अभिभूत हो गयी। उसे स्वयं पर दया भी आयी। उसका भी परिवार हो सकता था। आखिर कामकाजी महिलाओं के भी तो हँसते - खेलते, प्रसन्न परिवार होते हैं !

उसी की तरह अभिनेत्रियों के भी सफल परिवार होते हैं .... तो उसका क्यों नहीं बन पाया !?

तभी वह लड़की उठकर तेजी से पीछे की ओर आने लगी। उसने चलते-चलते ही अपनी माँ को आवाज़ दी, "मम्मा, काला या ओरेंज ?" .... "और आप ....?" उसने उस पुरुष से भी पूछा।

दोनों ही अभिवाहकों ने मुड़कर कहा, "नो कोल्ड ड्रिंक्स !" पुत्री मायूस हो गयी।

"नहीं बेटा, मेरी फ्लाइट का समय हो ही गया है .... मैं कुछ नहीं लूँगी।" माँ ने जोर से कहा ।

"हाँ बिटिया, मम्मा ठीक कह रही है ।" पुरुष ने कहा। वे दोनों ही पूरी तरह से मुड़कर अपनी पुत्री को समझाने लगे। बेटी मान गयी। बोझिल कदमों से वापस गयी और उनके साथ बैठ गयी । थोड़ी ही देर में वही हँसी, खिलखिलाना शुरू हो गया। सच में वह लड़की उत्साह से भरी हुई युवा थी। उसके आस - पास कोई भी उदास या उदासीन नहीं रह सकता था ! मीरा के चेहरे पर बरबस ही मुस्कान आ गयी। तत्क्षण जैसे उसे धक्का लगा। वह पुरुष जाना पहचाना लग रहा था ! वही डीलडौल, तीख़ी नाक, बाएँ गाल पर पड़ता

गड्ढा, हाँ चश्मा पहना हुआ था। बालों में चाँदी उतर आई थी, पर अब भी घुंघराले थे !

राजीव.... !

वह कैसे भूल सकती थी राजीव को ! और ये साथ में महिला कौन है ? ....अरे, यह तो गौरी है ! मीरा को जैसे चक्कर ही आ गया। उसके स्मृति पटल पर धूमिल हो चुके कुछ दृश्य पुनः अंकित हो गए। राजीव, उसका पति था ! वैसे 'एक्स' पति कहना चाहिए था। और गौरी उसकी देवरानी थी। पर ये दोनों साथ में हैं ! तो क्या उसके देवर की मृत्यु के बाद इन दोनों ने विवाह कर लिया था ?!

मीरा को उन दोनों को साथ में देख कर बुरा क्यों लग रहा था, ये वह समझ नहीं पा रही थी। राजीव से सम्बन्ध विच्छेद करना उसका स्वयं का निर्णय था। अब वह किसी से भी विवाह कर ले, मीरा को बुरा नहीं लगना चाहिए था। फिर भी मीरा नारी सुलभ ईर्ष्या और संताप से भर उठी। उन्नीस वर्ष बीत चुके थे उनका तलाक़ हुए , किन्तु अभी लग रहा था कि जैसे कल की ही बात है।

तभी उद्घोषणा हुई कि दिल्ली से अहमदाबाद को जाने वाली उड़ान की बोर्डिंग आरंभ हो गयी है। वह परिवार अपना सामान समेटने लगा। वस्तुतः केवल गौरी को ही इस उड़ान में जाना था। वह अपना पर्स लेकर लाइन में खड़ी हो गयी। साथ ही में अपनी बेटी को बाँहों में लेकर कुछ बातें करने लगी। देखने से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह उसे कुछ समझा रही थी। उसकी बेटी ध्यान से सुन रही थी, और सिर हिलाकर हामी भी भर रही थी। इस समय दोनों माँ - बेटी की आँखों में नमी थी। राजीव ने बेटी के सिर पर हाथ रखा और गौरी को भी बाहों के घेरे में लेकर ढाँढस बँधाया। बहुत ही भावुक दृश्य था। मीरा सम्मोहित सी देखती रही। कुछ ही क्षणों में परिवार एक दूसरे से अलग हुआ और गौरी ने दोनों को हाथ हिलाकर बाय कहा।

"बाय मम्मा ! .... पहुँचते ही फोन करना। और नानू - नानी का ध्यान रखना ....!" बेटी बोली।

“टेक केयर गौरी .... इस शैतान की चिंता मत करना।” राजीव ने भी हाथ हिला कर मुस्कुराते हुए विदा किया।

उस परिवार का परस्पर स्नेह मीरा से देखा नहीं जा रहा था। ईर्ष्या से जलकर राख हो रही मीरा से वहाँ रुकना दूभर हो रहा था। राजीव से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था। उसे तो वो ही तोड़ चुकी थी - कई वर्षों पहले !

....और ये गौरी ! वह सोचने लगी - सुन्दरता और आकर्षण में गौरी मेरे पासंग भी नहीं थी .... न अब है। किन्तु कैसे उसे राजीव का पूरा ध्यान, प्रेम और साथ मिल रहा है ! सुदर्शन व्यक्तित्व के राजीव और उसके छोटे भाई संजीव में मीलों का अंतर था। वही अंतर मुझमें और गौरी में था ! जब हम दोनों पति - पत्नी किसी पार्टी में साथ खड़े होते तो लोग मुड़कर देखते ! .... अब क्या हो गया है राजीव को ! .... और भाई के मरते ही झट से विवाह भी कर लिया ! छी !! मुझे कहते थे सब, कि मुझमें कोई मानवीय भावनाएँ नहीं हैं। तो ये क्या है !

मीरा से ये सब देखा नहीं जा रहा था। वह विचारों में गुम थी। अन्ततः वह झट से उठी और फूडकोर्ट की ओर चली गयी। सारी भूख प्यास तो मर चुकी थी, किन्तु फ़ूड कोर्ट की चहल - पहल से उसका खिन्न मन थोड़ा शांत हो गया। बेमन से उसने कॉफ़ी आर्डर की। बेयरे ने उसे नहीं पहचाना। कभी-कभी जब कोई उसे पहचानता नहीं था तो उसे बहुत अच्छा लगता था। आज भी कुछ ऐसा ही हुआ। उसने बुरा नहीं माना।

रह - रह कर राजीव का चेहरा उसकी आँखों के सामने आ रहा था। और उसके साथ बिताये हुए वो स्वर्णिम वर्ष ! कॉलेज के समय से दोनों एक दूसरे को जानते और पसंद करते थे। एकदम विरुद्ध स्वभाव वाले दोनों युवा, प्रेम में पड़ ही गए थे। मीरा सुन्दर तो थी ही, बहुत महत्वाकांक्षी भी थी। उसका स्वप्न था स्वयं एक सफल अभिनेत्री बनने का। राजीव और उसके घर के सभी लोग इस के विरोध में भी नहीं थे। फिर क्यों उसने राजीव को छोड़ने का निर्णय लेना सही समझा !? विचारों का क्रम उसे धकेलते हुए अतीत की ओर ले ही गया। उनके विवाह के एक वर्ष बाद ही संजीव और गौरी का विवाह हो गया

था। गौरी सीधी - सादी लड़की थी। मुजफ्फरनगर से दिल्ली आकर रहना ही उसके लिए मानों सच हो गया बहुत बड़ा स्वप्न था ! दूसरी ओर मीरा दिल्ली की ही पली - बढ़ी तेज़ तर्रार लड़की थी। गौरी वैसे भी उससे हर क्षेत्र में उन्नीस ही पड़ती थी। परन्तु वह अपने जेठ - जेठानी का बहुत मान करती थी। समय हँसी ख़ुशी कट रहा था। मीरा ने कुछ विज्ञापनों के लिए मॉडलिंग करना आरम्भ कर दिया था। गौरी सहर्ष घर के काम संभाल रही थी। दैवयोग से ऐसा संयोग हुआ कि, मीरा ने अगली पीढ़ी के आने के शुभ संकेत दे दिए। घर में प्रसन्नता अपरम्पार थी। सास - ससुर ख़ुशी में फूले नहीं समाते थे।

सब बहुत प्रसन्न थे, बस मीरा असमंजस में थी। संतान का आना उसके अभिनेत्री बनने के स्वप्न के पूरे होने में सबसे बड़ा गतिरोध था। अब उसे कुछ धारावाहिकों में काम करने के अवसर मिल रहे थे। मॉडलिंग प्रोजेक्ट्स के लिए भी मुंबई या जयपुर आदि जाना पड़ता था। राजीव और उसके माता - पिता संतान के पक्ष में थे। किन्तु मीरा तो कुछ और ही चाहती थी। मीरा को अपने करिअर के इस सोपान पर संतान नहीं चाहिए थी। एक तो पहले ही विवाहित स्त्री का अभिनेत्री के रूप में सफल होना आसान नहीं था, और अब ये संतान !

यद्यपि राजीव ने यहाँ तक कहा था कि एक बार संतान होने दो, माँ - पापा और मैं संभाल लेंगे, तुम बिना किसी चिंता के अपने सपने पूरे करो। परन्तु मीरा नहीं मान रही थी। घर में तनाव का वातावरण रहने लगा था। तभी परिवार पर एक और विपदा आन पड़ी। संजीव का निधन एक सड़क दुर्घटना में हो गया। घर में दुखों का पहाड़ ही टूट पड़ा। किसी को कोई सुध ही न रही थी। सास - ससुर के लिए तो यह एक हृदय विदारक आघात की तरह था। ससुर को तो हृदयाघात के चलते अस्पताल में भरती करना पड़ा। गौरी तो मानो बुत की तरह हो गयी थी। रो - रो कर उसकी आँखें सूज गयीं थीं। जब रोते - रोते थक जाती तो चुपचाप कोने में बैठकर शून्य में ताकती रहती थी। ऐसे ही कुछ दिन निकल गए। यद्यपि मीरा भी दुखी थी, तथापि उसे अपने भविष्य की तड़प ज्यादा थी। उसे चिंता थी कि अधिक विलम्ब किया तो गर्भपात का विकल्प उसके पास नहीं रहेगा। अन्ततः उसने एक दिन ये घोषणा

कर ही दी। सास तो चक्कर खाकर गिर ही पड़ी। सास ने स्वयं विनती की, राजीव से कहलवाया कि मीरा ऐसा न करे। आखिर सास एक पुत्र खो चुकी थी। अब बड़ी पुत्रवधू यदि गर्भपात जैसे निर्णय लेने लगे तो चिंता का विषय तो था ही। यदि मीरा न माने तो परिवार की वंश बेल कौन बढ़ायेगा। लेकिन मीरा अटल थी अपने निर्णय पर। उसे संतानोत्पत्ति के बाद शरीर में आने वाले बदलावों की चिंता खाए जा रही थी। वास्तव में स्वयं से आगे वह कुछ सोच ही नहीं पा रही थी या कि संभवतः सोचना नहीं चाहती थी। अब सास दबाव डालने लगी थी। किन्तु मीरा किसी भी मूल्य पर अपना भाग्य स्वप्न नगरी मुंबई में आजमाना चाहती थी। इसलिए उसने अपनेआप को सभी पारिवारिक बंधनों से मुक्त करने का निर्णय ले लिया। वह तलाक लेकर सभी से मुक्त हो गयी - राजीव से भी, और संतान से भी !

और ....आज उसके सामने राजीव का हँसता खेलता परिवार था ! और वह स्वयं को नितांत एकाकी पा रही थी। उसे एकाएक गौरी का दमकता हुआ चेहरा याद आ गया। नहीं ! .... वह मुझसे अधिक सुन्दर कैसे लग सकती है ! मीरा ने झट से पर्स में से अपना कॉम्पैक्ट मेकअप किट निकाला। प्रसाधन कक्ष तक जाने का भी धैर्य नहीं था उसमें ! मीरा वहीं बैठकर अपने चेहरे का बनाव श्रृंगार करने लगी। इतने वर्षों के कृत्रिम प्रसाधनों के प्रयोग और अत्यंत आपाधापी वाली संघर्ष भरी सितारों की चमक भरी दुनिया के रहन - सहन के फलस्वरूप मीरा का चेहरा निस्तेज और शरीर अस्वस्थ रहने लगा था। ख्याति और प्रसिद्धि के शिखर पर जब एक बार मीरा पहुँची भी थी तो वह बहुत ही क्षणिक अंतराल के लिए था। मीरा शीर्ष पर बने रहने के अनेक नैतिक - अनैतिक मार्गों पर चल चुकी थी। अंततः ढलती आयु ने उसे नीचे धकेल ही दिया। इतने वर्षों में कुछ पुरुष उसके जीवन में आये - कुछ उसकी व्यवसायिक सफलता के लिए उपयोगी रहे तो कुछ ने उसकी 'पोज़िशन' का फायदा उठाया। आज पैंतालिस की आयु में वह नितांत अकेली थी। ढलते शरीर, टूटे मन और लगभग समाप्त हो चुके आत्मविश्वास को सँभालने के लिए उसे एक जीवन साथी के मजबूत कंधों की आवश्यकता थी।

तभी उसने देखा कि राजीव अपनी पुत्री के साथ सामने ही एक बुक स्टोर में था। बहुत ध्यान से देखने लगी वह। कौन सी किताब है .... 'एक योगी की आत्म कथा'....उफ्फ ! अब भी इतनी भारी फिलोसोफिकल किताबें पढ़ता है राजीव ! पहले भी ऐसा ही था वह। विज्ञान या दर्शन .... ये ही दो रुचियाँ थीं उसकी। हाँ क्रिकेट का भी वह बहुत दीवाना था। मीरा को लगा कि राजीव ने संभवतः उसकी ओर देखा था। मीरा ने लज्जित होकर मुख स्कार्फ में ढँक लिया। क्या सोचेगा वह, कि मैं उसे घूर रही थी !

क्या उसने मुझे पहचाना होगा ? .... हाँ, क्यों नहीं ! ....आखिर इतने साल साथ भी तो थे हम। .... फिर मुझसे जुड़े हुए समाचार सोशल मिडिया पर तो रहते ही हैं ! क्या करूँ .... बात करूँ ? .... नहीं ....। अपने काम से काम रख मीरा। वह तुझे भूल चुका है .... पर तू क्यों याद कर रही है !

उसने देखा, बुक स्टोर में राजीव और उसकी पुत्री किसी बात पर हँस रहे थे। पुत्री ने किसी बात पर नाटकीय रूप से अपने कान पकड़े और उठक - बैठक करने ही वाली थी कि राजीव ने उसे रोका और किसी अगले स्टोर की ओर भेज दिया जहाँ पुत्री वैसे भी जाना ही चाह रही थी। मीरा पिता - पुत्री की नोक झोंक को देखकर मन ही मन मुस्कुराये बिना नहीं रह सकी। तत्काल यथार्थ ने उसे धक्के से वर्त्तमान में लाकर पटक दिया। मीरा विवश होकर ठंडी हो चुकी कॉफ़ी को चम्मच से हिलाने लगी। मुँह का स्वाद तो मानों पहले ही कसैला हो गया था .... कॉफ़ी पीने का मन बिलकुल नहीं रहा था।

उसकी फ्लाइट की बोर्डिंग होने में अभी भी अवकाश था। वह वहाँ से भाग जाना चाहती थी। कहीं ....बहुत दूर ! ऐसा लगता था कि उसकी प्रतीक्षा अंतहीन हो गयी थी ....। तभी उसकी टेबल पर एक बेयरे ने दो कॉफ़ी लाकर रख दी। इससे पहले वह कुछ कहती, वह बेयरा अंतर्धान हो गया। जिस ओर बेयरा गया था, उस दिशा में मीरा कुछ क्षण देखती रही यह सोचकर कि यदि बेयरे का ध्यान उसकी ओर जाए तो सामने रखी कॉफ़ी के बारे में पूछ सकती थी। बेयरा नहीं दिखा। मीरा ने निराश होकर वापस अपनी टेबल की ओर रुख किया, तो वह चौंक गयी। सामने राजीव खड़ा था।

राजीव सामने की कुर्सी खींच कर बैठ गया। मीरा ने उसे साक्षात सामने बैठा देखा तो वह किंकर्तव्य विमूढ़ हो गयी। राजीव का ऐसे आना बहुत ही अप्रत्याशित लगा। परन्तु वह राजीव से बात करना चाहती थी। कुछ ही क्षणों पहले हँसती खिलखिलाती गौरी का चेहरा याद आते ही मीरा का अन्तःस्थ जल - भुन गया था। स्वयं को बहुत ही गौण अनुभव करने लगी थी। परन्तु अपने असफल व्यक्तिगत जीवन और सार्वजनिक जीवन के लिए भी राजीव को ही दोष देना चाह रही थी। क्योंकि संभवतः एक राजीव ही तो था जिससे वह अपना अच्छा - बुरा, सही - गलत कह सकती थी। इतने वर्षों में कितने ही पुरुष उसके जीवन में आये - गए किन्तु मीरा को केवल राजीव ही घूम - फिर कर याद आ जाता था। उसने मन ही मन माना कि कृत्रिम चकाचौंध में रह कर उसने असली हीरा खो दिया था।

"कैसी हो मीरा .... या कि कहूँ .... कैसी हैं माएरा जी आप ?" राजीव अपनी कॉफ़ी घोलते हुए बोला। उसके मुख पर चिपरिचित मुस्कान पसरी हुई थी।

"माएरा !" राजीव के मुख से अपने लिए ये नाम कितना अपरिचित लगा! जिस नाम को सुनकर मीरा इतने सालों से कितना प्रसन्न हो जाती थी, गर्व से फूली न समाती थी, आज वही नाम 'माएरा' जैसे किसी और का नाम लग रहा था। मीरा को अपना 'ओल्ड फैशंड' नाम 'मीरा' आज बहुत प्यारा लगने लगा। तो राजीव ने मुझे पहचान लिया था ! .... और 'नोटिस' भी किया था कि मैं यहाँ बैठी हूँ ! मन ही मन मीरा पुलकित हुई।

तत्क्षण उसका खोखला अहम् आड़े आया। अपनी ही कुर्सी पर मीरा काठ की तरह कठोर हो गयी। किन्तु प्रत्यक्षतः मुस्कुराकर बोली, "फेबुलस!...." "मुझे क्या हुआ.... बस थोड़ा बिज़ी शेड्यूल है ....नाईट शिफ्ट्स, डिफरेंट लोकेशंस,.... यू नो !" पता नहीं मीरा इतना सारा बढ़ा - चढ़ा कर क्यों बता रही थी।

"अरे,अरे.... मैंने तो ऐसे ही पूछ लिया था। मुझे पता है 'आप' बहुत व्यस्त रहती होंगीं ! .... वैसे मानना पड़ेगा कि तुमने मुझे इतनी दूर से पहचान

लिया ! ....तुम मुझे किताबें खरीदते हुए देख रहीं थीं न !?" राजीव के चेहरे पर स्मित यथावत था। कहीं कोई मलिन विचार नहीं .... बस एक सीधासादा औपचारिक वार्तालाप था।

राजीव ने मीरा का मंगाया हुआ कॉफ़ी का कप परे सरकाते हुए कहा, "तुम्हारी कॉफ़ी ठंडी हो चुकी है। ये वाली ले लो .... गर्म है।.... थोड़ा फ्रेश फील करोगी।" राजीव ने हमेशा की तरह प्रेमपूर्ण भाव से कहा।

मीरा के ह्रदय में अलग ही उथल - पुथल हो रही थी। क्या बात करूँ.... ? गौरी इसके साथ क्यों थी.... ? होगी ही, आखिर दोनों ने शादी जो कर ली है.... पर मुझे क्यों फर्क पड़ेगा ! राजीव ही खुद सबकुछ क्यों नहीं बता देता !? मीरा के चेहरे के हाव - भाव उसके भीतर चल रहे विचारों के क्रम के अनुसार बदल रहे थे।

अंततः राजीव ने ही वार्तालाप आरंभ किया।

"कहाँ जा रही हो ?" उसने पूछा।

"मुंबई !" मीरा ने आतुरता से उत्तर दिया। उसे बात करने का सूत्र मिल गया। जैसे अपने मनोभावों पर नियंत्रण करने का अवसर मिल गया। वह राजीव की पुत्री की ओर एक दृष्टि डालते हुए बोली, "बड़ी प्यारी बच्ची है.... स्मार्ट है, ध्यान से देखूँ तो शी इज़ वेरी अट्रेक्टिव !"

"तुम शो बिज़ वालों का ध्यान 'लुक' पर ही ज़्यादा जाता है.... खैर, उसका नाम गायत्री है। और जैसा नाम है, माँ गायत्री का वरदहस्त है उसपर। पहले मरीन बायोलॉजी में डिग्री करेगी, फिर विदेश से आगे की पढ़ाई करना चाहती है। इन्फेक्ट थोड़ी ही देर में हमारी फ्लाइट का समय होने ही वाला है। मैं गायत्री को छोड़ने ही जा रहा हूँ...."

"....वो गौरी थी न ?" मीरा राजीव को बीच में ही टोकते हुए बोली। उसका राजीव की बातों पर ध्यान ही कहाँ था ! वह तो इस छोटे से खुशहाल परिवार के बीच के सीधेसादे सम्बन्ध में कोई गाँठ या कोई टूटती कड़ी ढूँढने का प्रयास करने में लगी हुई थी।

राजीव मुस्कुरा कर गायत्री की ओर देखने लगा। उसकी बात तो मीरा काट ही चुकी थी। उसने उस बात को अधूरा ही छोड़ दिया। परन्तु मीरा अन्दर ही अन्दर अंगार बन चुकी थी। सीधे जवाब क्यों नहीं देता ! मुस्कुरा कर मुझे जलाना चाहता है।

"गौरी क्यों नहीं जा रही तुम लोगों के साथ ? खैर.... , मुझे कुछ नहीं कहना चाहिए.... इट्स योर पर्सनल मैटर !" ऐसा कह कर भी सबकुछ जानना चाहती थी मीरा।

राजीव पूर्ववत स्मित के साथ बोला, "गौरी के पिताजी बड़े समय से अस्वस्थ हैं सो वह वहाँ, अहमदाबाद चली गयी....तुमने देखा ही होगा थोड़ी देर पहले। गौरी का भाई अहमदाबाद में रहता है। गौरी के माता - पिता वहीं हैं। मैं भी गायत्री को उसके कैंपस में सैटल करके वहाँ चला जाऊँगा। बहुत समय हो गया उन सबसे मिले हुए।"

"घर में माँ - बाबूजी कैसे हैं....?" मीरा ने अनजाने में ही पूछ लिया। आखिर कुछ साल उनके साथ रही थी वह। कुछ तो जुड़ाव हो ही गया था। वस्तुतः मीरा पिछले कुछ अरसे से कमला नगर वाले सीधे - सादे जीवन को प्रायः याद करती रहती थी जिसे कई वर्षों पहले वह स्वयं ही ठोकर मार कर चली गयी थी।

राजीव के चेहरे के भाव कठोर हो गए। फिर भी संयत स्वर में बोला, "बाबूजी नहीं रहे। कई साल पहले, ...संजू के जाने के बाद वो उस आघात से उबर ही नहीं पाए। माँ ठीक है ....। "

"अब भी कमला नगर में ही रहते हो ? .....मैं अगली बार दिल्ली आई तो ज़रूर...."

"उसकी आवश्यकता नहीं होगी। वैसे भी हम वह घर जल्दी ही छोड़ रहे हैं।" राजीव कॉफ़ी ख़त्म करते हुए बोला।

“कहाँ शिफ्ट हो रहे हो ?.... दिल्ली में ही, या नोएडा.... या गुड़गाँव ?” मीरा जानने को आतुर थी। इस बार राजीव को नहीं छोड़ना है...., चाहे तो गौरी से लड़ना ही क्यों न पड़े !

“एज़ यू सेड.... इट्स माय पर्सनल मेटर.... सो तुम्हें क्या करना है जानकर ? तुम वैसे ही बहुत व्यस्त हो....।”

गायत्री तब तक तीन - चार किताबों का बण्डल उठाये वहीं पहुँच गयी। मीरा को देखकर उसकी बड़ी - बड़ी आँखें और भी चौड़ी हो गयीं। वह ख़ुशी के मारे चीखते हुए बोली, “ओह माय गॉड.... माएरा जी !.... आई मीन ‘दी माएरा’ !” फिर गायत्री राजीव की ओर मुड़कर बोली, “आप तो बड़े छुपेरुस्तम निकले !”

राजीव ने कहा, “अरे हाँ बाबा.... माएरा जी और मैं एक ही कॉलेज से पढ़े हैं।”

गायत्री ने झटपट एक किताब मीरा के सामने कर दी और कहा, “ऑटोग्राफ प्लीज़ ....!”

मीरा मुस्कुरा उठी। उसने कांपते हाथों से उस किताब पर हस्ताक्षर कर दिए।

“ थैंक्स ! .... अरे ये क्या, आपने तो ‘मीरा’ लिखा है !.... बट आई मस्ट से, आप पर मीरा नाम बहुत जंचता है !” गायत्री चहककर बोली। वह ध्यान से मीरा के हस्ताक्षर देखने लगी।

राजीव ने दूसरी ओर मुख कर लिया। मीरा काले चश्में के पीछे अपनी नम आँखों को छुपाने लगी। राजीव ने कितना कहा था, कि नाम मत बदलो। पर तब मीरा को अपने आगे कुछ सूझ ही नहीं रहा था। गायत्री ने राजीव के कंधे हलके से छूते हुए कहा, “हमारी फ्लाइट का एनाउंसमेंट हो चुका है। अपनी फ्रेंड को बाय कहो और आ जाओ !” राजीव ने प्यार से उसके सिर पर हाथ रखकर हामी भरी।

“चलता हूँ ,.... अपना ध्यान रखना....।” राजीव उठने लगा।

मीरा ने अधीरता से कहा...."अपना नया पता तो बताते जाओ....!"

"मैं जहाँ हूँ, जैसा हूँ, संतोष है मुझे। तुम अपनी सितारों वाली दुनिया में खुश रहो, मैं यहाँ ज़मीन पर ही ठीक हूँ ....तुम जानकार क्या करोगी नया पता....।" राजीव उठ चुका था और गायत्री की ओर चलने लगा।

गायत्री पहले ही अपना सामान समेटकर अन्य यात्रियों के साथ कतार में खड़ी हो चुकी थी और राजीव को हाथ हिला कर बुला रही थी।

"तुम्हें मेरी याद नहीं आती?" हताश मीरा बोली।

"मैं अपनी दुनिया में खुश हूँ। तुम भी अतीत में मत झांको। कुछ भी नहीं है वहाँ....।"

"हाँ, हाँ ....तुम पुरुषों को क्या.... एक गयी तो दूसरी से शादी कर ली...." मीरा दबी आवाज़ में बोली, परन्तु राजीव को सुनाने के लिए पर्याप्त था।

"अच्छा....! तुम मुझे छोड़कर इतने वर्ष अकेले ही तो जीती आई हो ! और छोड़ कर तुम गयीं थीं ....मैं तो वहीं था !" राजीव ने व्यंग्य से कहा।

"ओह हाँ.... गौरी और गायत्री के साथ रहकर तो बाकी लोगों के बारे में सोचने का समय ही कहाँ मिलता होगा !" मीरा फुफकार कर बोली।

"होश में नहीं हो तुम !....पर मैं तुम्हें दोष नहीं देता मीरा। तुम शुरू से ऐसी ही थीं.... मैं, मुझे, मेरा.... इसके आगे कुछ भी सत्य नहीं तुम्हारे लिए। तुम्हें मैं कोई सफाई दूँ , इसके लिए बाध्य नहीं हूँ मैं। तुम खुश रहो और सफलता तुम्हारे कदम चूमे.... बस, भविष्य में हम कभी न मिलें ऐसी ही इच्छा है मेरी ...." राजीव बोल गया।

मीरा लोक लाज छोड़कर राजीव की बाँह पकड़कर रोकने लगी, "मेरे जाते ही गौरी के साथ शादी कर ली तुमने ?.... तुमने ऐसा क्यों किया.... ?.... और गौरी ? कितनी निर्लज्जता है उसमें, जो पति के जाते ही शादी के लिए मान गयी ?!" मीरा तर्क से परे थी।

इससे पहले राजीव कुछ बोले, गायत्री ने जोर से आवाज़ दी, “मामा !...कितनी देर लगा रहे हैं आप.... बस अब बची हुए बातें माएरा जी से फोन पर कर लेना, अभी चलो।”

“मामा ....!?” मीरा आश्चर्यचकित थी।

“हाँ.... गायत्री गौरी और संजीव की बेटी है। जब संजीव नहीं रहा तब उसके कुछ दिनों के बाद पता चला था कि गौरी माँ बनने वाली है। गौरी को माँ और बाबूजी ने स्वयं ही ये निर्णय लेने की स्वतंत्रता दी थी, कि यदि वह चाहे, तो अपने मायके जाकर नए सिरे से अपना जीवन आरम्भ कर सकती है....। मीरा, लेकिन गौरी ने इसी परिवार के साथ रहने का निर्णय लिया। वह संजीव और उसकी संतान को इसी परिवार का हिस्सा बनाना चाहती थी। उसने पुनर्विवाह को भी मना कर दिया। जब गौरी ने मायके जाने से मना कर दिया तब मैंने उसकी और गायत्री की जिम्मेदारी ले ली - गौरी का बड़ा भाई बनकर। जैसे वह मुझे पहले भैया कहती थी, संजू का बड़ा भाई होने के नाते.... अब वह मुझे हक़ से अपना बड़ा भाई मानती है। सो मैं गायत्री का मामा हुआ न !”

“गायत्री को अपने पिता के बारे में सब पता है और उसके मन में अपने पिता के लिए बहुत प्यार और सम्मान है। एक बात और.... वह मेरी ‘एक्स’ पत्नी ‘मीरा’ याने तुम हो, ऐसा नहीं जानती, न ही हम बताना चाहते थे उसे। लेकिन अब मैं उसे सब बता दूँगा। कोई और कहे, इससे पहले मैं ही उसे ....”

मीरा ने बात पूरी नहीं होने दी। “तो तुमने शादी नहीं की .....! तुम मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे न !? मैंने तब ठीक नहीं किया.... मैं माफ़ी माँगती हूँ - यदि इससे तुम्हें अच्छा लगे तो .... हम फिर से शुरुआत कर सकते हैं, जहाँ से सब कुछ छूट गया था....” मीरा जैसे मानो वशीभूत होकर बोली। राजीव की बाँह नहीं छोड़ी थी उसने।

मीरा की बात पर ध्यान न देकर संयत स्वर में राजीव बोला, “ तुम माएरा हो और माएरा ही रहो....कम से कम मेरे परिवार के लिए तो ये ही ठीक रहेगा। अपने स्वार्थ के आगे तुम्हारे लिए बाकि सबकुछ गौण है। तुमने सालों

पहले जो किया, वह बहुत दुखदायी था किन्तु यह इतनी पुरानी बात है कि उसपर क्षोभ करने का क्या औचित्य है ! तुम्हारा कृत्य अब मेरे लिए कुछ भी मायने नहीं रखता । हम सबने शनैः शनैः उन कड़वी यादों को भुला दिया है । तुम मेरे लिए महत्त्व ही नहीं रखती जो मुझे अच्छा या बुरा लगे ! फिर भी जाओ तुम्हें क्षमा किया । मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि भविष्य में हम कहीं भी न मिलें, किसी राह पर न टकराएँ.... हमारे लिए यही ठीक रहेगा .... विदा चाहता हूँ ,.... हमेशा के लिए ।"

राजीव अपनी बाँह छुड़ाकर गायत्री के पास पहुँचने के लिए लम्बे - लम्बे डग भरने लगा । मीरा वहीं खड़ी रह गयी । जिस संसार को वह बहुत पहले छोड़ चुकी थी, वह संसार आज फिर से उसके हाथ से रेत की तरह फिसल चुका था ।

उत्सव

अभी लैपटॉप पर काम करते हुए थोड़ी ही देर हुई थी कि नेहा का मोबाइल वाइब्रेट करने लगा। फोन उसकी बिज़नेस पार्टनर राखी का था। नेहा ने धीरज के साथ उसकी बातें सुनी, फिर कहा....

"केक की चिंता मत करो।'हैप्पी बेकिंग' से बात हो गयी है। वो हमारे बजट के हिसाब से कर देगा। हाँ, मुझे ऑफिस पहुँचने में देर हो जायेगी। लंच तक पहुँच जाऊँगी।"

"अरे, अभी तो मिस्टर रहेजा आने वाले थे...., उन्हें कल का बता दूँ ?" राखी बोल पड़ी।

ये राखी भी ! खुद से कोई तो फैसला ले ! नेहा सोच में पड़ गयी। अपनी सोच पर काबू पाते हुए, और ऊपरी तौर से हँसते हुए नेहा ने बात जारी रखी, "नहीं, नहीं ! उन्हें आने दो । उन्हें हमारे प्रीत विहार और मायापुरी वाले प्रोजेक्ट्स के फोटो दिखा देना। वैसे भी वो महाशय लेट - लतीफ़ हैं। उनके आने से पहले शायद मैं ही पहुँच जाऊँ। तुम चिंता न करो !"

"हाँ नेहा, तुम जल्दी से आ जाओ...." राखी की आवाज़ में उतावलापन था।

"बस अभी आई। तुम तब तक गुब्बारे वाले से और फ्लावर डेकोरेटर से बातचीत पक्की कर लेना । हमें हीलियम वाले गुब्बारे चाहिए, भूलना नहीं.... !" नेहा ने फोन बंद करके बैग में रखा। लैपटाप भी बंद करना पड़ा। मेट्रो में भीड़ होने लगी थी। लैपटाप पर काम करने में असुविधा होने लगी थी। वैसे भी जो लोग बगल में बैठे हों या खड़े हों, उनकी यह जानने में उत्सुकता चरम सीमा पर होती है कि आपके लैपटाप स्क्रीन पर क्या दिख रहा है ! नेहा को इससे बहुत उलझन होती थी। वह समय का सदुपयोग करने के लिए मेट्रो

में सफर करते हुए काम करना चाहती थी पर लोगों की खोजी निगाहें उसे ऐसा करने से रोकती थी। लैपटाप बैग में रखकर वह अपने गंतव्य की प्रतीक्षा करने लगी।

नेहा पिछले चार - पाँच वर्षों से अपना इवेंट मेनेजमेंट और वेडिंग प्लानर का बिज़नेस सफलतापूर्वक संभाल रही थी। राखी को इस व्यवसाय से जुड़े हुए सात - आठ महीने हो गये थे, पर उसमें अभी भी आत्मविश्वास की कमी थी। नेहा ने इंटीरियर डिज़ाइनिंग में डिग्री कर रखी थी। ये इवेंट मेनेजमेंट का तो शौकिया डिप्लोमा कर रखा था उसने। लेकिन अपनी कड़ी मेहनत, सूझ-बूझ, और दूर-दर्शिता से उसने अपने क्षेत्र में काफी अच्छी पहचान बना ली थी। घरों या ऑफिस के इंटीरियर डिज़ाइनिंग भी करती रहती थी। इवेंट मेनेजमेंट तो अच्छा चल ही रहा था। नेहा का शांत स्वभाव, बोलती आँखें और निश्छल हँसी ही सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेतीं थी। अपने बूते पर ही उसने अपनी छोटी बहन की शादी करवाई थी; छोटे भाई की कॉलेज की पढ़ाई और पिता के इलाज का खर्चा भी वो ही उठा रही थी। काफी समय से पिता बीमार चल रहे थे। प्राइवेट अस्पताल में खर्च भी अधिक हो रहा था। पर नेहा भी पक्की थी, हार मानने वालों में से नहीं थी। मुश्किल समय में माँ का भावनात्मक सहारा तो हमेशा साथ रहता था ही। वैसे भी बहुत अरसे के बाद अब नेहा के परिवार में खुशियाँ रुक रही थीं, नहीं तो जैसे घर के चौखट तक आ कर खुशियाँ लौट जाती थीं या कोई और विपदा आन पड़ती थी ..... उसकी शादी दो बार तय होते - होते रह गयी थी, भाई एक बार ग्यारहवीं में फेल हो गया था; पिता को जब कैंसर हुआ, तो उन्हें समय से पूर्व अवकाश लेना पड़ा था; छोटी बहन की शादी तो हो गयी थी लेकिन जब उसके पति की नौकरी छूट गयी थी तो नेहा ने ही सहारा दिया था। तिनका - तिनका कर के नेहा ने फिर से बिखरता हुआ परिवार जोड़ा था। अब जब भी नेहा पीछे मुड़ कर अपनी ज़िंदगी को देखती तो जीवन में आए उतार - चढ़ावों को देख कर भावुक हो जाती थी।

नेहा अपने मोबाइल पर ही मेल चेक करने लगी। बीच - बीच में आस-पास की गतिविधियों पर भी ध्यान चला जाता। खासकर एक कोने में हो रही

हलचल ने उसका ध्यान खींचा। नेहा से रहा न गया, वह उत्सुकतावश उठकर उसी ओर चली गयी। देखकर उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। एक अधेड़ उम्र के सज्जन सिर झुकाये अपने मोबाइल पर कुछ देख रहे थे। उनके चेहरे पर मुस्कुराहट खिली हुई थी। काला मोटा चश्मा, बालों में सफेदी झलकती हुई, सफ़ेद - काली धारियों वाला शर्ट पहने हुए थे। उनके पास ज़रा तिरछा होकर एक व्यक्ति बैठा था जिसके हाथ में ड्राइंग स्केच बुक थी। उसने जीन्स और हुड वाला जैकेट पहन रखा था। वह तेजी से उस अधेड़ व्यक्ति का चित्र बना रहा था। जल्दी - जल्दी स्ट्रोक्स, कोई स्केल या रबर का इस्तेमाल नहीं; मेट्रो में अन्य लोग भी कौतुहल से देख रहे थे। छोटे बच्चे आगे जा कर देखने की कोशिश में धक्का मुक्की कर रहे थे। लेकिन चित्रकार पूरी तन्मयता से चित्र बना रहा था।

उतनी ही रुचि के साथ नेहा उसे चित्र बनाते हुए देख रही थी। जब बच्चे काफी आगे आ गए और खतरनाक रूप से स्केच बुक पर ही गिरने को उतारू होने लगे तो उस व्यक्ति ने अपना काम रोक कर अपने बैक पैक से कुछ चॉकलेट्स निकाल कर बच्चों को दे दिये। काफी महंगे और लोकप्रिय ब्रांड के थे। कुछ बच्चे खाने लगे, तो अन्य बच्चे उन्हें ऐसा करने से रोकने लगे कि अंजान लोगों से कुछ भी खाने की चीज़ नहीं लेनी चाहिए। उस व्यक्ति ने सिर पर से हुड हटाते हुए हँसकर कहा, “अरे, कुछ नहीं होगा। देखो मैं भी खा रहा हूँ !”

ऐसा कहकर उसने अपने पास खड़े बच्चे की चॉकलेट ले कर खा ली। वो बच्चा रुआँसा हो गया। उस व्यक्ति ने उस बच्चे को एक और चॉकलेट दी अपने ‘मॉडल’ को भी चॉकलेट दी जो उसने सहर्ष स्वीकार कर ली।

“देखा.... !, अंकलजी को भी कुछ नहीं हुआ। अच्छा चलो, यदि चॉकलेट नहीं खानी है तो कोई बात नहीं। पर मुझे धक्का नहीं देना बच्चों, नहीं तो इन अंकलजी की नाक पकौड़े जैसी बन जायेगी !”

वह ‘मॉडल’ अंकल, बच्चे और चित्रकार, सभी एक साथ हँस पड़े। बच्चों के अभिवाहकों ने चैन की साँस ली। बच्चे चॉकलेट्स में और चित्रकार

अपने काम में पुनः व्यस्त हो गए। पूरा प्रसंग नेहा ने पूरे ध्यान से देखा था। बच्चों की बालसुलभ बातें उसके मुख पर बरबस मुस्कुराहट ला रही थी। नेहा पूरा बना हुआ स्केच देखना चाहती थी पर उसका गंतव्य नजदीक आ रहा था। हौजखास पर उतरना था उसे। नेहा की अधीरता बढ़ रही थी। पर वह चित्रकार के हाथ 'फास्ट फॉरवर्ड' तो नहीं कर सकती थी ! मन मसोस कर उठ खड़ी हुई। मेट्रो के दरवाजों के ऊपर डिस्प्ले स्क्रीन पर आने वाली जानकारी पढ़ने लगी। उसे लगा कि वह चित्रकार उसे देख रहा है ! सावधान होकर उसने मुड़कर देखा तो वह सच में उसी को देख रहा था। मुस्कुराते हुए उस व्यक्ति ने खुद के कानों पर थपथपाते हुए संकेत किया। नेहा ने यंत्रवत अपने कान छूए तो पाया कि ईयर प्लग कानों में नहीं थे - वे नीचे लटक रहे थे। थोड़ा सा सिरा ही बैग में फंसा हुआ था। नेहा ने हड़बड़ा कर ईयर प्लग समेटे और बैग में रख लिए। उसने सिर झुकाकर धन्यवाद का संकेत किया तो प्रत्युत्तर में उस व्यक्ति ने नाटकीय होते हुए सीने पर हाथ रखा और सिर झुका कर 'माय प्लेजर' कहा।

नेहा के मानो सारा रक्त संचरण गालों की ओर होने लगा। कान भी लाल गरम होने लगे थे। ट्रेन रुकते ही नेहा तेज़ी से बाहर की ओर निकली। उसने पीछे मुड़कर नहीं देखने का निर्णय लिया था। फिर भी उसे जाने क्यों ऐसा लग रहा था कि दो आँखें उसका दूर तक पीछा करती रहीं थीं।

दिन भर नेहा अपने कामों में व्यस्त रही। परंतु वो दोनों आँखें रह - रह कर उसका ध्यान अपनी ओर खींचती रहीं। ऊँह....! मुझे क्या.... !? ऐसा मन ही मन कह कर नेहा ने इस बारे में आते विचारों को झटक दिया। ऐसे वाकये तो रोज़मर्रा होते रहते थे। उन्हें क्या महत्व देना ?

पर जो अलग, विशिष्ट था, वह किसी कलाकार का चलती मेट्रो में चित्र बनाना ! ये हर दिन दिखने वाला दृश्य नहीं था। नेहा ने इस विषय में राखी से बात करने की सोची। राखी ने पूरी घटना विस्तार से सुनने के बाद कहा, "अच्छा तो ये बात है !.... आखिर में वो कैसा दिख रहा था ? "

"अरे क्या बताऊँ, क्या गजब का स्केच बना रहा था ! बिलकुल हू ब हू शक्ल बन रही थी उन अंकलजी की....। मुझे उतरना था नहीं तो पूरा स्केच देख पाती !" नेहा खेदपूर्वक बोली।

"अरे मैं स्केच नहीं, स्केच बनाने वाले की बात कर रही हूँ....!"

"तुझे हर बात में मज़ाक सूझता है !.... फिर दूल्हा ढूँढने लगी ?! .... मेरे लिए या अपने लिए ?!" आँखें तरेर कर नेहा ने राखी को डपट लगाई। नेहा का मानना था कि राखी वहाँ काम ज़रूर कर रही थी पर वास्तव में उसका 'वन पॉइंट गोल इन लाइफ' था - अपने लिए वर ढूँढना !!

"अरे नहीं ! नेहा, मुझे गलत समझ रही हो। अपनी तो सेटिंग फिट है बॉस ! वो तो मैंने ऐसे ही पूछ लिया था !" राखी ने खिलखिलाते हुए बात पूरी की। नेहा के मुख पर भी मुस्कान पसर गयी। ऐसे हल्के - फुल्के मज़ाक नेहा को अपने संघर्ष भूलने में मदद करते थे। गुब्बारे और फ्लावर डेकोरेटर से बात हो गयी थी। नेहा और राखी की कंपनी 'उत्सव' को एक जन्मदिन पार्टी के आयोजन का काम मिला था। एक नयी स्टार्टअप कंपनी के मालिक की छोटी बेटी का जन्मदिन था। वे लोग कुछ नया चाहते थे। क्लाएंट अमीर थे। पैसे की कमी नहीं थी। वे बच्चों और बड़ों, दोनों की रुचि के अनुसार सारी व्यवस्थाएँ चाहते थे। रहेजा परिवार को नेहा का मायापुरी वाला काम पसंद आया था। कुल मिला कर नेहा अपने "उत्सव" की सफलता से खुश थी।

अपने और राखी के लिए कॉफी प्यालों में डालकर नेहा ने पूछ लिया, "ये सेटिंग की क्या बात है राखी ?"

"अरे, मैं तुम्हें बताने ही वाली थी। वो चौथे फ्लोर पर कोने वाला ऑफिस है ना ! प्रॉपर्टी डीलर का !"

नेहा समझ चुकी थी। मुस्कुरा कर बोली, "तुम आकाश की बात कर रही हो ! उसे तो मैं बचपन से जानती हूँ। मेरी छोटी बहन का क्लासमेट था। तुम दोनों की जोड़ी बहुत अच्छी लगेगी !"

“अरे वाह ! तो फिर तुम मेरे लिए आकाश और मेरे परिवार से बात करो न !” चहकती हुई राखी ने नेहा की चिरौरी की।

“ना बाबा.... ! जब ‘रब ने बना दी जोड़ी’ है तो तुम लोगों को खुद ही अपने परिवारवालों से बात करनी होगी !” नेहा ने छेड़ा तो राखी का चेहरा मायूस हो गया।

“लेकिन शादी और बाकी सब इंतज़ाम ‘उत्सव’ की ओर से हो जाएगा!” नेहा ने बात पूरी की। राखी की आँखों में फिर चमक आ गयी।

“डन ! प्रोमिस ! हम ऐसा ही करेंगे.... पर बताओ वह स्केच बनाने वाला कैसा दिखता था ?” राखी भी कुछ कम नहीं थी।

नेहा गंभीर हो कर बोली, “राखी, ढेर सारे काम पड़े हैं, तू भी क्या ले के.....”

उसकी बात काटकर राखी गुनगुनाने लगी, “ये कौन चित्रकार है, ये कौन चित्रकार.....”

“ओफ्फो ! अच्छा सुन.... वह लंबा था, चश्मा पहने था, दाढ़ी - मूँछें थी, एकदम ‘दार्शनिक’ की तरह दिख रहा था ! हुड वाला जैकेट पहन रखा था ....” नेहा रुक कर बोली, “ राखी, पता, उसमें बच्चों से डील करने का गज़ब का पेशन्स था, धीरज था। बच्चे तंग कर रहे थे पर वो अपना काम किए जा रहा था !”

“ओह हो !... तो बंदे में काफी अच्छाइयाँ भी थीं .... बस एक नेहा मेडम को देखकर मुस्कुराने की बुराई के अलावा !” राखी ने नेहा को छेड़ने का मौका नहीं छोड़ा।

नेहा अब भी गंभीर थी। वह बोली,“नहीं, सीरियसली !, मुझे इसमें बिजनेस का मौका दिख रहा है। लोगों को हमेशा कुछ नया चाहिए होता है। पज़ल गेम, तंबोला, क्वश्चन राउंड, ट्रेजर हंट आदि तो हमेशा कराते ही हैं हम, क्यों न इस बार हम किसी ज़रूरतमन्द चित्रकार को बुलाएँ !.... लोग अपना

स्केच बनवाएंगे और चित्रकार भी कुछ पैसे कमा लेगा। लोगों के लिए वह चित्र यादगार बन जाएगा।" नेहा बोलते - बोलते बहुत उत्साहित हो गयी थी।

"आइडिया बुरा नहीं है। पर उसे ढूँढेंगे कहाँ ? काश तुम उसका नंबर ले लेतीं। वो खुशी - खुशी दे भी देता ! और हम भी अपने स्केच फ्री में बनवा लेते !" राखी की आँखों में अब भी शरारत थी।

"मज़ाक छोड़ ! वह नहीं तो कोई और सही। आस - पास के आर्ट स्टूडिओज़ और इंस्टीटयूट्स में पता करते हैं। बच्चे जरूर सीखने आते होंगे। कहीं कोई तो मिलेगा....! " नेहा के हाथ लैपटाप तेज़ी से चल रहे थे। अपने इस नए विचार से बहुत उत्साहित हो गयी थी।

"ओ के बॉस ! आज से 'ऑपरेशन फ़ाइंडिंग चित्रकार' शुरू !" राखी ने नाटकीय रूप से नेहा के आगे अदब के साथ झुक कर कहा।

"ड्रामेबाज़ !" कहते हुए नेहा भी हँसे बिना नहीं रह सकी।

घर पर भी देर रात तक नेहा काम करती रही, नेट पर आर्ट स्टुडियोज़ या इंस्टिट्यूट्स को मेल करती रही इसी आशा के साथ, कि कहीं से तो जवाब आएगा। जो इस क्षेत्र के जानकार थे, उनसे बात की। उसके मन से ये चित्र का आइडिया जा नहीं रहा था। अगले दो दिन वह अपने इंटीरियर वाले प्रोजेक्ट्स में बहुत व्यस्त रही और 'उत्सव' के ऑफिस जाने का समय ही नहीं मिला। वो तो अच्छा था, कि ऐसे समय राखी संभाल लेती थी।

आज नेहा फिर ऑफिस जा रही थी। चित्रकार के विषय में अभी तक कोई जवाब नहीं आया था। वैसे नेहा ने जन्मदिन की पार्टी की सारी तैयारियाँ कर ली थी। परन्तु अभी भी वह चाहती थी, कि किसी तरह किसी चित्रकार को बुला सके। इसके बिना भी पार्टी शानदार होने वाली थी - लाइव म्यूज़िक परफोरमर, कठपुतली नृत्य, वैक्स मॉडल आदि सभी का इंतज़ाम हो गया था। कमी थी तो बस स्केच आर्टिस्ट की ! यही सब सोचते हुए नेहा प्लेटफार्म पर अपनी मेट्रो की प्रतीक्षा कर रही थी। इस स्टेशन पर बहुत ज़्यादा भीड़ नहीं रहती थी। मेट्रो आने में चार - पाँच मिनट थे। तभी नेहा का ध्यान उस दिन वाले हुडवाली जैकेट पहने हुए चित्रकार की ओर गया। वह कुछ ही दूरी पर

अपने 'सबजेक्ट' का चित्र बना रहा था। नेहा को अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। जैसे मानो लॉटरी निकल गयी हो !!

इस बार उसका मॉडल एक छोटा बच्चा था जो कुल्फी खा रहा था। कुल्फी पिघलकर कपड़ों पर गिर रही थी, लेकिन इससे बेखबर वह कुल्फी के मज़े ले रहा था। नेहा खुशी के मारे उतावली होकर उस चित्रकार के पास जा पहुँची। बच्चे का स्केच पूरा होने ही वाला था अतः नेहा ने प्रतीक्षा करने का निर्णय लिया। चित्र बनते ही बच्चे की माँ ने उस चित्रकार को धन्यवाद कहते हुए कुछ पैसे दिये और बच्चे के साथ आगे बढ़ गयी। उसके हटते ही नेहा लपक कर आगे बढ़ी और बिना किसी हिचकिचाहट के उस चित्रकार के सामने खड़ी हो गयी। वह व्यक्ति अपना सामान समेट रहा था। सामने एक युवती को खड़ा देख कर ठिठक गया।

नेहा ने देर न लगाकर हाथ मिलाने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाया और कहा, "हैलो !, मैं नेहा हूँ। यू आर अ टेलेंटेड एंड गॉड गिफ्टेड आर्टिस्ट, आई मस्ट से !"

उस व्यक्ति ने आगे बढ़ कर हाथ मिलाया और लगभग हकलाते हुए कहा, "हैलो !, मेरा नाम नकुल है... नकुल अवस्थी। थैंक्स फॉर एप्रिशिएटिंग माय वर्क !"

"मिस्टर नकुल...., यदि आपके पास समय है तो क्या हम थोड़ी देर बात कर सकते हैं ? और यदि आपको मेरा आइडिया पसंद आ जाये तो हम कोंट्रेक्ट की भी बात कर लेंगे !" नेहा ने औपचारिकताओं में समय व्यर्थ न करते हुए कहा। वास्तव में वह जिसे ढूँढ रही थी पिछले दो - तीन दिनों से, उसे सामने देख कर नेहा बहुत उत्साहित हो गयी थी।

"यह मेरी कंपनी 'उत्सव' का कार्ड है। आपको सारी डिटेल मिल जाएगी। मैं आपके स्केच बनाने की कला से बहुत प्रभावित हूँ। यदि आप चाहें तो कोंट्रेक्ट बेसिस पर उत्सव के साथ काम कर सकते हैं। टर्म एंड कंडीशन हम उसी के अनुसार तय कर लेंगे।"

नकुल कार्ड उलट - पलट करता रहा । फिर बोला, "देखिये, मैं प्रोफेशनल आर्टिस्ट नहीं हूँ...."

नेहा का दिल डूबने लगा । वह निराश हो गयी ।

"....लेकिन जब आपके उत्सव से यह एक अवसर चलकर मेरे पास आया है तो मैं एक प्रयास अवश्य करना चाहूँगा ।" नकुल ने कहा । नेहा की आँखों में चमक लौट आई ।

"तो फिर तय रहा । कार्ड पर ऑफिस का पता है । आप किसी भी नंबर पर बात कर सकते हैं । मैं या मेरी बिजनेस पार्टनर, किसी से भी बात हो सकती है । यदि सबकुछ ठीक लगे तो दोपहर, तीन बजे के बाद ऑफिस में मिल सकते हैं हम ।"

दोनों ने हाथ मिलाये और अपने - अपने रास्ते चले गए । ऑफिस में आ कर नेहा ने राखी को बताया तो वो भी चौंके बिना नहीं रह सकी कि दिल्ली जैसे महानगर की महासागर जैसी जनसंख्या के बीच वह अजनबी चित्रकार दोबारा कैसे मिल गया ! जो भी हो, नेहा बहुत खुश थी । उसका पार्टी के लिए 'कुछ' नया करने का सपना साकार होने वाला था ।

सब कुछ अपेक्षकृत आसानी से हो गया । नकुल को काम चाहिए था, और नेहा को आर्टिस्ट ! जन्मदिन की पार्टी का आयोजन बहुत ही सफलतापूर्वक हो गया । नकुल का काम तो सबने बहुत ही पसंद किया । और क्या चाहिए था ! राखी के शब्दों में नकुल 'हिट' हो गया था ! नकुल ने उसके बाद और दो - तीन इवेंट्स में स्केच बनाने का काम किया । उसकी तो माँग ही बढ़ गयी थी ।

लेकिन नकुल कि अपनी प्राथमिकताएँ थीं । अतः लगभग तीन महीने काम करके वह चला गया । नेहा मायूस हो गयी पर जल्दी ही संभल गयी । नकुल ईमानदार था, मेहनती था; एक तरह का करिश्माई आकर्षण था उसमें, कि छोटे - बड़े सभी उसकी ओर आकर्षित हो जाते थे । चित्र बनाने के साथ-साथ नकुल ऑफिस के कई कामों में हाथ बंटाने लगा था, विशेष करके इंटीरियर डिजाइनिंग वाले काम । उसे इन सब की बहुत समझ थी । नकुल भले

घर का लगता था। एक बार उसने बताया था कि वह किसी आर्किटेक्ट की फर्म में काम सीख रहा है। ये चित्र बनाना तो उसका शौक था।

भागदौड़ के कामों में नेहा उस पर निर्भर होती जा रही थी । शायद भावनात्मक जुड़ाव भी महसूस करने लगी थी नेहा। लेकिन जल्दी ही इन सब पर विराम लग गया जब नकुल ने आगे काम करने में असमर्थता व्यक्त की। नेहा उसे रोक तो नहीं सकती थी। सोचा करती, चलो अच्छा हुआ, जल्दी चला गया नहीं तो एक बार फिर दिल टूट जाता। नेहा अतीत में मिले झटके भूली नहीं थी। जीवन भर नहीं भूल सकती थी। नकुल एक धूमकेतु की तरह आया था जो नेहा के मन मस्तिष्क पर छा गया था और उतनी ही तेजी से गायब भी हो गया था। नेहा की ज़िंदगी और दिनचर्या वही पुराने ढर्रे पर आ गयी थी। राखी का मन ऑफिस में कम, आकाश से बतियाने में ज़्यादा लगता। नेहा बुरा नहीं मानती थी। सोचा करती, कि यदि राखी के जीवन में खुशियाँ आ रहीं हैं तो वो क्यों रोके ! अब तो राखी और आकाश के परिवार वाले भी इस रिश्ते से खुश थे।

अब सहालग लगने वाले थे। नेहा को बहुत बुकिंग मिल रही थी। अपने आप को व्यस्त रखने से ही नेहा अपने व्यक्तिगत दुःख भुला सकती थी। उसे स्वयं का विवाह नहीं होने का दुःख तो था किन्तु अपने विवाह के लिए सोचना उसे 'स्वार्थपरता' लगती थी क्योंकि अभी उसका भाई कॉलेज के अंतिम वर्ष में था और घर की जिम्मेदारी उठने में सक्षम नहीं था। घर का खर्चा नेहा के काम से ही चल रहा था। नेहा की बढ़ती हुई आयु से चिंतित होकर उसकी माँ गाहे - बगाहे नेहा को शादी कर लेने के लिए कहती रहती।

ये 'इवेंट मैनेजमेंट' और 'इंटीरियर डिज़ाइनिंग' के काम में नेहा कैसे आ गयी, ये भी रोचक किस्सा है ! जब नेहा कॉलेज में पढ़ ही रही थी तब उसकी चचेरी दीदी का रिश्ता तय हुआ। तब स्वयं की रुचि होने के कारण नेहा ने शादी की तैयारियों में बहुत काम किया था। दीदी के कपड़ों की कलात्मक पैकिंग, ताईजी के घर की सजावट, मेहँदी, संगीत, हल्दी, बरातियों का स्वागत, खान - पान आदि सब जगह नेहा ने बहुत मेहनत से काम किया था। गुणी तो वह थी ही, शादी में सबने नेहा की दिल खोल कर प्रशंसा की थी ! लोग हैरान

थे कि इतने तंग बजट में दिल्ली जैसी जगह में इतने अच्छे इंतज़ाम कैसे हो गए। ताऊजी तो बहुत प्रसन्न हो गए थे। तभी नेहा ने सोच लिया था कि वह अपनी इवेंट मैनेजमेंट की कंपनी शुरू करेगी और लोगों में खुशियाँ बाँटेगी। कॉलेज के बाद लोन लेकर नेहा ने अपना काम शुरू किया और धीरे - धीरे उसे काम मिलने लगा था। उन दिनों युवा नेहा के मन में भी स्वयं के विवाह के लिए विचार आया था पर जल्दी ही यथार्थ ने ठोकर मारी थी। नेहा का बिजनेस अभी भी शैशव अवस्था में था। भाई मुश्किल से दूसरी बार में ग्यारहवीं पास किया था, छोटी बहन कॉलेज के दूसरे वर्ष में थी, पिता का इलाज तो चल ही रहा था। नेहा को समझते देर न लगी कि उसके परिवार को उसकी बहुत ज़रूरत है। तब उसका परिवार उसके विवाह की ज़िम्मेदारी लेने के लिए तैयार नहीं था। नेहा ने अपने उमंग भरे उड़ते मन के पंखों को चुपचाप समेटा था और काम में लग गयी थी।

अपना व्यवसाय जमाते - जमाते नेहा को भी लगभग छः वर्ष हो चुके थे और स्थायित्व आने लगा था। अब नेहा को लगने लगा था कि जब एक बार भाई जिम्मेदारी उठा लेगा, तब ही वह अपने बारे में सोच सकती है !

जीवन के कई उतार - चढ़ाव देखते हुए नेहा आज यहाँ तक पहुँची थी कि किसी को नौकरी पर रख सके ! जब खुद की मेहनत से सजाये हुए मंडप में नव विवाहित जोड़ों को शुभाशीर्वाद पाते हुए देखती तो उसे असीम सुख मिलता। विवाह किसी के भी जीवन का अविस्मरणीय क्षण होता है। इसे यादगार बनाने में नेहा कोई कसर नहीं छोड़ती थी।

इस वर्ष नेहा तीस की हो गयी थी। माँ को उसके विवाह की चिंता सताये जा रही थी। छोटी बहन की शादी हो चुकी थी और बड़ी बहन अभी तक कुंवारी क्यों है, ऐसा पूछने वाले समाज में बहुत लोग थे। नेहा माँ को इन बातों पर ध्यान न देने को कहती किन्तु एकांत में वह स्वयं भी उदास हो जाती थी।

और अब ये नकुल ! जाने क्यों मन - मस्तिष्क से उसका प्रभाव जाता ही नहीं ! शायद माँ ठीक ही कहती है कि समय पर शादी कर लेनी चाहिए थी। पर तब कौन शादी कर लेता उससे, जब वो लोग आर्थिक रूप से बहुत

कमजोर थे ! और अभी इस नकुल के बारे में क्यों सोच रही हूँ....?! इसका तो ठौर - ठिकाना भी नहीं पता ! नेहा इन्हीं सवालों से बचने के लिए अपने आप को उत्सव के कामों में उलझाकर रखती थी। इसी से उसे राहत मिलती थी।

एक दिन अपनी व्यस्त दिनचर्या से जूझते हुए नेहा जब ऑफिस पहुँची तो वहाँ राखी और आकाश उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

"अरे, ये दो हंसों का जोड़ा यहाँ क्या कर रहा है?" नेहा ने चुहल की।

आकाश ने ही बात शुरू की, "नेहा, एक 'पार्टी' का ऑफर है। मैरीज का इवेंट मेनेजमेंट और साथ ही उनकी कोठी का इंटीरियर भी करना है।"

"नेहा, आकाश कह रहा है कि ये लोग बहुत अमीर हैं, एन.आर.आई. लोग हैं ! सच्ची, हमें बहुत फायदा हो सकता है !" चहकती हुई राखी बोली। नेहा ने एकदम हामी नहीं भरी। बल्कि कुछ सावधान हो गयी वह।

"यदि वे लोग अमीर हैं तो मुझसे भी अच्छे मैरीज - इवेंट मेनेजर के पास जा सकते थे ! और यदि हमने हाँ कह दिया और हमारा काम उन्हें पसंद भी आएगा इसकी क्या गारंटी है !"

आकाश बोला, "ऐसा नहीं है। नेहा तुम्हारे पास टेलेंट है, उनके पास पैसा है। देखना कुछ कमाल का ही हो जाएगा।"

"उन्हें हमारा काम अच्छा भी लगा है।" राखी बोल पड़ी।

"अच्छा ! उन्हें क्या पता हमारे काम के बारे में ? वो लोग तो कहीं बाहर से आए हैं न ....?" नेहा निश्चिंत नहीं थी।

"माय डियर, वर्ड टु माउथ पब्लिसिटी...." राखी कुछ और भी कहती रहती पर आकाश ने उसे चुप रहने का संकेत किया और नेहा से बोला, "नेहा, ये लोग कोई और नहीं, बल्कि नकुल और उसका परिवार है। नकुल ने तुम्हारा काम देखा है - इन फेक्ट तुम्हारे साथ काम किया भी है। नकुल ने थोड़ी देर पहले ही बताया था कि वह आ रहा है। तुम से संपर्क नहीं हो पाया। शायद

तुम्हारा फोन साइलेंट पर है। अभी वे लोग पहुँचते ही होंगे। तुम और राखी देख लेना।" ऐसा कहकर आकाश अपने ऑफिस चला गया।

नेहा को याद आया उसी ने फोन साइलेंट पर डाला था फिर भूल गयी थी। नकुल और एन.आर.आई. !! उसे अपने ही कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था। और नकुल ने उसके नीचे काम किया !.... क्यों?! वह अमीर है, ये बात क्यों छुपाई ? नेहा को कुछ समझ नहीं आ रहा था। राखी को ये पता था कि नकुल ही आ रहा है, तो फोन क्यों नहीं किया उसने ?.... राखी को डांट पड़ गयी, हालांकि नेहा भूल गयी थी कि उसका फोन बंद था तो राखी कैसे बात करती ! आनन - फ़ानन दोनों ने मिल कर ऑफिस को ठीक किया। वैसे हमेशा ही ऑफिस सुरुचिपूर्ण सजा रहता लेकिन आज नेहा अधिक सजग हो गयी थी। आखिर पहली बार कोई एन.आर.आई. क्लाएंट मिला था 'उत्सव' को !

थोड़ी ही देर में वे लोग आ गए। नकुल के साथ एक अधेड़ उम्र की संभ्रांत महिला थी। आरंभिक औपचारिकताओं के बाद नकुल ने ही कहा, "माँ, मैं यहीं काम करता था एक स्केच आर्टिस्ट की नौकरी पर...."

फिर नेहा की ओर देखते हुए अपनी बात पूरी की, "....सच में नेहाजी, वो दो - तीन महीने मेरे लिए ग्रेट लर्निंग एक्सपीरिएन्स थे।"

नेहा ने झेंपते हुए प्रतिवाद किया, " अरे कहाँ ! वो तो हमारे लिए आपका टेलेंट बहुत काम आया। सच तो यह है, कि हमारी पहचान को और मजबूत करने में आपका बहुत बड़ा योगदान है। आपका धन्यवाद !"

"चलो फिर आपके उत्सव को और काम देते है। क्यों माँ....?" नकुल मुस्कुरा रहा था। इधर नेहा सोच रही थी कि नकुल ने झूठ क्यों बोला होगा। एक झटके की तरह था नकुल का बर्ताव। नेहा यंत्रवत नकुल और उसकी माँ की बातें सुनती जा रही थी और डायरी में लिखती जा रही थी। बीच - बीच में वह जाने कितनी बार अतीत को जी के लौट आई जब नकुल उत्सव में काम करता था !

नेहा के 'उत्सव' को बहुत बड़ा ऑफर मिला था - नकुल की सगाई और विवाह का इवेंट मेनेजमेंट और साथ ही उनकी हाल ही में खरीदी हुई कोठी का

इंटीरियर ! नकुल की माँ ने खुले दिल से एडवांस में मोटी राशि का चेक काटा। एग्रीमेंट साइन हुआ। थोड़ी देर में वे लोग कॉफी पीकर चले गए। नकुल से कई प्रश्नों के उत्तर पूछने थे नेहा को ! नकुल शायद नेहा के चेहरे के भाव पढ़ चुका था। उसने अगले दिन आकर विस्तार से बात करने का वचन दिया।

राखी बहुत खुश थी। नेहा को भी इस ऑफर से खुशी थी .... पर मिली जुली सी। इस प्रोजेक्ट से उत्सव को आर्थिक रूप से बहुत फायदा होना था। कई सारे छोटे - बड़े सपने पूरे करना चाहती थी नेहा। माँ - पापा के लिए एक बड़ी आरामदायक कार, उन दोनों के लिए दक्षिण भारत दर्शन यात्रा; भाई के लिए एक अच्छी सी, महँगी घड़ी आदि आदि.... । राखी अपने हिस्से के प्रॉफ़िट से खुद के लिए आभूषण लेना चाहती थी।

ये सब नकुल की शादी और उसकी कोठी की सजावट को सफलतापूर्वक पूरा करने पर संभव था। मन में खुशी के साथ एक टीस भी उठ रही थी। उसे जाने क्यों ऐसा बहुत तीव्रता से लग रहा था कि नकुल को पहले ही अपने बारे में सब कुछ विस्तार से बता देना चाहिए था - अपने विवाह के बारे में भी। अभी मानों अतीत के कुछ लुभावने पल मुट्ठी से फिसल रहे थे और नेहा का मन खालीपन से भरता जा रहा था। नेहा एकाएक बहुत एकाकी अनुभव करने लगी। नकुल को लेकर इतने दिनों की मन की उथल - पुथल को वह शब्दों में व्यक्त नहीं कर पा रही थी, वह नकुल के अचानक अपने विवाह की घोषणा करने से स्वअभिव्यक्त हो गयी थी।

वह नकुल को पसंद करने लगी थी !

लेकिन ठीक ही तो था जो नकुल विवाह करने जा रहा था। आखिर उसने नेहा से किसी तरह का वायदा तो किया नहीं था। नेहा को समझ आया कि संभवतः उत्सव में आने से पहले से ही नकुल किसी को पसंद करता था .... जिससे अब वह विवाह करने वाला था ! वह इतने संभ्रांत परिवार से है, ऐसा उसने कभी महसूस ही नहीं करने दिया था। हमेशा बहुत विनम्रता से बात करता। नेहा ही उस पर निर्भर होती जा रही थी व्यावसायिक रूप से भी....और

भावनात्मक रूप से भी। नकुल का शांत चित्त, मुस्कुराता चेहरा, काम के दबाव को झेल सकने की योग्यता, ये सभी गुण नेहा को याद आ रहे थे। वो तो संयोग से नेहा ने अपने मन के भाव नकुल पर प्रकट नहीं किए थे ! नहीं तो अभी कितनी लज्जास्पद स्थिति हो जाती ! उन लोगों की संपन्नता के सामने नेहा की पारिवारिक स्थिति गौण थी। फिर भी ये एक तरह से उन लोगों का बड़प्पन ही था जो शादी और कोठी की ज़िम्मेदारी उन्होंने उत्सव को दे दी थी। नेहा ने अपने मन को समझाया और तय किया कि इस अवसर पर वह कोई कसर नहीं छोड़ेगी। जब नकुल यहाँ काम करता था तो उससे उत्सव को फायदा ही हुआ था। अतः नेहा नकुल के विवाह की सारी तैयारियाँ सर्वोत्तम रूप से करके अपरोक्ष रूप से नकुल को धन्यवाद देना चाह रही थी।

अगले दिन नकुल समय पर पहुँच गया। शादी और कोठी की इंटीरियर, दोनों ही विषयों पर नेहा और नकुल में लंबी बातचीत हुई। नकुल हर चीज़ सबसे अच्छी चाहता था। पैसों की समस्या नहीं थी। नेहा से ही न रहा गया, उसने कई बातों में फिजूलखर्ची न करने की सलाह दी। और साथ में कम पैसों में अच्छे उपाय भी बताए। नकुल घर के फोटो और नक्शा लेकर आया था लेकिन वह राखी और नेहा को वास्तविक कोठी ले जाना चाह रहा था। राखी तो उन दोनों की बहस भी मंत्रमुग्ध हो कर सुनती रही। कभी नेहा, तो कभी नकुल अपनी बात मनवा लेते !

एक बात जो बहुत समय से नेहा के मन में कुलबुला रही थी, वो उसने पूछ लेना उचित समझा। नेहा ने कहा,“नकुल, अपने बारे में कुछ बताओ। सच ही बताना, और हाँ !.... मुझसे अच्छी और अनुभवी इवेंट मेनेजिंग कंपनियाँ और इंटीरियर डिज़ाइनिंग फर्म हैं, तो फिर तुम ने उत्सव को ही क्यों चुना ?”

नकुल ने चश्मा उतारा और अपने बारे में बताया। वह वास्तव में एक प्रॉपर्टी डीलर था। सिंगापुर और भारत में काम कर रहा था। दो बहनें थीं। एक की शादी हो चुकी थी और वह सिंगापुर में ही रहती थी। छोटी बहन का रिश्ता तय हो चुका था किन्तु बहन और उसका मंगेतर अपनी पीएचडी की पढ़ाई पूरी करने के बाद ही विवाह करना चाहते थे। नकुल के पिता नहीं रहे जब नकुल

बारहवीं में था। उसने और उसकी माँ ने मिलकर पिता के प्रॉपर्टी डीलर का बिजनेस संभाला साथ ही में नकुल ने पढ़ाई भी पूरी की।

ये सब गंभीरता से कहते हुए अचानक उसके चेहरे पर चिपरिचित मुस्कान फैल गयी, “अरे, मैं उत्सव में काम कर चुका हूँ। सोचा थोड़ी ‘छूट’ मिल ही जाएगी। फिर आप लोगों की भी अपने एक्स इम्प्लोयी के प्रति कुछ तो ड्यूटी बनती है” नकुल ने बारी - बारी से नेहा और राखी की ओर देखते हुए नाटकीयता से बात पूरी की। राखी खिलखिला कर हँस पड़ी।

“फिर भी....” नेहा पूरी तरह से आश्वस्त नहीं हुई थी।

“उफ नेहा !, कुछ ज़्यादा ही सोच रही हो। अच्छा ही है जो हमें किसी बड़े प्रोजेक्ट का ब्रेक मिला है और हम अपने क्लाएंट को पहले से ही जानते हैं !” राखी ने समझाइश दी।

नेहा कुछ नहीं बोली। पर वह अनमयस्क थी। उसने नकुल से कहा, “नकुल, एक बार तुम अपनी मंगेतर से भी ये सब डिस्कस कर लेते तो ठीक रहता। या उनकी ओर से कोई आ जाता तो भी अच्छा रहता।”

“उसकी ज़रूरत नहीं पड़ेगी नेहा। मेरी पसंद मेरी मंगेतर को अवश्य पसंद आयेगी ....” नकुल उठते हुए बोला, “अब चलो, वो कोठी भी देख लो। नक्शे से ज़्यादा वास्तविक कोठी देखने से काम आसान हो जायेगा। फिर तुम ज़रूरत के सामान का ऑर्डर भी दे सकोगी, और कुछ बदलना है डिज़ाइन में, तो वो भी हो सकेगा।”

नकुल आज नेहा के ऑफिस में काम नहीं करने वाला था, बल्कि ‘उत्सव’ को काम दे रहा था ! नेहा और राखी, नकुल के साथ ही उसके नए घर को देखने गए। नेहा ने लाख कहा कि वे दोनों अपने आप पहुँच जाएँगी पर नकुल नहीं माना। नेहा को अपने क्लाएंट से किसी भी तरह का ‘फ़ेवर’ लेना कभी अच्छा नहीं लगता था। उसके स्वाभिमान को चोट करता हुआ सा जान पड़ता। लेकिन नकुल कहाँ मानने वाला था ! राखी तो सभी परिस्थितियों में खुश ही रहती थी, जैसे क्लाएंट ही आने - जाने की सुविधा करवा दे या राखी को स्वयं ही जाना पड़े !

सच में नकुल की कोठी बहुत बड़ी थी। दिल्ली जैसे महानगर में इतनी बड़ी कोठी खरीदना मायने रखता था। सामने और पीछे काफी खुला क्षेत्र था। पीछे वाले हिस्से में कुछ फलदार वृक्ष थे, जो दोपहर को अच्छी छाँव दे रहे थे। तीनों ने कोठी को अंदर से भी देखा। सबकुछ देखते ही नेहा मंत्रमुग्ध हो गयी। वह कितना सारा कुछ कर सकती थी ! दिमाग़ में कई सारे खाके बन गए थे। तुरंत ही अपना सामान फैलाकर काम शुरू किया। घूम - घूम कर नक्शे और वास्तविक जगह को देखकर कई फोटो लिये । पेंट, टाइल्स, फर्निशर्स, वुडवर्क....और न जाने कितनी जगह नेहा ने फोन किए या मेल भेजे। रंगों का चुनाव या फर्नीचर वगैरा पर तो आखरी निर्णय नकुल या उसकी माँ को ही लेना था। और हाँ, नेहा ने आगे और पीछे के खुले भाग की सुंदरता बढ़ाने के लिए स्थानीय नर्सरी वाले से भी बात कर ली थी।

कुछ ही देर में नकुल अपनी माँ को भी ले आया। उन दोनों ने आते ही नेहा की सारी तैयारियों को ध्यान से देखकर सभी निर्णयों पर हामी भर दी फिर चाहे दीवारों के रंगों का चुनाव हो या फर्नीचर का चुनाव हो ! नेहा को विश्वास नहीं हो रहा था कि ये लोग उसके सारे सुझाव आँख मूँद कर मान रहे हैं ! वह खुश भी हुई कि एक तरह से उसे काम करने को स्वतंत्र हाथ मिला है। नकुल की माँ से ही पता चला कि नकुल पेशे से आर्किटेक्ट है; साथ ही में अपने पापा का प्रॉपर्टी बिजनेस भी देखता है। नेहा को बड़ी हैरानी हुई जो उसे ये अभी तक पता ही नहीं था ! क्योंकि नकुल ने तो बस इतना ही बताया था कि वह किसी आर्किटेक्ट के पास काम सीखता है ! स्वयं को धिक्कारा - वह इतनी भोली या बुद्धू कैसे थी कि जब नकुल को काम पर रखा था तब नेहा ने उसके बारे में अधिक पता करने का प्रयत्न भी नहीं किया था !, और चूंकि उसे एक स्केच आर्टिस्ट की धुन सवार थी, तो नकुल को काम पर भी रख लिया था ! वह तो नकुल ही सज्जन था जो कभी किसी तरह का फायदा उठाने की या धोखा देने की कोशिश नहीं की थी। नेहा ने कान पकड़े कि भविष्य में वह किसी के बारे में जाने बिना काम पर नहीं रखेगी !

नेहा और राखी ने दिन - रात एक करके दोनों मोर्चों पर काम जारी रखा। प्रतिदिन या हर दूसरे दिन दोनों कोठी पर जाते। कार से लिफ्ट लेने का प्रश्न ही

नहीं उठा था; नेहा ने विनम्रता से नकुल और उसकी माँ को मना कर दिया था। गाहे - बगाहे आकाश राखी से मिलने के बहाने टपक पड़ता तो नेहा मन मार कर उन दोनों के साथ लौट पड़ती थी। कोठी के पीछे वाला क्षेत्र बड़ा था। यहीं पर नकुल की सगाई का समारोह होना था। इसी को ध्यान में रख कर वे लोग काम कर रहे थे। नर्सरी से एक माली रोज आकर काम कर जाता। कोठी के चारों ओर साफ - सफाई हो गयी थी, क्यारियाँ, फूलों के गमले आदि सब बातों पर नेहा की दृष्टि रहती ही थी। नकुल की मंगेतर के परिवार से किसी का न आना नेहा को अखरता था। उसके प्रश्नों और उलझन को एक दिन नकुल ने यह कहकर विराम दे दिया कि यह सारा इंतज़ाम उसकी मंगेतर और परिवारवालों के लिए एक 'सरप्राइज़' की तरह है, इसलिए वो लोग नहीं आते। हालांकि मंगेतर को तैयारियों के बारे में कुछ - कुछ पता है।

नेहा आगे क्या कहती। उसने अपने काम से काम रखने की सोची। नेहा ने जैसा वादा किया था, राखी और आकाश की शादी भी उत्सव से ही करवाने का सोच लिया था। नकुल भी उन दोनों के लिए खुश था। उसने तो अपनी शादी के मंडप में ही फेरे ले लेने का न्योता तक दे दिया था ! कुछ ही महीनों की पहचान अब उन चारों की अच्छी दोस्ती में परिवर्तित हो चुकी थी।

सब की शादी होने वाली थी - सिवा नेहा के। वह अनुभव करने लगी थी कि एक बार फिर वह अकेली पड़ जाएगी। उसने इस वास्तविकता को स्वीकार कर लिया था। ऊपरी तौर पर वह खुश रहा करती, हँसी - मज़ाक में शामिल होती। पर एकांत में अपने अकेलेपन से दुखी होती थी। उसके अविवाहित होने से माँ कितनी चिंतित रहती है, वह यह बात अच्छे से समझती थी लेकिन शादी ऐसे ही किसी से भी तो नहीं की जा सकती थी ! माँ को कैसे समझाये, यही सोचा करती। उसे अपने काम पर, अपने 'उत्सव' पर बहुत गर्व था। परंतु कभी - कभी वह ये सोचने को भी मजबूर हो जाती कि यह 'उत्सव' उसके जीवन को कब उत्सव से भरेगा !

नकुल का नया घर बहुत ही अच्छा बन रहा था। पुरानी कोठी का काया पलट हो रहा था। नेहा के काम से नकुल की माँ और नकुल इतना खुश थे कि वे पहले कोठी का काम पूरा करवाना चाहते थे। सगाई तो वहीं होनी ही थी।

शादी के लिए 'वेन्यू' बाद में सोचेंगे, ऐसा कहकर टाल गए थे दोनों। नेहा क्या कहती ! सोचा, शायद शादी के लिए और उत्तम कोटि का काम चाहते हों वो लोग ! उसे तो अपने क्लाएंट की इच्छा के अनुरूप काम करना था। कोठी के पीछे वाला क्षेत्र बहुत ही सुंदर हो गया था। रही - सही कसर अगले दो तीन दिनों में पूरी हो जानी थी। नकुल तो कम आता था, उसकी माँ ही प्रायः आ जाती थी। नेहा से बहुत बातें करती। वह बताती कि कैसे नकुल तो विवाह के लिए तैयार ही नहीं होता था। उसने अपनी दोनों बहनों का भविष्य सुरक्षित करने को वरीयता दी थी। अब चौंतीस का हो गया था। और बहनों तथा माँ के दबाव में आ कर शादी के लिए तैयार हो गया था ! नेहा को नकुल की आपबीती अपने जीवन जैसी लगती। उसने भी स्वयं से अधिक अपने माता - पिता और भाई - बहन के हितों को वरीयता दी थी।

राखी का कुछ समय अब स्वयं के विवाह की तैयारियों में निकलने लगा था। अतः कई बार ऑफिस और कोठी पर नेहा अकेली ही काम करती। उसने नकुल के घर के अलावा कोई और प्रोजेक्ट नहीं लिया था। वह पूरी तन्मयता के साथ ये काम पूरा करना चाहती थी।

जब भी नकुल काम की प्रगति देखने आता तो नेहा को बहुत अच्छा लगता था। उसे देखते ही नेहा की बड़ी - बड़ी आँखों में चमक आ जाती। वह बरबस ही मुस्कुराती, काम करने में भी स्फूर्ति आ जाती। नकुल की उपस्थिती मात्र से नेहा के व्यवहार में उत्साह भर जाता ! वह नकुल के सामने अपनेआप को बहुत सहज पाती थी। यह जानते हुए भी, कि नकुल का विवाह तय हो चुका है, फिर भी कभी - कभी नेहा को नकुल के साथ बिताये दिनों की याद आ जाती थी। ऐसे में उसका विवेक उसे हौले से यथार्थ के धरातल पर ला खड़ा करता। कभी - कभी नकुल ही अपनी मंगेतर का उल्लेख कर देता तो नेहा उदास हो जाती पर जल्दी ही अपने को संभाल लेती। वह किसी भी कीमत पर नकुल पर अपने मन की उहापोह को व्यक्त होने नहीं देना चाहती थी।

नकुल की मंगेतर अब भी रहस्य ही थी। सगाई के निमंत्रण पत्र भी नकुल खुद ही डिज़ाइन कर रहा था। नेहा को कुछ भी कहने का अधिकार नहीं था।

उसने अपनी समझ बूझ और अनुभवों के आधार पर नकुल की सगाई की सारी तैयारियाँ कर ली थी। बातों - बातों में नकुल से उसकी मंगेतर की पसंद - नापसंद पता चल रही थी उसी के अनुसार नेहा ने सगाई के दिन के लिए रंगों की 'थीम', फर्नीचर, खान - पान आदि की तैयारी कर ली थी। उसे प्रसन्नता होती कि नकुल की मंगेतर बहुत ही सादगी पसंद है।

एक दिन नकुल ने बताया कि उसकी मंगेतर भी इंटीरियर डिजाइनर है। तब नेहा को बड़ा आश्चर्य हुआ कि नकुल अपनी भावी पत्नी से यह घर क्यों नहीं सजवाता ! उसकी भावी पत्नी को कितना अच्छा लगता जब वह अपनी पसंद से सारे बदलाव करती ! नेहा जब इस विषय में नकुल से बात की तो उसने 'सरप्राइज़' की बात कह कर नेहा को चुप करा दिया। अंततः नेहा ने हार मान ली थी। वह सोचती कि कोई बात नहीं, वह अपने काम से काम रखेगी। और भविष्य में उसका सजाया घर उन्हें पसंद नहीं आया तो वो लोग फिर से बदलाव कर लेंगे - उन्हें धन की कमी तो थी नहीं।

सगाई का दिन पास आ रहा था। उसके पहले कोठी को इस रूप में पहुँचाना आवश्यक था कि मेहमान आयें तो कुछ अधूरा न लगे। नेहा हमेशा की तरह जब कोठी पहुँची तो नकुल वहाँ पहले से ही था। उसके साथ एक सुंदर सी युवती भी खड़ी थी। वे दोनों हँस - हँस कर बातें कर रहे थे। नकुल ने दूर से ही नेहा को देख लिया था। उसने हाथ हिला कर नेहा का अभिवादन किया और संकेत से पास आने को कहा। उस युवती ने भी मुस्कुराकर हाथ हिलाया। नेहा का भी हाथ यंत्रवत उठ गया। वह धीरे - धीरे आगे बढ़ती रही।

उस युवती को नकुल के साथ देखकर जाने क्यों उसके मन में हौल उठी.... जैसे कि बहुत रिक्तता आ गयी थी ! उसके मन में विचार आया कि वह अध्याय भी समाप्त हो गया - जो कभी आरम्भ ही नहीं हुआ था ! वह जल्दी से जल्दी इस सगाई और कोठी की ज़िम्मेदारी पूरी करके इन सबसे दूर जाना चाह रही थी। अचानक ही उसे सारा वातावरण अपरिचित लगने लगा। बहुत तीव्रता से नेहा को खालीपन घेरने लगा।

नेहा उस युवती से मिलती, इससे पहले ही उस युवती का फोन बजने लगा और वह बात करने के लिए नकुल और नेहा से थोड़ी दूर चली गयी। नकुल और नेहा कोठी के अन्दर, पहली मंजिल पर चले गए। दोनों में थोड़ी बहुत औपचारिक बातें हुईं। नेहा ने यंत्रवत पिछले काम के बारे में नकुल को बताया और आज का टार्गेट बताया। उस युवती को नकुल के साथ देखने के बाद से अपनी बढ़ती असहजता से नेहा स्वयं ही लज्जित अनुभव कर रही थी। कहाँ तो वह नकुल से बार - बार उसकी मंगेतर की राय के बारे में पूछती रहती.... और कहाँ उसे अचानक सामने देखकर वह घबरा गयी थी। उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि उस युवती को केवल देखने भर से वह इतनी प्रभावित हो जाएगी।

स्थिति को स्वयं काबू में लाने के लिए नेहा ने ही बातें शुरू की, “नकुल, बाकी सब तो मैंने डिटेल में बता ही दिया है, बस तुम्हारे कमरे का पेंट का रंग तय हो जाता तो काम जल्दी पूरा हो जाएगा। फर्नीचर और फर्नीशिंग के लिए मैंने और तुम्हारी माँ ने मिल कर फाइनल कर दिया है। फिर भी कुछ बदलना चाहते हो तो हो जाएगा.....”

नेहा और नकुल कोठी की पहली मंजिल पर थे जहाँ तीन बेडरूम में से एक नकुल का था; और वे दोनों वहीं खड़े थे। कमरे से लगी हुई बड़ी सी बालकनी थी जहाँ से नीचे के बग़ीचे का दृश्य दिखता था। बग़ीचे में घूम - घूम कर फोन पर बात करती हुई युवती की ओर उचटती सी दृष्टि डालते हुए नेहा ने अपनी बात पूरी की, “.... इस कमरे से लगती हुई जो खुली जगह है, वो नीचे डाइनिंग हाल के ठीक ऊपर है। यहाँ तुम और तुम्हारी मंगेतर अपना वर्कप्लेस या स्टूडियो बना सकते हो। थोड़े से बदलाव के साथ इस खाली जगह का अच्छा उपयोग हो जाएगा। यदि कुछ और है दिमाग़ में, तो बता दो वैसा ही बन जाएगा ....।”

नकुल नेहा को सम्मोहित सा सुन रहा था। उसने बालकनी से नीचे, युवती की ओर मुस्कुराते हुए देखा और नेहा की बात को बीच में ही काटते हुए कहा, “.... तुम्हें जैसा ठीक लगे, वैसा ही करना नेहा - यू आर द बॉस !”

नकुल की एक कान से दूसरे कान तक फैली हुई मुस्कान देखकर नेहा को कुढ़न होने लगी। नीचे बग़ीचे की ओर से उस युवती की खिलखिलाने की आवाज़ आ रही थी। नेहा के मन में नारीसुलभ ईर्ष्या जाग उठी। ये नकुल भी विचित्र है ! क्यों नहीं 'उसे' यहाँ ऊपर बुलाकर अपने कमरे की साज - सजावट की चर्चा कर लेता ! मुझे यहाँ कितना अजीब लग रहा है, काश ये वह समझ पाता !

नेहा का वहाँ से भाग जाने का मन करने लगा।

"नेहा, जब बाकी फैसले तुमने ले ही लिए हैं तो दीवारों का रंग भी तुम ही तय कर लो। तुम्हारी पसंद पे हमें कोई प्रश्न ही नहीं है !" नेहा के लाये हुए कलर कार्ड को पलटते हुए नकुल ने अपना फैसला सुना दिया।

नेहा ने चुपचाप अपना लैपटाप निकाला और साथ ही में कुछ फोन कॉल करने लगी। नकुल वहीं खड़ा रहा। आज उसकी उपस्थिति नेहा को असहज करने लगी थी। काश ये नीचे बग़ीचे में चला जाय ! एक समय था जब नकुल नेहा के 'उत्सव' में काम करता था तब नेहा निश्चिंत हो कर देर रात तक भी काम करती थी। घंटों बीत जाते पर अखरता नहीं था। नकुल के ही साथ कभी काम के सिलसिले में कई बार 'ईवेंट' की जगहों पर आना - जाना भी किया था।

अभी परिस्थितियाँ अलग थीं। नकुल भी तो पिछले कुछ दिनों से नेहा से थोड़ी देर औपचारिक बातें करके वहाँ से चला जाता था, कारीगरों से बात करता, कुछ समस्या होने पर उसे सुलझाने की कोशिश करता था - पर नेहा के पास कम रुकता था।

लेकिन आज जाने क्यों नकुल हट ही नहीं रहा था ! थोड़ी देर में नकुल की माँ आ गयी तो वह नीचे जाने को उद्यत हुआ। नेहा के जान में जान आयी।

लेकिन नकुल तुरंत ही नहीं गया.... । नेहा के पास आकर नेहा का लैपटाप का स्क्रीन हौले से मोड़ते हुए बोला, "माँ आ गयी है। चलो नीचे। और हाँ, मैं तुम्हें अपनी मंगेतर से भी मिलाता हूँ !"

"हाँ ! हाँ !, क्यों नहीं !" यंत्रवत मुस्कुराते हुए और चेहरे पर खुशी ओढ़ते हुए नेहा बोली। उसने लैपटाप बंद किया और बोझिल कदमों से चलने लगी। आखिर वो क्षण आ ही गया था जब नेहा नकुल की मंगेतर से मिलने वाली थी। दुःखी न हो नेहा ! ये तो होना ही था ! वह अपने आप को मन ही मन समझाने लगी। एक पल को ठिठक कर उसने एक निर्णय ले लिया। अब मेरा यहाँ, कोई काम नहीं है। मुझे यहाँ से दूरी बना लेनी चाहिए। नेहा ने स्वयं को धीरज देने का प्रयास किया। फिर फटाफट अपना सारा सामान समेटा, बैग में रखा और नकुल के पीछे हो ली। नकुल नेहा को सामान उठाते हुए देख रहा था।

"ये क्या कर रही हो ?" नकुल ने कहा।

"मैं नीचे काम कर लूँगी। ऐसे में वर्कर्स पर नज़र भी रख पाऊँगी।" नेहा ने सफ़ेद झूठ बोला। वास्तव में वह इस कमरे से, नकुल के कमरे से बाहर निकलना चाह रही थी।

प्रत्युत्तर में नकुल ने बस कंधे बिचका दिये। जाते हुए नेहा ने कमरे में निगाह घुमायी और अपना निर्णय और पक्का कर लिया कि अब वह इस कमरे में नहीं आयेगी। कमरे का इंटीरियर लगभग पूरा तय हो चुका था। राखी को भी भेज कर उसकी देखरेख में बचा हुआ काम पूरा हो सकता था। नेहा को अब आने की वास्तविकता में कोई आवश्यकता नहीं थी।

नकुल नेहा से दो कदम आगे चल रहा था। वह अचानक मुड़ा और लगभग फुसफुसाते हुए बोला, "आओ, तुम्हें अपनी फियान्सी से मिलवाऊँ !" कहते - कहते उसके चेहरे पर चिर परिचित स्मित पसर गया ।

जिस क्षण को नेहा टालने की असफल कोशिश कर रही थी, वह क्षण आ चुका था। नकुल की आँखें खुशी के मारे चमक रहीं थीं। उसने बेडरूम के ड्रेसिंग रूम की ओर संकेत किया। यंत्रवत सी नेहा उस ओर गयी। नेहा को वहाँ कोई नहीं दिखा। उसे याद नहीं आया कि उन दोनों के अलावा कोई और कमरे में घुसा हो। ..... या वह अपने काम और मन में चल रहे अन्तर्द्वन्द्व में इतनी डूब गयी थी कि उसका ध्यान ही नहीं गया !

“कहाँ है ?” नकुल के संकेत की ओर देखते हुए नेहा बोली।

“मैं अभी मिलाता हूँ !” नकुल ने अधिकार पूर्वक नेहा की कलाई पकड़ी और लगभग खींचता हुआ ड्रेसिंग रूम की ओर ले चला। नेहा बेचारी ! जब से उस युवती को देखा था, नेहा उससे मिलने का हर अवसर टालना चाहती थी। पहले कितनी बेचैन थी ये जानने को, कि नकुल की मंगेतर कौन है ! अब वो यहीं थी तो नेहा उससे मिलना नहीं चाह रही थी। लेकिन अब कोई चारा नहीं था। अब तो मिलना ही पड़ेगा !

अगले ही क्षण दोनों ड्रेसिंग रूम के अंदर थे। नकुल ने नेहा को आगे कर दिया। पर वहाँ कोई नहीं था। इस कमरे में एक दीवार पर अलमारी का वुडवर्क का काम चल रहा था; इस समय कारीगर नीचे गये हुए थे। एक दीवार पर आदमकद शीशा लगा हुआ था जिसमें नेहा को अपना ही प्रतिबिंब दिखाई दे रहा था।

“यहाँ तो कोई भी नहीं है नकुल !” नेहा ने मुड़ कर कहा। नकुल ने प्रेम से नेहा के कंधे थामे और आईने की ओर फिर से मोड़ कर खड़ा कर दिया....

“ये तो खड़ी है मेरी मंगेतर !”

नेहा के लिये मानो समय ठहर गया। उसको आईने में अपनी छवि देखकर विश्वास ही नहीं हो रहा था। उसने कहा, “लेकिन नकुल....”

“लेकिन - वेकिन कुछ नहीं नेहा। मुझे रोमांटिक बातें करना नहीं आती। सीधे सरल शब्दों में कहता हूँ .... क्या तुम मेरी जीवन संगिनी बनोगी ?”

“लेकिन वो लड़की जो नीचे है....” नेहा अब भी असमंजस में थी।

नकुल ने जैसे सुना नहीं, “नेहा, मुझे तुम जैसी ही जीवन संगिनी की तलाश थी। क्या मैं तुम्हें जीवनसाथी के रूप में स्वीकार हूँ ?”

“हाँ .... पर .... !” नेहा की आँखों में आँसू , होठों पर मुस्कान थी। जो सुन रही थी या देख रही थी, उसपर नेहा को विश्वास ही नहीं हो रहा था। हर्षातिरेक होकर नेहा बोली, “ओह ! नकुल मैं बता नहीं सकती कि मैं कितनी खुश हूँ !”

नकुल ने नेहा का हाथ अपने हाथों में लेकर कहा, "चलो नीचे चलते हैं। मेरी बहन और माँ इंतज़ार कर रहे होंगे।"

"अच्छा, तो वह तुम्हारी बहन है !" नेहा ने हैरानी से कहा।

"यस मैडम ! मेरे साथ उसे खड़ा देखकर जो तुम्हारी बड़ी - बड़ी आँखों में जलन और दुःख एक साथ उभर आया था ना, तभी मुझे एहसास हो गया था, कि नकुल, अब ये मंगेतर और सरप्राइज़ का नाटक और लंबा न खींचना, वरना 'ये' भाग जाएगी !"

नेहा मुस्कुराने लगी। ये सरप्राइज़ ही तो था उसके लिए। सबकुछ एक सुंदर सपने जैसा था। मन बावरा होने ही लगा था कि यथार्थ ने उसके कदम खींचे। आर्थिक रूप से दोनों परिवार सर्वथा अलग - अलग धरातल पर थे। नेहा अपने मन की बात कहने के लिए शब्द ढूँढने लगी।

नकुल ने मानो उसके मन के भाव पढ़ लिए थे। वह बोला, "नेहा, तुम और तुम्हारा परिवार आज जो कुछ भी है वो तुम्हारी लगन और मेहनत के कारण है। ठीक वैसे ही मेरे परिवार ने भी कठिनाइयाँ देखीं हैं। आकाश ने मुझे तुम और तुम्हारे परिवार के बारे में बहुत कुछ बताया है। मैं और मेरी माँ तुम्हारी लगन और कर्मठ स्वभाव के बहुत प्रशंसक हैं। इसीलिए मैंने बहुत पहले ही निर्णय ले लिया था कि विवाह तो तुम ही से करूँगा !"

नेहा को विश्वास नहीं हुआ "मुझे कब से जानते हो नकुल ?"

"नेहा, मैं यहाँ काम के सिलसिले में कई सालों से आता रहा हूँ। आकाश मेरे कुछ प्रोजेक्ट्स के लिए सामान दिलवाता रहा है। आकाश ने ही बताया था कि तुम और आकाश कई सालों से जानते हो एक दूसरे को। वो हमेशा ही तुम्हारी प्रतिभा की प्रशंसा किया करता है। तुम उसके ऑफिस कई बार आया करती रही हो, काम के सिलसिले में कुछ सलाह मशवरा करने। मैंने तुम्हें वहाँ एक - दो बार देखा था बिल्डिंग में, और जैसे तुम मन में बस गयीं थीं ! मैंने तुम्हारा फोन नंबर भी लिया था आकाश से, काम के बहाने, पर कभी किया नहीं। लेकिन जब मुझे पता लगा कि तुमने अभी तक शादी नहीं की है तो मेरी प्रसन्नता का कोई अंत नहीं था ! बस फिर क्या था, मैंने आकाश के साथ प्लान

बनाया तुम्हारा विश्वास जीतने के लिए। साथ ही तुम्हें कोई परेशानी न हो इसका ख्याल रखना चाहता था। मुझे ये भी नहीं मालूम था कि कहीं तुम किसी और को तो नहीं पसंद करती हो ! अतः तुम्हें पास से जानने का बस एक ही तरीका था कि 'उत्सव' में काम करो ! तब वो स्केच आर्टिस्ट की कहानी बनी!"

"फिर तुम्हारी 'हाँ' जानने से पहले तुम्हारे पेरेंट्स की इच्छा जानना बहुत ज़रूरी था.... इस काम में आकाश ने मेरी मदद की.... ये कोठी का इंटीरियर वगैरा तो तुम्हें रोज़ बुलाने का बहाना था....अपनी माँ को तो मैं पहले ही बता चुका था अपनी पसंद के बारे में.... वैसे तुमने बहुत ही बढ़िया काम किया है!"

नेहा बिना पलक झपकाये नकुल की बातें सुन रही थी। नकुल को उसकी पूरी दिनचर्या पता थी। तभी तो इतनी सारी भीड़ में स्केच आर्टिस्ट का दोबारा मिलना संभव हो सका था !

"सच में नेहा, मैंने कई बार तुम्हारे साथ मेट्रो में सफ़र किया है। तुम्हारे ऑफिस तक आया हूँ !" नकुल ने मानो गर्व के साथ कहा। नेहा लजा गयी। वह मंत्रमुग्ध थी। उसे अपने भाग्य पर विश्वास नहीं हो रहा था।

"चलो नेहा, नीचे जाकर माँ के आशीर्वाद ले लेते हैं। थोड़ी ही देर में आकाश और राखी तुम्हारे माँ - पापा को यहीं ले आयेंगे। मुझे विश्वास है कि इस रिश्ते से सभी लोग बहुत प्रसन्न होंगे !"

नेहा ठिठक गयी " यानि.... राखी भी सब जानती थी ?"

"सारा नहीं, पर काफी कुछ ! उसे भी अभी दो दिन पहले ही बताया है.... चलो उससे बाद में लड़ लेना। वैसे तो उसके पेट में कुछ नहीं रहता, लेकिन इस बार इतनी बड़ी बात जाने कैसे वह अपनी सहेली से छिपा गयी !" नकुल ने ठिठोली की।

दोनों नीचे आने के लिए सीढ़ियाँ उतरने लगे। नेहा के जीवन में उत्सव के क्षण आ गए थे जो चिरकाल तक रहने वाले थे।

हेमंत और ग्रीष्मा

"हेमंत, नीचे आजा जल्दी से ! चाय ठंडी हो रही है।" माँ ने आवाज़ दी।

"बस आया माँ,... पाँच मिनट !" हेमंत ने ऊपर से ही ऊँची आवाज़ में कहा। नीचे हाल में बड़ा सा टी.वी. पूरे उत्साह के साथ फुल वॉल्यूम में ब्रेकिंग न्यूज़ सुना रहा था। हेमंत ने कितनी बार कहा है कि धीमी आवाज़ में सुना करो पर ध्यान कौन देता था ! हेमंत अभी ही ऑफिस से लौटा था। कपड़े बदलकर, हाथ - मुँह धोकर नीचे जाने के लिए बढ़ा ही था कि उसका मोबाइल फोन बज उठा। उसके बॉस का था। कुछ ज़रूरी जानकारी चाहिए थी। स्पष्ट है, तुरंत ही मोबाइल पर मेसेज भेजना था। अतः हेमंत ऊपर ही रुक गया।

"आजा बेटा, सब इंतज़ार कर रहे हैं ...." माँ ने फिर आवाज़ लगाई। माँ के घुटनों में दर्द रहता था अतः सीढ़ियाँ चढ़ना यथा संभव टाल देती थी।

"अरे भाई, आ जाओ नीचे । मोबाइल और लैपटाप नीचे ही ले आओ....।" पापा की आवाज़ आई। फिर तो क्या था, हेमंत की बुआ दादी को मौका मिल गया। हॉल के दूसरे कोने से उनकी खरखराती हुई आवाज़ सुनाई दी। वो माँ को कह रही थी, "अरी बड़ी बहू ! मुझे तो चाय दे दे। उसे क्यों ठंडी कर रही है ? साथ में बिस्कुट देना न भूलना। बाबू को बाद में दे दियो!"

"हाँ बुआजी, अभी लायी।"

माँ भाग कर रसोई में प्रविष्ट हुई। हेमंत की दादी स्वयं अपनी ननंद की कोपभाजन नहीं बनना चाहती थी अतः वह भी डगर - मगर चलती हुई रसोई की ओर लपकी। पापा कहते हुए सुनाई दिये कि बुआ, जल्दी क्या है, बाबू आ जाय, तब सब साथ में चाय पियेंगे - मज़ा तो उसी में है।

ये 'बाबू' यानि हेमंत। शर्मा खानदान का पहला पोता। वह ऊपर बैठा जल्दी - जल्दी मेसेज टाइप कर रहा था। नीचे वाले हाल की चहल - पहल लगभग प्रतिदिन ऐसी ही होती थी। हेमंत के ऑफिस से आते ही मानो सबमें ऊर्जा का संचरण हो जाता था ! दादी और बुआ दादी का आपस में रूठना - मनाना, माँ का भाग - भाग कर काम करना, दादाजी का दादी और बुआ दादी के बीच रेफरी का काम करना आदि सब उन लोगों की दिनचर्या का अहम हिस्सा थे। हेमंत के चाचा अपने परिवार के साथ बगल वाली कोठी में ही रहते थे। वे सब लोग बहुदा शाम की चाय के समय यहीं आ जाते थे। कभी - कभी गप्पें, ताश, चाय, नाश्ता होते - होते रात हो जाती तो माँ और चाची मिलकर यहीं खाना बना लिया करते थे। कभी चाची खुद भी कुछ नयीं, बेक्ड डिशेस ले आती। हेमंत से एक वर्ष छोटी चचेरी बहन प्रिया का विवाह हो चुका था। चचेरा छोटा भाई सचिन और हेमंत की बहन वर्षा, ये दोनों एक ही कॉलेज में पढ़ रहे थे। हेमंत का मंझला भाई वसंत भी जॉब कर रहा था। हेमंत के पिता दो - तीन वर्षों में सेवानिवृत्त होने वाले थे। चाचा का बिजली के उपकरणों का व्यवसाय था। दिल्ली के बहुत अच्छे उपनगर में दादाजी ने कई सालों पहले बहुत सस्ते दामों में बड़ी ज़मीन खरीदी थी। उस पर ही ये दो बड़ी कोठियाँ बनी हुईं थीं जिनमें शर्मा खानदान रह रहा था। दिल्ली में होने के कारण दूर के, पास के रिश्तेदारों का आना - जाना लगा रहता था। कुल मिलकर यह संयुक्त परिवार हँसी - खुशी रह रहा था।

हेमंत जब नीचे पहुँचा तो चाचा - चाची भी आए हुए थे। शाम से ही बारिश रुक - रुक कर हो रही थी। साढ़े सात बज चुके थे। सचिन, वर्षा और वसंत भी वापस आ चुके थे। डाइनिंग टेबल पर चाय - पकौड़ों के दौर चल रहे थे। हंसी मज़ाक के दौर में समय कहाँ फिसलता गया, पता ही नहीं चला।

अचानक हेमंत की बुआ दादी को खाँसी का दौर उठा और वह काफी देर तक खाँसती ही रही। फिर क्या था, मजे - मस्ती को विराम लगा और माँ दौड़ कर गरम पानी ले कर आई, चाची लौंग, मुलैठी वगैरा का इंतजाम करने लगी, दादी काढ़ा बना लाने की समझाइश देने लगी, वर्षा भाग कर बुआ दादी

का इन्हेलर ले आयी। बुआ दादी की खाँसी अक्सर ही ऐसे सब को हिलाकर रख देती थी।

लगभग आधे घन्टे की भाग दौड़ के बाद उनकी खाँसी रुक गयी थी और साँस लेने में भी दिक्कत नहीं हो रही थी। सब की जान में जान आयी। शाम की महफिल खत्म हो गयी थी। सब अपने - अपने कामों में व्यस्त होने का उपक्रम करने लगे। माँ और चाची रात के खाने के लिए सटीक शॉर्टकट सोचने लगे। वैसे भी पकौड़ियों से सभी का पेट भर गया था। खिचड़ी के बारे में राय बन रही थी।

हेमंत भी अपने लैपटॉप पर काम करने लगा। काढ़े के घूंट सुड़कते हुए बुआ दादी हेमंत से बोली, "बाबू, तेरी नौकरी तो पक्की हो गयी है न ?"

हेमंत सतर्क हो गया। ये सवाल आए दिन प्रतिदिन ही पूछा जा रहा था।

"हाँ !, हाँ, बाबू तो बड़ा अफसर है अपनी कंपनी में।" दादी गर्व से बोली। हेमंत को पता था, बातचीत की भूमिका क्यों बांधी जा रही है ! पर वह चुपचाप अपना काम करता रहा।

बुआ दादी ने तो सारे तीर, कमान पर चढ़ा कर ही रखे होते थे। चेहरे पर गंभीरता का आवरण खींच कर बोलना जारी रखा, "अरे बाबू बेटा, अब तो ब्याह कर ले। बूढ़ी जान हूँ ,जाने कब सिधार जाऊँ !"

"अरे जीजी, क्यों ऐसी बातें करती हो ? आप तो पोत बहू को भी देखोगी और पड़पोते के ब्याह की बारात में घोड़ी को चने भी खिलाओगी.... !" दादी गदगद होकर बोली।

हेमंत सोचने लगा कि दिन भर लगभग हर मोर्चों पर इन दोनों महिलाओं के विचार नहीं मिलते थे - बस 'बाबू' का विवाह ही ऐसा विषय था जहाँ दोनों एक ही पाले में हो जातीं थीं।

"अरे अनीता, तुम बता रहीं थीं, तुम्हारी भाभी के मायके में कोई रिश्ता है। जरा पता तो करो....।" दादी ने हेमंत की माँ से कहा।

“भाभी, वो भी तो है, बड़ी प्यारी सी है, नाम ही मैं भूल गयी ... अरे याद आया, पिंकी !!... उसी ने तो हमारे दूर के जेठजी की पोती रश्मि के ब्याह में संगीत के समय डांस किया था !” बुआ दादी का दिमाग रिश्तेदारी याद रखने में कंप्यूटर से भी तेज काम करता था।

“जीजी, उसको भूल गईं .... ?!, मेरी सरिता विहार वाली मौसेरी बहन के पड़ोस में जो मिसरा जी रहते हैं, उनकी भतीजी रूही ! सच कितना अच्छा भजन गाया था पिछली बार की नवरात्रों में !” दादी भी कहाँ पीछे रहने वाली थी।

हेमंत अंदर ही अंदर कुढ़ गया। अब ये कौन हैं पिंकी और रूही ? अच्छे डांस करने या भजन गाने की कला से भावी जीवन साथी चुनने का मानदंड तय तो नहीं हो सकता था !

माँ और हेमंत की दृष्टि आपस में मिलीं। हेमंत ने आँखों से ही संकेत किया कि ये टॉपिक बंद करो। माँ बेचारी बेटे और सासों के बीच पिस जाती थी। वह कुछ कहती, इससे पहले ही बुआ दादी ‘मैच मेकर’ के अवतार में आ चुकी थी। खाँसी ठीक हो गयी थी। अब दोनों दादियों ने दूर की या पास की रिश्तेदारियों में कई सुयोग्य कन्याओं के वर्णन कर दिये। फिर क्या था, वसंत, वर्षा, सचिन, चाची सभी इस चर्चा में शामिल हो गए। हर एक के पास कुछ न कुछ कहने को था, सिवाय हेमंत और माँ के ! पापा, चाचा और दादाजी हमेशा की तरह ऐसी चर्चाओं से दूर टी.वी. पर ब्रेकिंग न्यूज़ देखने में व्यस्त हो गए।

माँ हमेशा अकेली पड़ जाती। वह बाकियों की तरह रिश्ते सुझाए.... या हेमंत का साथ दे ! वह भी चाहती थी कि हेमंत का विवाह हो और बहू घर आए लेकिन जब तक हेमंत नहीं चाहता, वह बेटे पर दबाव नहीं बनाना चाहती थी।

हेमंत पहले ऐसी चर्चाओं को हल्के में ले लेता था। अभी हाल ही में अपनी कंपनी में पदोन्नत हुआ था, अतः अपने काम पर अधिक ध्यान देना चाहता था। वह विवाह के विरुद्ध नहीं था परंतु अभी तैयार भी नहीं था।

पिछले कुछ दिनों से ये बातें प्रायः होने लगीं थीं, खासकर हेमंत की पदोन्नति के बाद। आज भी ऐसा ही माहौल बन गया था।

"भैया, बोलो न, कौन पसंद है आपको इन सब में ?" वर्षा चहकते हुए बोली।

हेमंत से काम नहीं हो पा रहा था। एकाग्रता भंग हो चुकी थी। लैपटाप बंद करते हुए बोला, "कोई भी नहीं...." अपनी खिन्नता को यथासंभव छिपाते हुए हेमंत उठने को हुआ। वर्षा ने हाथ पकड़ कर बैठा लिया, "अरे भैया, नाराज़ न हो !"

"हाँ बेटा, घर में बहू आ जावे तो अनीता को भी ज़रा आराम मिलेगा...." दादी ने कहा।

"भैया, दादी ठीक ही तो कह रही है !" वसंत भी कहाँ पीछे रहता ! सचिन ने भी हाँ में हाँ मिलाई।

"तो ठीक है, घर में बहू आनी ही चाहिए। ऐसा कर, वसंत तू ही कर ले शादी। माँ और दादी को आराम हो जाएगा।" हेमंत ने वसंत को घेरा। दोनों भाई कुँवारे थे। दोनों में आयु का अंतर भी बहुत नहीं था।

वसंत के चेहरे का रंग उड़ गया। थोड़ा संभल कर बोला, "अरे बड़े भाई! क्या गजब कर रहे हो ! पहले आपकी शादी होगी फिर अपना नंबर आएगा। क्यों, ठीक है न वर्षा ?" वसंत ने बहन को अपनी ओर कर लिया।

"जो भी है, पहले हेमंत की ही बहू आएगी !" बुआ दादी ने फैसला सुना दिया। सब लोगों ने सहर्ष सहमति दिखाई। वैसे भी उनका कहा ब्रह्म वाक्य हुआ करता घर में।

दादाजी की लाड़ली बहन थी बुआ दादी ! उनका विवाह बहुत छोटी उम्र में हो गया था। उन्होंने बहुत दुःख झेले थे अपनी ज़िंदगी में। अट्ठारह वर्ष की आयु में बेटी हुई और बीस वर्ष की आयु में वो विधवा हो गयीं। उनका ससुराल बहुत भरा - पूरा परिवार था। छोटी आयु में ही वैधव्य झेलती बहन का दादाजी बहुत ध्यान रखा करते। कई बार बुआ दादी अपने मायके आ

जाती अपनी बेटी को लेकर, कई - कई दिनों तक रहने ! ससुराल वाले भले थे, कभी बुरा नहीं माना। बुआ दादी के हिस्से जो जमीन - जायजाद मिली उसी से अपनी बेटी का धूमधाम से विवाह करवाकर अपने कर्तव्यों से मुक्ति पा ली। उसके बाद तो बुआ दादी स्थायी रूप से दादाजी के पास ही रहने को आ गयीं थीं।

दादाजी और दादी के प्यार और दुलार ने उन्हें जिद्दी बना दिया था। परिणाम ये था कि घर के हर छोटे - बड़े निर्णयों में उनकी राय लेना अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता था। एक तरह से घर की 'वीटो पावर' उन्हीं के हाथों में थी।

इतने सालों का साथ था तभी दादी और बुआ दादी में सहेलियों जैसी अनबन हो जाती, और मान मनौव्वल चलती रहती। ये हाल था कि सुबह के नाश्ते के समय दोनों के मुँह फूलने के बाद दोपहर को दोनों साथ - साथ बाज़ार भी चली जाती थीं !

" बेटा, तुझे कोई और पसंद हो तो बता, वहीं बात चलायेंगे...." माँ ने बेटे की आँखों में झांक कर कहा।

"नहीं माँ ऐसी कोई बात नहीं है। बस अभी थोड़ा और समय चाहिए...."

"क्या समय, समय ? इतने सारे रिश्ते सुझा दिये इसे कोई पसंद ही नहीं है ?" बुआ दादी अपनी खरखराती आवाज़ में बोली।

"ओके .... ठीक है। मामला यहीं खत्म करते हैं। मैं रिश्तेदारी में शादी नहीं करूँगा।" हेमंत ने भी ताव खाया।

"अरे तो फिर किससे करेगा ?" बुआ दादी हाँफने लगी थी।

"भैया, ऑफिस में कोई है ?" सचिन ने अपनी उपस्थिती दर्ज की।

"भैया, इंटरकास्ट या इंटर - रिलीजियस होने से भी .... हमारा पूरा सपोर्ट है आपको !" वर्षा ने वसंत और सचिन की ओर देखते हुए उन्हीं के भरोसे अपनी बात रखी।

“ओफ्फो ! अब सब चुप भी करो !” हेमंत ने गुस्से में आवाज़ ऊँची करके कहा। फिर माँ का ध्यान आते ही संयत स्वर में बोला, “मैं समझ सकता हूँ कि आप सब मेरी शादी के लिए बहुत उत्साहित हैं। मैं भी शादी के खिलाफ नहीं हूँ .... चलो एक काम करते हैं अखबार में “ रिश्ता डॉट कॉम ” में मेरा बायो डाटा दे देते हैं । यदि कुछ रिश्ते आ गए तो फिर आगे बात करेंगे, ठीक....?”

भाई - बहन तो मान गए। अपने बड़े भाई का बढ़िया सा बायोडाटा बनाने बैठ गए। चाची और माँ इस नए मोड़ को समझने का प्रयास करने लगीं। जब थक गयीं तो अपने पतियों के पास चर्चा करने चलीं गयीं। रह गयीं दादी और बुआ दादी ! उन्हे ये अखबार वाला सुझाव कतई पसंद नहीं आया था।

और हेमंत ! मन ही मन मुस्कुराते हुए उसने अपना लैपटाप उठाया ऊपर अपने कमरे की ओर रुख किया। जाते - जाते माँ को आवाज़ लगाई कि खाना बन जाए तो नीचे बुला लेना।

खाना हल्के - फुल्के ढंग से निपट गया। कोई अनावश्यक चर्चा नहीं हुई। हेमंत को राहत मिली कि चलो, शाम का तूफान शांत हो गया था।

रात को ग्यारह बजे माँ हेमंत के कमरे में आयी। सीढ़ियाँ चढ़ने की वजह से हाँफ रही थी। टेबल पर गरम दूध रखते हुए माँ ने कहा, “बेटा, क्या बात है, तू शादी के लिए हाँ क्यों नहीं करता ?”

“माँ, पहले तो आपको सीढ़ियाँ नहीं चढ़नी थीं। आपके घुटनों की तकलीफ बढ़ जाती है। वर्षा को भेज देती या मुझे आवाज़ लगा देती, आप क्यों आयीं ?” हेमंत ने साधिकार माँ को पलंग पर बैठाया और हौले - हौले माँ के पैर दबाने लगा।

“बेटा, पहले मेरी बात का जवाब दे....” माँ ने पैर परे हटाने की कोशिश की।

“ओ माँ ! इतनी सी बात ! मैं शादी को कहाँ मना कर रहा हूँ !? अच्छा चलो वादा करता हूँ, इसी साल के अंत तक शादी कर लूँगा। अब तो

ठीक ?" हेमंत ने माँ का चेहरा स्नेह से अपने हाथों में लेकर कहा। माँ के चेहरे पर मुस्कान आ गयी।

"साल के अंत तक नहीं, तू इसी जाड़ों में सहालग लगते ही करेगा शादी।"

"ओ हो हो .... माँ ! इतनी जल्दी लड़की कहाँ मिलेगी ?"

"सब कुछ हो जाएगा, बस अब तू न मुकरना !"

"ठीक है माँ .... जैसे आप चाहो ।" हेमंत ने हथियार डाल दिये। माँ खुशी - खुशी चली गयी। अपने और माँ के वार्तालाप के बारे में हेमंत सोच ही रहा था कि वसंत और वर्षा उसके कमरे में आ गए।

"ये वसंत - सेना यहाँ क्यों आई है भाई ?" हमेशा की तरह हेमंत ने वसंत को छेड़ा। बचपन से ही वसंत अपने छोटे भाई - बहनों की टोली का सरदार बना घूमता था। तब हेमंत ने ही उसे चिढ़ाने के लिए टोली और उनके सरदार को ये नाम दिया था। वसंत थोड़ा चिढ़ जाता था क्योंकि एक विख्यात संस्कृत नाटक "मृच्छकटिकम" की नायिका का नाम वसंतसेना था और खुद की तुलना एक नायिका से होते देख वसंत को गुस्सा आना स्वाभाविक होता था!

"भैया, मज़ाक नहीं। हम ज़रूरी बातें करने आए हैं " वसंत ने कहा।

"मेरा बायोडाटा ठीक से नहीं बन पा रहा होगा तुम लोगों से ! अरे, कुछ अच्छाई दिखती भी है अपने भाई में ?" हेमंत का अब भी चुहल करने का मन था।

"भैया, पहले सुनो तो वसंत भैया की बात ...." वर्षा बोली। दोनों काफी गंभीर दिख रहे थे।

"हाँ भैया ! आप एक अच्छा सा रिश्ता देख कर जल्दी से हाँ कर दो न। मेरे लिए भी लाइन क्लियर हो जाएगी ।" वसंत ने मनुहार की।

"ओ, हो.... तो ये बात है ! तो मेरे भाई तू पहले कर ले शादी, सब खुश हो जायेंगे !" हेमंत ने हँसते हुए कहा।

"ओफ्फो ! आप दोनों सुनो ध्यान से ...." वर्षा अधीरता से बोली, " बात ये है कि वसंत भैया अपने कॉलेज की सहपाठी श्रीलता से विवाह करना चाहते हैं। श्रीलता तमिल ब्राह्मण परिवार से है। उसके मम्मी - पापा हमारे मम्मी - पापा से मिलना चाहते हैं...."

"और हमारे यहाँ आपकी शादी हुई न हो और आपका छोटा भाई विजातीय विवाह करने की इच्छा रखता हो तो सोचो कितना बड़ा धमाका हो जाएगा घर में !" वसंत ने बात पूरी की।

"ओ हो हो...., तो ये बात है ....! बड़े छुपेरुस्तम निकले वसंत - सेना के सरदार !..., हममम.... तभी शाम को मेरीज मार्केट में बड़े भाई की बोली बढ़-चढ़ कर लगाई जा रही थी, हुंह ?" हेमंत के मुख पर अब भी स्मित पसरा हुआ था।

"पर भैया, सीरियसली, आपकी शादी पहले होनी चाहिए ...." वर्षा मनाते हुए बोली।

"श्रीलता के लिए माँ - पापा से बात करने के लिए आपकी हिम्मत और साथ चाहिए भैया। अभी श्रीलता को उसकी कंपनी छः महीनों की ट्रेनिंग के लिए जर्मनी भेज रही है, तो मैं उसके मम्मी - पापा को उतने समय के लिए आसानी से टाल सकता हूँ।"

"और इस बीच प्लीज़ आप शादी के लिए हाँ कर दो.... एक बार आपकी शादी हो जाये तो अपनी भाभी ही वसंत भैया के लिए सबको मना लेगी !" वर्षा का मनाना जारी था।

"हूं.... तो वसंत - सेना इस बार पूरी तैयारी से आई है !.... और ये क्या ! अभी मेरी शादी दूर - दूर तक नहीं दिख रही, और तुम लोगों ने ये 'अपनी भाभी' को अपने पाले में भी कर लिया !"

वर्षा ने चहकते हुए कहा, "भैया, आपका बायो डाटा भी तैयार कर दिया है हमने ! देखो !"

हेमंत ने देखकर अपने हिसाब से उसमें बदलाव किये। उसे पढ़ी लिखी, यदि आवश्यकता पड़े या उसकी इच्छा हो तो नौकरी कर सकने में सक्षम, पारिवारिक मूल्यों को महत्व देने वाली शांत और मृदुभाषी जीवन संगिनी चाहिए थी। रूप और संपन्नता को वरीयता नहीं थी। कहीं न कहीं अपनी पत्नी के रूप में वह अपनी माँ की ही प्रतिछाया चाहता था।

भाई - बहन संतुष्ट होकर चले गए। हेमंत सोचने को बाध्य हो गया कि उसकी शादी अभी कहीं तय भी नहीं हुई थी और ये दोनों उस अपरिचित लड़की से कितनी उम्मीदें लगा बैठे थे ! उसकी भावी पत्नी से तो भविष्य में जाने - अनजाने सभी ने अपेक्षाएँ रखनी थीं ! यही बात थी जिससे हेमंत को डर लगता था। संयुक्त परिवार में रहना आसान नहीं रहता। कई बार अपनी महत्वाकांक्षाओं को दबाना पड़ता है। व्यक्तिगत हितों को परे रखना पड़ता है। चूंकि हेमंत अपने भाइयों में बड़ा था तो उसकी पत्नी को एक आदर्श बहू का उदाहरण बनना अनिवार्य था। यह एक अलिखित नियम था जिसका पालन लगभग सभी संयुक्त परिवारों में होता ही है। हेमंत की माँ ही जीता - जागता उदाहरण थी। अपने समय के सर्वोच्च महिला महाविद्यालय से हेमंत की माँ अर्थशास्त्र में स्नातकोत्तर थी। परंतु विवाह के बाद उनकी प्राध्यापिका बनने की महत्वकांक्षा मन में ही दब कर रह गयी। परिवार, ससुराल, रिश्तेदार, सास – ससुर आदि का ध्यान रखते - रखते अब वह स्वयं सास बनने की दहलीज़ पर आ खड़ी थी। इसके विपरीत चाची माँ से दो वर्ष बाद परिवार में आई थीं। उन्होने माँ के अनुभवों से सीख लेते हुए अपने शौक और रुचियों का गला नहीं घोंटा। संयुक्त परिवार में वह आयीं अवश्य, पर अपनी पहचान नहीं खोने दी। परिणाम यह था कि आज उनका अपना बुटीक था और बेकिंग, कुकिंग की क्लासेस भी चलाती थीं।

जबसे वसंत और श्रीलता का पता चला था, हेमंत को स्वयं की शादी के लिए और भी दबाव का अनुभव हो रहा था। वह ये सोच के भी आशंकित हो रहा था कि मेट्रीमोनि से जीवनसाथी का चुनाव करने का निर्णय ठीक था या नहीं ! हालाँकि इस बात का भी क्या आश्वासन था कि रिश्तेदारी में से जिन रिश्तों की चर्चा हो रही थी, उनमें से एक का चुनाव करना सही ही साबित

होता ! यही सब सोचते हुए हेमंत के दिन - रात ऊहापोह में बीत रहे थे। उसका बायो डाटा तो भेज दिया गया था ही।

लगभग एक सप्ताह के बाद एक दिन जब हेमंत ऑफिस से घर आया तब चाय - नाश्ते के साथ चर्चा करने के लिए आठ - दस रिश्तों के बायो डाटा भी थे जो कुछ दिनों के अंतराल में आए थे। साथ ही में बुआ दादी और दादी के द्वारा सुझाए हुए रिश्तों का उल्लेख भी हो ही रहा था। चाची, माँ और वर्षा डाइनिंग टेबल के इर्द - गिर्द जमे हुए थे ! थोड़ी ही देर में दोनों छोटे भाई भी जुड़ गए। घर के बड़े पुरुष वर्ग हमेशा की तरह तटस्थ थे - दोनों दादियाँ पर्यवेक्षक की भूमिका में बहुत खुश थीं।

हेमंत के आश्चर्य का ठिकाना नहीं था, जब उसने ध्यान दिया कि सभी महिलाएँ केवल फोटो देखकर ही लड़की का रहन सहन, परिवार, मोहल्ला, रिश्तेदार और भविष्य में उसका आचरण कैसा रहेगा, इस पर अपना निर्णय सुना रहीं थीं ! फिर किसके पास कितना बैंक बेलेन्स होगा, कौन कितना खर्च करने का माद्दा रखता है, इन सब की भी चर्चा हो रही थी। अभी भी रिश्तेदारी वाले रिश्तों का पलड़ा भारी था - कारण सिर्फ इतना था कि उन परिवारों की परोक्ष या अपरोक्ष रूप से अधिक जानकारी थी और बुज़ुर्ग महिलाओं को मोटा दहेज मिल सकने की उम्मीद ज़्यादा यथार्थवादी लग रही थी। मजे की बात ये थी कि दादी और बुआ दादी अपने बताए रिश्तों की “ गारंटी ” तक लेने को तैयार थे ! इतना विश्वास था उन्हें अपनी पसंद पर !

हेमंत मंत्रमुग्ध होकर ये दृश्य देख रहा था। उसकी बोली लग रही थी। उसका व्यक्तित्व, नौकरी, खानदान, ज़मीन - जायज़ाद आदि का आकलन करके एक ‘मूल्य’ तय हुआ था। उसी कसौटी पर रिश्ते रखकर परखे जा रहे थे। शर्मा खानदान दहेज लोलुप नहीं था पर समाज में एक हैसियत भी तो कोई चीज़ है ! एकदम से रूखी - सूखी शादी तो नहीं कर सकते थे ! आखिर हेमंत के चाचा के बाद हेमंत की ही बारात निकलनी थी।

उसने गौर से माँ को देखा। माँ चर्चा का भाग होते हुए भी मानों वहाँ नहीं थी। बस, हाँ, हूँ, कर रही थी। वह इतनी भावातिरेक हो रही थी कि पल - पल

मुस्कुरा रही थी या चश्मा हटाकर आँचल के कोने से अपनी सजल आँखें पोंछ रही थी। वह तो इतने भर से भावुक हो गयी थी कि बेटा शादी के लिए मान गया है और टेबल पर दस - पंद्रह रिश्तों की बात हो रही है।

हेमंत को अपनी ओर देखते हुए देख कर माँ पुलकित होकर बोली,"देख बेटा, ये सारे फोटो देख,.... तुझे इसमें कौन सी पसंद है ?"

"जो आपको पसंद हो माँ !" हेमंत ने कहा।

वर्षा बात काटते हुए बोली, "भैया, ज़्यादा आदर्शवादी, आज्ञाकारी, सीधे - सादे पुत्र न बनो। जल्दी से बताओ न !"

सभी तो एक जैसी लग रहीं थीं। हल्का मुस्कुराता हुआ चेहरा, सुंदर सी साड़ी, लहराते बाल, मेकअप और बाकी फोटोग्राफर की कलाकारी ! दादी और बुआ दादी के बताए हुए रिश्ते वाली लड़कियों के भी फोटो मँगवा लिए गए थे। कोई भी ऐसी नहीं थी जिसे फोटो के आधार पर कम आँका जाय। पर महिलाओं की खोजी नज़र होती है। सबका अच्छे से विश्लेषण किया गया। नाक मोटी है, मेकअप ज़्यादा है, नकली पलकें लगायीं हैं, साड़ी में पता नहीं लग रहा - नहीं तो ये ज़रूर मोटी है, लिखी उम्र से ज़्यादा लग रही है - भैया से बड़ी लगेगी....!

हेमंत को समझ आया कि जैसा सोचा था, समस्या उससे ज़्यादा विकट है। उसने वर्षा से एक कप कड़क चाय लाने को कहा और सारे फोटुओं के साथ उनकी शैक्षणिक योग्यताओं आदि को देखने लगा।

बुआ दादी और दादी को अब पूरा विश्वास हो गया था कि इस बार तो बात बन ही जाएगी। वे दोनों तो एक कदम आगे, विवाह की तैयारियों के बारे में चर्चा करने में जुट गयी थीं। ताश की गड्डी की तरह फोटोग्राफ़्स एक हाथ से दूसरे हाथ जा रहे थे। पापा, चाचा, भाई आदि भी अब अपनी राय रख रहे थे। अंत में एक फोटो सब को दिखलाते हुए हेमंत ने अपना फैसला सुना दिया।

परिवार वाले स्तब्ध भी थे, खुश भी थे ! उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था कि वास्तव में हेमंत को कोई लड़की पसंद आ गयी है !

"मैं इस लड़की से एक बार मिलना चाहता हूँ, उसके बाद ही फाइनल करूँगा।" हेमंत ने अपना फैसला सुनाया।

"पर बेटा, जो तुम्हें पसंद है वही हमारी पसंद है। हम इसके घर वालों से बात चलाते हैं न...." हेमंत से उसके पापा ने कहा।

"नहीं पापा। एक बार तो मिलूँगा।"

"अरे, क्यों .... ?! क्या होगा मिलकर ? दस मिनट में क्या समझ आएगा? हम बड़ों को करने दो हमारा काम।" चाचा बोले।

"और क्या ! बाबू, वैसे भी तो इसका परिवार ठीकठाक सा ही है। इससे भी अच्छे रिश्ते हैं बाबू, इन्हें भी तो देख, मिल !" बुआ दादी ने राय दी।

"मिल ले बेटा इस लड़की से। पर क्या उसके माँ बाप तैयार होंगे इसके लिए ?" माँ ने कहा।

"अंजान लड़की से थोड़ी सी देर मिलकर क्या समझ आएगा बेटा ? बताओ तो भला.... ! उससे अच्छा तो वो तुम्हारी कानपुर वाली मामी के मायके वाली लड़की से या तुम्हारी चाची की छोटी बहन की बेटी से .... इनसे मिल लो। ये सब तो घर की सी ही हैं। संस्कारशील भी होंगी ही !" बुआ दादी की अप्रसन्नता उनके शब्दों में झलक रही थी। वर्षा, वसंत और सचिन अलग ही राग अलाप रहे थे।

"भैया, बस एक ही पसंद आई ....?" वर्षा ने पूछा।

"हाँ, कम से कम दो - तीन तो शॉर्ट लिस्ट करो भैया" वसंत को बहुत चिंता थी कि कैसे भी करके भैया अब पीछे न हटे।

"सही है। चोईस भी रहेगी...." सचिन बोला।

हेमंत को गुस्सा आ गया। गुस्से में ही बोला, "चुप रहो सब लोग। मुझे पता है, मैं क्या कर रहा हूँ !"

"तुम सब भैया के पीछे मत पड़ा करो। उसे पता है क्या करना है।" माँ ने हेमंत के भाई - बहन को डपट लगाई। अपरोक्ष रूप से माँ ने घर के बाकी

बड़े सदस्यों को भी समझा दिया था कि अनावश्यक रूप से इस नाज़ुक मामले में जल्दबाज़ी न की जाए। थोड़ा सब्र रखना चाहिए सबको।

जब घर में सब कुछ सामान्य हो गया तब हेमंत के पापा ने ग्रीष्मा के पापा से बात की। बातचीत बहुत ही सौहाद्रपूर्ण हुई। बातें पापा कर रहे थे परंतु दूसरे छोर से जो भी बातें छन - छन कर सुनाई दे रहीं थीं, उन्हें सुनने के लिए हेमंत के खानदान के समस्त सदस्यों के कान चुस्ती से लगे हुए थे ! हेमंत स्वयं सारा वार्तालाप सुनना चाहता था पर अपना उतावलापन नहीं दिखाना चाहता था।

जब पापा ने फोन रखा तो उनके चेहरे पर संतोष झलक रहा था। माँ तो विभोर हो गयी थी, इतनी कि मानो रिश्ता पक्का ही हो गया हो ! वसंत ने भी राहत की सांस ली कि चलो भाई की शादी की दिशा में कदम तो बढ़े ! श्रीलता से विवाह का उसका सपना साकार होता नज़र आया। घर में चारों ओर खुशी का वातावरण था। बस बुआ दादी को रास नहीं आ रहा था। भला अखबार में इश्तेहार देकर और फिर फोन पर बात करके रिश्ता तय होता है ? अरे, लड़की को देखना - दिखलाना ही नहीं हुआ तो रिश्ता क्या सोच कर तय करना ? लड़की के घर जाकर लड़की देखो तो घर का रहन - सहन, खान - पान ,पैसा, जायदाद आदि का अंदाज़ हो पता है। ये क्या बात हुई जो पहले लड़का-लड़की मिलेंगे ! आजकल की नयी पीढ़ी का दिमाग खराब है। और इनके माँ-बाप भी इनकी ही हाँ में हाँ मिलाते रहते हैं !

उनसे रहा न गया। परोक्ष या अपरोक्ष रूप से अपनी नाखुशी अपने भाई-भाभी पर व्यक्त कर ही दी। हेमंत की शादी की बात आगे बढ़ रही थी इसलिए दादी खुश तो थी, पर थी तो वह भी पुरानी विचारधारा की ! अतः वह भी बुआ दादी की बातों में सहमति जताने लगी। हमेशा की तरह दादाजी ने उन दोनों महिलाओं को काफी देर समझाया कि समय के साथ सबको बदलना चाहिए, यही संसार का नियम है।

"लेकिन ग्रीष्मा ?....ये कैसा नाम हुआ ? गरमी का मौसम ? नाम से ही गरम दिमाग़ वाली लग रही है।" बुआ दादी का मुँह फुलाना जारी था।

ग्रीष्मा !

हेमंत को सबसे पहले ये नाम ही तो पसंद आया था। इतने सारे नामों में यही नाम विशिष्ट था जिसने हेमंत का ध्यान अपनी ओर खींचा था। उसके नाम के मौसम से बिलकुल उलट मौसम को बताने वाला !

"हाँ, देखो तो, माँ स्कूल टीचर है। पापा पुलिस में हैं.... और बताओ भला !, फिर भी सरकारी बंगले में रहते हैं ! अरे, इनकी तो कई कोठियाँ होनी चाहिए थीं ! पुलिस वालों जैसा रौब तो ज़रा नहीं लग रहा....।" हेमंत की दादी ने भी अपना आकलन करके फैसला सुना दिया।

"ईमानदार लोग हैं इसलिए ऊपरी कमाई नहीं है !" दादाजी ने हँसकर कहा।

"और लो, लड़की की दो बहनें ही बहनें हैं। दहेज तो भूल ही जाओ....।" बुआ दादी के मन का दर्द सामने आ गया।

"अरी बहना !, उन्होंनें अपनी बेटियों को आत्मनिर्भर बनाया है। और तुम्हारा पोता हीरा है हीरा। तुम उसकी दहेज में बोली लगाने वाली थी ?" दादाजी ने अपनी बहन को समझाईश दी।

"पता नहीं ....ये तो अब समय ही बताएगा कि ये फैसला ठीक है या नहीं।" हेमंत की दादी बोली। बुआ दादी ने भी सहमति में सिर हिलाया।

समय !

समय ही तो नहीं कट रहा था हेमंत का ! वह ग्रीष्मा से मिलना चाह रहा था। उस दिन के बाद ग्रीष्मा के और हेमंत के पिता परस्पर दो - तीन बार और बात कर चुके थे। बातों के सुर से लगता था कि दोनों ही पिता अनौपचारिक रूप से बातें करने लगे थे। आखिर ये तय हुआ कि हेमंत और ग्रीष्मा एक बार मिल लें। उसी सप्ताह शुक्रवार को मिलने की बात पक्की की गयी। इस दिन के लिए दोनों के पिता सहमत थे। दोनों को एक दूसरे के मोबाइल नंबर भी औपचारिक रूप से दे दिये गए। हालांकि दोनों के ही बाया डाटा में एक दूसरे

के नंबर तो मिल ही सकते थे फिर भी इस मुलाक़ात को 'औपचारिक' बनाने के लिए उन दोनों के नंबरों का आदान - प्रदान दोनों के पिता कर रहे थे !

शनैः शनैः वह दिन भी आया जब मिलने का स्थान और निश्चित समय तय करने के लिए हेमंत ने ग्रीष्मा से बात की। पहली बार में ही उसे बातें करते हुए सहजता अनुभव हो रही थी। लेकिन जितनी देर हेमंत बात कर रहा था, उसके भाई - बहन घेरा बनाकर कान गड़ाये खड़े थे। दोनों दादियाँ, माँ तथा चाची भी किसी न किसी बहाने आस - पास ही मंढरा रही थीं। स्पष्ट ही था, हेमंत कितनी देर बात करता, और क्या - क्या बात करता ! बस औपचारिकतापूर्ण बात पूरी करके उसने फोन रख दिया। जैसा कि सब लोग उत्सुक थे, उतनी जानकारी भी सबको दे दी कि किस मॉल में किस दिन कितने बजे मिलने का तय हुआ है।

"पर भैया, भाभी को पहचानोगे कैसे ?" वर्षा के पास हमेशा ही कुछ न कुछ सवाल होते ही थे।

"बुद्धू, बायो डाटा के साथ फोटो है तो !" वसंत ने समझाइश दी।

"अरे फोटो में तो लड़की लिपि - पुती रहती है। असल में तो वो कुछ और ही दिखतीं हैं।" बुआ दादी की नाखुशी अभी तक कम नहीं हुई थी।

"पर दादी, अभी भी तो भाभी मेकअप करके ही आएगी !" सचिन चहका।

"अरे, थोड़ा धीरज धरो मेरी 'वसंत - सेना' ! और ये क्या भाभी भाभी लगा रखा है ? अभी बस मिलने जा रहा हूँ। हो सकता है बात न भी बने। मुझे वो या उसे मैं ही पसंद न आऊँ ! इसलिए तुम लोग दिमाग़ी घोड़े दौड़ाना बंद करो ...." हेमंत ने कहा।

"अरे हाँ ! मेरे बेटे को कौन न पसंद करेगा भला?" माँ बेटे की नज़र उतारने लगी। "और ये हल्के नीले रंग की शर्ट पहन जाना बाबू। तुझ पे खिलती है।"

“हाँ बेटा ! और तुम इस वसंत - सेना पर ध्यान मत दो। जैसा ठीक लगे, वही करना” चाची ने कहा।

धीरे - धीरे कर वह दिन भी पास आ गया। शुक्रवार की पिछली रात को हेमंत को नींद नहीं आ रही थी। क्या बात करेगा, कैसे शुरू करेगा, और क्या जानना चाहता है वह ग्रीष्मा के बारे में, जो बायो डाटा में नहीं है !, वह क्या पूछेगी, उसकी भी तो कुछ अपेक्षाएँ होंगी ! कॉलेज लाइफ से लेकर ऑफिस तक हेमंत जाने कितनी लड़कियों से, महिलाओं से बात कर चुका था, करता रहता था काम के सिलसिले में, स्वयं उसकी प्रोजेक्ट टीम में तीन लड़कियाँ थीं; पर यह स्थिति थोड़ी भिन्न थी।

उसने फोटो देखी थी। फोन पर बात की थी। मन तो था कि वीडिओ कॉल करले ! पर उसने अपने उतावले मन की लगाम कसी। क्या पता ग्रीष्मा को ऐसा करना पसंद न आए ! तो.... !! उसने तय किया कि कल वह बिना किसी पूर्वाग्रह और अपेक्षाओं के मिलने जाएगा। हो सकता है ग्रीष्मा में उसे अपनी जीवन संगिनी न नज़र आए, ठीक वैसे ही, वह भी रिजेक्ट किया जा सकता है ! अतः मुलाक़ात के बाद दोनों जो भी निर्णय लेंगे, उसे पूरे सम्मान के साथ स्वीकारना होगा।

ग्रीष्मा किसी महंगे पाँच सितारा रेस्तरों में नहीं बल्कि किसी व्यस्त सी जगह पर मॉल में साधारण से रेस्तरों में मिलना चाह रही थी। ऐसी जगह जहाँ से उसे मेट्रो आसानी से मिल सके। हेमंत को पहले यह प्रस्ताव विचित्र लगा था पर वो मान गया था। वे लोग शाम को सात बजे तक मिलने वाले थे - दोनों के ऑफिस टाइमिंग्स को सूट कर रहा था; ऐसे में रात हो जाने की स्थिति में ग्रीष्मा के लिए यही उपयुक्त होता कि वे लोग किसी ऐसी जगह, जैसे मॉल, में मिलें जहाँ से मेट्रो स्टेशन पास हो, ताकि वह घर सही समय पर पहुँच जाए। हेमंत को समझ आया कि ग्रीष्मा की सुविधा के लिए यही ठीक था। यद्यपि हेमंत ने उसे कार से घर तक छोड़ देने का आग्रह भी किया था परंतु ग्रीष्मा ने स- सम्मान मना कर दिया था।

अगले दिन शुक्रवार को हेमंत का मन ऑफिस में लग ही नहीं रहा था। ऑफिस से सीधे ही वह मॉल पहुँचने वाला था। घर में परिवार के सामने तो हेमंत बड़ा शांत और धैर्य वाला बन रहा था पर सच में वह असमंजस में था कि वे दोनों एक दूसरे को पहचानेंगे कैसे ! आखिर उससे रहा नहीं गया और फोन कर दिया ग्रीष्मा को। तब ग्रीष्मा ने मॉल की तीसरी मंजिल पर स्थित फूड कोर्ट में एक लोकप्रिय कॉफी शॉप पर मिलने का सुझाव दिया। हेमंत ने तत्काल ही सुझाव मान लिया। वह उसकी आवाज़ सुनकर ही विभोर हो गया था। ग्रीष्मा की शीतलता देने वाली आवाज़, शब्दों के बीच मुस्कुराहट का अनुभव देने वाली थी।

"लेकिन हम एक दूसरे को पहचानेंगे कैसे ? आय मीन, फोटो तो देखी है फिर भी ...." ग्रीष्मा ने वाक्य बीच में ही छोड़ दिया। यही तो हेमंत भी जानना चाह रहा था ! उसे यह जान कर और भी ख़ुशी हुई कि ग्रीष्मा भी उसी की तरह असमंजस थी !

"आसान है, मैंने हल्के नीले रंग की शर्ट पहन रखी है।" खुश होकर हेमंत बोला।

"वाओ, ग्रेट ! दस में से आठ लड़कों की पसंद हल्का नीला या सफ़ेद रंग की शर्ट ही होती है.... !" वह खिलखिला कर हँसी। हेमंत के चेहरे पर भी मुस्कान छा गयी।

ग्रीष्मा ने बात पूरी की "हाँ, लेकिन कॉफी शॉप में या आस - पास हल्के नीले रंग की शर्ट पहने हुए व्यक्ति कम ही होंगे, है न....?"

हेमंत सहमति में कुछ कहता, वह फिर बोल पड़ी "लेकिन मैंने बहुत ही बोरिंग भूरे रंग का सलवार सूट पहना है। और मैंने स्पोर्ट्स शूज पहन रखें हैं।"

"स्पोर्ट्स शूज़ ....?" हेमंत हैरान था।

"अभी जाना है। मीटिंग का समय हो रहा है। शाम को बताती हूँ जूतों का राज़.... !" हँसते हुए ग्रीष्मा ने फोन रख दिया।

बहुत समय तक हेमंत ग्रीष्मा से हुई बातों पर गौर करता रहा। शांत, निश्छल वाणी, हँसना, खिलखिलाना, कोई अनावश्यक आवरण या बनावटीपन नहीं। जितना सोचता, हेमंत को उतनी ही सुख की अनुभूति होने लगी। एक बार फिर हेमंत ने स्वयं को लताड़ा - अरे बावले ! ख्याली पुलाव बनाना बंद कर और अपने काम पर 'फोकस' कर ! जैसे - तैसे ऑफिस में समय काटा। शाम होते ही हेमंत मॉल पहुँच गया। मॉल में हमेशा की तरह भीड़ थी। उतावलेपन में वह जल्दी पहुँच गया था। साढ़े छह बजे थे। वह फूड कोर्ट वाली तीसरी मंज़िल चला गया। उसने सब ओर नज़रें दौड़ाई, उसे कोई लड़की भूरे रंग की सलवार कमीज़ और स्पोर्ट्स शूज पहने नहीं दिखी। उसी मंज़िल पर जो शोरूम थे उन्हें बेमन से देखकर हेमंत ने थोड़ा और समय काटा। सात बज चुके थे और ग्रीष्मा का कोई पता न था। अब हेमंत कॉफी शॉप के सामने ही टहलने लगा। रह - रह कर मोबाइल भी देखता रहता कि कोई मेसेज तो नहीं ! अब वह अधीर होने लगा था। उसे क्यों देर हो गयी ? सब ठीक तो है ? शायद यहाँ नहीं आना चाहिए था, उसके घर के ही आस - पास की कोई जगह पर चले जाते तो ठीक रहता ! उसने फोन किया।

"ओह, आई एम सो सॉरी ! मुझे ही फोन कर देना चाहिए था। मैं बस दस मिनट में पहुँच रही हूँ।" ग्रीष्मा की आवाज़ में खेद था।

"मैं कब से यहाँ आवारा सा कॉफी शॉप के सामने खड़ा हूँ, घूम रहा हूँ.... एमलेस !" हेमंत की आवाज़ यथा संभव सधी हुई थी पर उसमें रूठे हुए का जो पुट था, वह ग्रीष्मा से छिप नहीं पाया।

"ओह ! मेरी वजह से आपको बाहर खड़ा रहना पड़ा। मुझे खेद है। हेमंत, आप अंदर बैठ जाइये। मुझे टेबल नंबर मेसेज कर देना, मैं पहुँच ही रही हूँ। अच्छा, बाय !" पार्श्व में मेट्रो की चिरपरिचित वॉइसओवर आवाज़ लोगों को निर्देश दे रही थी।

हेमंत को सुझाव अच्छा लगा। वह शॉप के अंदर बैठ गया और टेबल नंबर ग्रीष्मा को मेसेज कर दिया। उसने गौर किया, कितनी शांति से बात कर रही थी ! एक वो ही था जो अधीर हो रहा था। उसे खुद पर गुस्सा आने लगा।

कितना बचपना था उसमें, जो प्रतीक्षा करते - करते वह ग्रीष्मा से शिकायत भी कर बैठा !

पर हम शिकायत भी तो उससे करते हैं जहाँ हमें अपनापन महसूस होता है ! हेमंत ने खुद को समझाया। उसके चेहरे पर अनायास ही मुस्कान खेल गयी। वह तत्परता से उस लड़की की प्रतीक्षा करने लगा जो भूरे रंग का सलवार कमीज़ पहनी हो और स्पोर्ट्स शूज़ पहने हुए हो !

थोड़ी देर में वह सामने आ खड़ी हुई। हेमंत हड़बड़ा गया। फिर संयत होकर अभिवादन किया और ग्रीष्मा के लिए एक कुर्सी बाहर खींची। ग्रीष्मा बैठ गयी। उसका चेहरा स्वाभाविक रूप से मुस्कुराता हुआ सा प्रतीत होता था। उसने देर से आने के लिए एक बार फिर खेद प्रकट किया। हेमंत भी अपना रूठ जाना भूला नहीं था। वह झेंप गया। उसने ग्रीष्मा से आग्रह किया कि वह बार - बार न कहे इस बारे में। इस बीच वेटर पानी और मेनू कार्ड रख गया। हेमंत को समझ आया कि वह तो इस कॉफी शॉप के वातानुकूलित वातावरण में बैठा था, परन्तु ग्रीष्मा अभी भाग - दौड़ करके पहुँची थी। अतः हेमंत ने तय किया था कि वह उसे और असहज नहीं होने देगा - पहले ही देर से आने की वजह से ग्रीष्मा खेद महसूस कर रही थी। हेमंत ने एक प्याले में पानी डालकर ग्रीष्मा के सामने रखा।

ग्रीष्मा ने सहर्ष पानी लेते हुए कहा, "दरअसल मैंने यहाँ आने के लिए ऑफिस से हाफ डे भी ले लिया था कि घर जाकर चेंज करके यहाँ आ सकूँ, और मैं समय पर भी पहुँच जाती ! लेकिन ऑफिस जाकर पता चला कि मेरी ही एक कुलीग घर में कुछ आवश्यक काम आ जाने के कारण नहीं आई थी। अब चूंकि एक रिपोर्ट आज ही शाम को जानी थी, तो बॉस ने उसके हिस्से का काम भी मुझे दे दिया ! अभी ऑफिस से सीधे यहीं आ रही हूँ; घर जाने का समय ही नहीं मिला !"

"कोई बात नहीं। ऑफिस में कभी भी इमरजेंसी बन जाती है ...." हेमंत उसे सहज करने के लिए बोला। वह स्वयं सहजता का अनुभव कर रहा था इस लड़की के साथ ! बात करते - करते ग्रीष्मा ने ध्यान दिया, हेमंत उसके जूते

देख रहा है। उसने अपने पाँव धीमे से कुर्सी के नीचे खींचते हुए कहा, " मेरा काम मार्केटिंग में भी है, तो थोड़ी ज़्यादा ही भाग दौड़ हो जाती है कभी - कभी। मैं ज़्यादातर मेट्रो से ही आना जाना पसंद करती हूँ। ऐसे में ये स्पोर्ट्स वाले जूते बहुत आरामदायक होते हैं। हेमंत, आपको अजीब लगा न जब मैंने फोन पर ये बताया था ?"

"हाँ, पहले अजीब तो लगा था। लेकिन अब मैं मानता हूँ कि जिसमें सब से ज़्यादा सुविधा लगे, वही करना चाहिए" हेमंत बोला।

"वो तो घर जाने का समय नहीं मिला, नहीं तो मैं भी थोड़ा अच्छे से तैयार हो कर आती !" ग्रीष्मा ने भोलेपन से कहा। कहते - कहते उसके कपोल रक्ताभ हो चले। वह अपने आप को संयत करने के लिए माथे पर ढलकी लट को कान के पीछे दबाने का प्रयास करने लगी।

"ऐसे भी ग्रीष्मा, आप अच्छी दिख रही हो !" हेमंत के कहने पर ग्रीष्मा की पलकें झुक गयीं। जब उसने सिर उठाया तो पाया कि हेमंत अपलक उसे ही निहार रहा था। सच में साँवली सलोनी ग्रीष्मा बिना मेकअप के भी आकर्षक दिख रही थी, खास कर के उसकी बोलती हुई आँखें ! जल्दी ही ग्रीष्मा ने अपनेआप को संभालते हुए और हेमंत का ध्यान अपनी ओर से हटाने के लिए हेमंत को वार्तालाप का सूत्र दिया, "आपके घर पर सब कैसे हैं ? "

हेमंत स्वयं ऊहापोह में था कि बातचीत कैसे शुरू की जाय ? किस विषय पे बात करूँ ? ग्रीष्मा ने यह समस्या हल कर दी थी।

"मेरे घर पर दादाजी, दो दादियाँ...." हेमंत ने बोलना शुरू ही किया था कि ग्रीष्मा के होठों पर मुस्कान बिखर गयी। हेमंत ने अपनी बात पर गौर किया तो उसे गलती का अहसास हुआ और खुद भी मुस्कुराए बिना नहीं रह पाया। फिर गलती सुधारते हुए बोला, "दरअसल मेरे दादाजी, दादी और बुआ दादी, चाचाजी का परिवार, हम सब साथ रहते हैं.... !"

"हमारा भी संयुक्त परिवार है। घर के सारे बड़े, छोटे साथ रहें तो कितना अच्छा लगता है !" ग्रीष्मा ने कहा तो हेमंत बड़ा आश्वस्त हुआ। वह यही चाहता था कि उसका विवाह जिससे भी तय हो, उसकी भावी पत्नी को संयुक्त

परिवार से समस्या नहीं होनी चाहिए। यहाँ तो ग्रीष्मा स्वयं संयुक्त परिवार से थी ! हेमंत ने बड़े चाव के साथ अपने बड़े से परिवार के बारे में बताया। वेटर कॉफी और सेंडविच रखकर गया था।

अब ग्रीष्मा की बारी थी। उससे छोटी बहन मेघा सी.ए. थी। सबसे छोटी बहन बरखा फ़ैशन डिजाइनिंग का कोर्स कर रही थी। घर में दादी थीं, तीन साल पहले दादाजी का देहावसान हो चुका था। माँ जनकपुरी में एक प्रतिष्ठित गर्ल्स स्कूल की वाइस प्रिन्सिपल थी। ग्रीष्मा के ताऊजी बी. एस. एफ. में थे लेकिन उनका भी परिवार दिल्ली में ही था। इसी साल ग्रीष्मा के पापा का स्थानांतरण दिल्ली में हुआ था और वे लोग सरकारी मकान में रहने चले गए थे क्योंकि इससे पापा का, मेघा का और स्वयं ग्रीष्मा का ऑफिस पास पड़ता था। नहीं तो अभी तक वे लोग ताऊजी के परिवार के साथ ही रहते थे। दोनों परिवार वस्तुतः पैतृक घर में मिलजुल कर रहते थे। कुल मिलाकर एक हँसता-खेलता संयुक्त परिवार था !

हेमंत ने पूछा, "आपके पापा और ताऊजी की जॉब ऐसी है कि बार - बार बदली होती रहती है, तब आप लोगों को बचपन से परेशानी हुई होगी ?"

"अरे नहीं ! शुरू में ताईजी के भैया, जिन्हें हम भी मामा कहते हैं, उन्होंने और मामीजी ने बहुत मदद की। फिर मम्मी और ताईजी ने हिम्मत करके स्कूल में नौकरी करना शुरू की क्योंकि वे दोनों ही चाहती थीं कि हम सब बच्चों की पूरी पढ़ाई एक ही शहर से हो। इन लोगों को देख कर धीरे - धीरे हम सब भाई - बहनों में भी हिम्मत आ गयी !" कॉफी का मग ग्रीष्मा ने दोनों हाथों से पकड़ रखा था। हेमंत को ध्यान आया - उसकी माँ भी ऐसे ही कॉफी मग पकड़ती है ! ये केवल संयोग भी हो सकता था किन्तु क्षण भर के लिए ही सही, हेमंत को अच्छा लगा।

हेमंत को ध्यान से अपनी ओर देखते हुए पाकर ग्रीष्मा झेंप गयी। उसने जल्दी से मग टेबल पर रखते हुए कहा, "आपकी मम्मी एकोनोमिक्स में पी.जी. हैं। मैंने आपके बायो डाटा में पढ़ा था। सच में उस समय इतनी पढ़ाई कर लेना

काबीले तारीफ है। मेरी मम्मी ने तो बहुत बाद में किया था हम बच्चों के होने के बाद !"

"हाँ, है तो !.... पर माँ गृहस्थी में ऐसी फंसी कि अपने लिए कुछ कर ही नहीं पायी।" हेमंत की आवाज़ में कड़वापन था। कुछ इस बात से भी कि यहाँ ग्रीष्मा की माँ काम कर रही थी और कदाचित ज़्यादा प्रतिभा सम्पन्न उसकी माँ मात्र एक गृहणी बन कर रह गयी थी।

"अरे नहीं ! आप माँ को कम आंक रहे हैं...." हेमंत की माँ को 'माँ' कहकर ग्रीष्मा ठिठक गयी। अभी रिश्ता नहीं हुआ है ! ग्रीष्मा ये क्या कर रही है तू ? खुद को मन ही मन डांट लगते हुए उसने बात बनाई....।

".... मेरा मतलब है, आप अपनी माँ को कम कैसे आंक रहें हैं.... ! वन्स इकोनोमिस्ट इज़ आल्वेज़ एन इकोनोमिस्ट ! आपके घर का बजट बहुत ही उम्दा चलता होगा !" ग्रीष्मा के गाल एक बार फिर लाल होते - होते वापस अपनी रंगत में आ गए थे।

सच ही तो था। माँ ने घर खर्च, सब कुछ इतनी कुशलता से वर्षों से संभाल रखा था। पापा की सीमित आय में तीन बच्चों, और तीन बुज़ुर्गों की देखभाल बहुत ही अच्छे से की थी। पूरा बचपन कभी किसी चीज़ के लिए परेशान नहीं हुए वो तीनों भाई - बहन। और तो और जब चाचा का बिज़नेस ठीक से नहीं जमा था तो वो भी माँ से ही सलाह मशविरे करते थे। हेमंत को अपनी माँ के लिए गर्व की अनुभूति होने लगी।

ग्रीष्मा ने अपने बालों की क्लिप खोल कर बालों को फिर से मोड़कर जूड़े की शक्ल में क्लिप से पुनः समेत लिया था। कहीं कोई हड़बड़ी नहीं, असहजता नहीं, कोई झेंप नहीं, कोई बेढंगापन भी नहीं ! हेमंत को उसी क्षण वहाँ उस कॉफी शॉप में बैठना बहुत ही अच्छा लगने लगा। ऐसा लगा कि वह ऐसे ही घंटों बैठा रहे !

"इनफ़ैक्ट मैं आपको सजेस्ट करूँगी कि आप उन्हें शेयर्स, इनवेस्टमेंट पोलिसीज़ वगैरा में रुचि लेने को कहेंगे तो वह खुशी से कर लेंगी। इससे उन्हें

इस काम में आनंद भी आयेगा और अपने ज्ञान का सही उपयोग भी कर पाएँगी।"

हेमंत ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। वह मंत्रमुग्ध सुनता रहा। वेटर बिल रख कर गया।

"मैं क्षमा चाहती हूँ यदि मैंने कुछ ज़्यादा बोल दिया हो तो" हेमंत को चुप देख कर वह बोली।

हेमंत बोला नहीं था पर उसके मुख पर स्मित था। फिर मानों जैसे सम्मोहन टूटा हो, वैसे ही चौंक कर बोला, "अरे नहीं क्षमा की क्या बात है। हमने कभी इस विषय पर सोचा ही नहीं था। सच में, माँ रोज़ अखबार का इकोनॉमिक्स वाला हिस्सा बिना भूले पढ़ती है। उन्हें उस पृष्ठ पर होने वाली सारी आर्थिक उठा - पटक पढ़ना, उनका अनालिसिस करना बहुत अच्छा लगता है।" हेमंत ने ध्यान नहीं दिया कि बिल बुक में ग्रीष्मा ने अपना कार्ड रख दिया था।

हेमंत अपने ही उत्साह में बोला जा रहा था, "मैं आज ही माँ से इस बारे में बात करूँगा। सच में ग्रीष्मा, आज ध्यान आ रहा है कि माँ भी बहुत कुछ कर सकती है.... ।"

"और यदि वो चाहें तो अपने विषय की ट्यूशन्स भी ले सकती हैं - केवल पैसे के लिए ही नहीं बल्कि समाज कल्याण के लिए। सच तो यह है कि अपने विषय से फिर से जुड़कर उन्हें अच्छा लगेगा !" ग्रीष्मा ने कहा।

"सच में ग्रीष्मा, जब तुम घर आ जाओगी तब माँ का सच्चा ख़्याल रखने वाला होगा कोई घर में, जो माँ की रुचियों का ध्यान रख सके...." एक सांस में अति उत्साहित होकर हेमंत ने कह दिया।

बेवकूफ़ ! अभी रिश्ता नहीं हुआ है, और तू आप से तुम पर आ गया.... घर पे भी ले आया ! थोड़ा तो काबू में रह ! हेमंत ने स्वयं पर अंकुश लगाया। तभी उसका ध्यान गया कि वेटर बिल बुक उठाने आया है। उसने ग्रीष्मा से कार्ड वापस लेने को कहा पर वह मानी नहीं। वह बोली, "नहीं हेमंत ! बिल

मुझे देने दीजिये। आपने मेरी सब बातों को माना, जैसे मेरे हिसाब से समय और स्थान निर्धारित हुआ। और तो और आपको अनावश्यक इंतज़ार भी करना पड़ा। कम से कम बिल तो मुझे देने दीजिये।" ग्रीष्मा अभी तक हेमंत के उस वाक्य से ऊबरी नहीं थी जब उसने अधिकारपूर्वक ग्रीष्मा से कह दिया था कि जब वह हेमंत के घर हेमंत की माँ का ध्यान रखेगी !

हेमंत बिल वाली बात बेमन से मान गया था। वार्तालाप की दिशा किस ओर जा रही थी, इस पर दोनों का ही नियंत्रण नहीं था परंतु दोनों ही एक दूसरे के साथ सहज हो गए थे। वे दोनों कई सारी बातों पर खुल कर बात कर सक रहे थे, कोई अजीब बातें या एक दूसरे को लज्जास्पद लगे ऐसी कोई भी बात नहीं हुई।

बहुत समय हो गया था, यद्यपि दोनों को ही ऐसा लग रहा था कि कुछ देर और रुका जा सकता है। अंततः ग्रीष्मा ही अपना बैग लेकर उठी और घड़ी देखते हुए बोली, "मुझे चलना चाहिए !"

"अच्छा ठीक है।" हेमंत बेमन से माना, "लेकिन अगली बार स्थान और समय मैं तय करूँगा .... ताकि बिल भरने का सौभाग्य मुझे मिले !" हँसते हुए उसने बात पूरी की।

ग्रीष्मा लजा गयी पर कुछ बोली नहीं। हेमंत ही अपने उतावलेपन को कोसने लगा जो इतनी जल्दी उसने अगली मुलाक़ात के बारे में कह डाला। अपने आप को संयत करते हुए बोला, "सच में काफी देर हो गयी। समय का पता ही नहीं चला। आप अन्यथा न लें तो मैं आपको घर तक छोड़ देता हूँ। आपके पापा से बात कर लेता हूँ कि मैं आपको छोड़ने आ रहा हूँ।"

"अरे नहीं। मैं चली जाऊँगी। डोंट वरी....।"

"फिर भी.... बारिश का भी अंदेशा लग रहा है। मैं छोड़ देता हूँ....।"

"नहीं हेमंत, थैंक यू ! आप एक अच्छे इंसान हैं। मैं चली जाऊँगी....।"

"फिर भी...." हेमंत ग्रीष्मा को अकेले नहीं भेजना चाह रहा था। कुछ अपना सा हाथों से छूट रहा है, ऐसा अनुभव कर रहा था वह। कैसी विचित्र

बात थी कि जब वह अकेली आयी थी तो ठीक था, लेकिन जब अकेली जा रही थी तो हेमंत को सही नहीं लग रहा था !

"आप चिंता न करो। मैं घर पहुँच कर मैसेज कर दूँगी।"

"अच्छा.... !" बुझे मन से हेमंत बोला, "मेट्रो स्टेशन तक तो छोड़ सकता हूँ....?"

ग्रीष्मा खिलखिला कर हँस पड़ी, "मेट्रो स्टेशन यहीं है, जस्ट वॉकिंग डिस्टेन्स ! अच्छा ऐसा करते हैं, मैं मेट्रो बोर्ड होते ही आपको मैसेज कर दूँगी। तब ठीक है ....?"

हेमंत ने बस सिर हिला कर हामी भरी। वे लोग अब मॉल के बाहर आ गए थे। मेट्रो स्टेशन मॉल के पीछे ही था। हेमंत ने कभी गौर ही नहीं किया था। वह हमेशा कार से ही आना - जाना पसंद करता था। चलते - चलते हेमंत से रहा नहीं गया, उसने पूछ ही लिया, "अगली बार कब मिलें हम ?"

ग्रीष्मा के चेहरे पर मुस्कान बिखर गयी। पलकें नीची करके वह बोली, "हेमंत, हमारे रिश्ते की बात हमारे घर के बड़े लोगों ने शुरू की है। उन्हें ही बात आगे बढ़ाने देते हैं। विवाह के बंधन में दो व्यक्तियों के साथ - साथ दो परिवार भी जन्मों के लिए जुड़ जाते हैं। ऐसे में दोनों ही पक्षों में जो अपेक्षाएँ और आशंकाएँ हैं, उन्हें दूर हो जाने देते हैं। फिर उसके बाद ही...."

".... उसके बाद ही फिर मिलने का सोचेंगे, ठीक है !" हेमंत ने मुस्कुरा कर बात पूरी की।

ग्रीष्मा खुश हो गयी। मानो उसके मन का बोझ उतर गया। हेमंत की मुस्कान ने उसे आश्वस्त जो कर दिया था। फिर वह खिलखिला कर बोली, "हमारी आज की मुलाक़ात का रिज़ल्ट जो भी हो, मैंने पहले ही तय कर लिया था कि आज बिल मैं ही पे करूँगी। इसीलिए तो आपके द्वारा सुझाए पाँच सितारा रेस्तरों को मैंने मना कर दिया था ताकि मेरा बिल पर ज़्यादा खर्चा न हो !" खुशी से उसका चेहरा दमक रहा था। हेमंत भी हँसे बिना नहीं रह सका।

मेट्रो स्टेशन आ चुका था। हेमंत ने हाथ हिला कर ग्रीष्मा को विदा किया। वह तब तक खड़ा रहा जब तक वह नज़रों से ओझल न हो गयी। हेमंत उसके मैसेज का इंतज़ार करने लगा। वह भूली नहीं थी। थोड़ी ही देर मे उसका मैसेज आ गया।

हेमंत कार से घर आ गया। उसका अनुमान था कि इतनी ही देर ग्रीष्मा को घर पहुँचने में लगी होगी। ग्रीष्मा उसके बारे में क्या सोच रही होगी यह जानने के लिए हेमंत उत्सुक हो रहा था, अधीरता भी बढ़ रही थी। उसने तय किया कि ग्रीष्मा का घर पहुँचने वाला मैसेज आते ही वह उसे फोन कर देगा !

सच में ग्रीष्मा और हेमंत अपने नाम की प्रकृति से विपरीत स्वभाव वाले थे। ग्रीष्मा शांतचित्त, शीतल, धैर्यवान और सुलझी हुई थी। वहीं हेमंत ऊष्ण स्वभाव का था। जल्दी अधीर हो जाने वाला। हालांकि उसका गुस्सा जल्दी शांत हो जाता था। उसके ऊष्ण चित्त के लिए ग्रीष्मा की शांत, चंचल हँसी आवश्यक थी।

घर पहुँचते ही हेमंत ने कार गेट के बाहर ही रोक दी थी। वह ग्रीष्मा के मैसेज की प्रतीक्षा कर रहा था जो कि अभी तक नहीं आया था ! घर के अंदर जाते ही सब पीछे पड़ जाएंगे, वह क्या जवाब देगा इसी उलझन में था कि हेमंत का फोन बज उठा। ग्रीष्मा का था। हेमंत की खुशी का ठिकाना ही न रहा। वो तो केवल मैसेज पाकर भी खुश हो जाता !

ताबड़तोड़ फोन उठाकर ग्रीष्मा से बात की उसने। अब वह नहीं रुकने वाला था, “ग्रीष्मा, एक दूसरे को समझने के लिए कई साल लग जाते हैं। पर आपसे मुश्किल से एक घंटे मिल कर ही मुझे विश्वास हो गया है कि आप ही मेरी जीवनसाथी हो सकती हो। यदि मैं आपकी उम्मीदों में खरा उतरता हूँ तो मैं अभी आपको प्रपोज़ करता हूँ। क्या आप मुझसे विवाह करोगी?”

ग्रीष्मा चुप थी। कुछ पल बीत गए। एक एक क्षण युगों की भाँति लग रहा था हेमंत को।

“ग्रीष्मा....?” हेमंत ने फिर आवाज़ दी।

“हेमंत, क्या आप अपने पेरेंट्स को मेरे मम्मी - पापा से बात करने के लिए कहेंगे ?”

ग्रीष्मा ने अपरोक्ष रूप से हेमंत के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया था। हेमंत की प्रसन्नता की कोई सीमा न रह गयी थी। उसकी वाणी में अलग ही उत्साह था, “मैं अभी यह खुशखबरी अपने घर पर सबको देता हूँ! पता है, मैं घर कब का पहुँच चुका था पर गेट के बाहर ही अपनी कार में हूँ! आपके फोन का इंतज़ार कर रहा था। बिना आपके मन की बात जाने घर नहीं जाना चाहता था !”

“मुझे आपकी यही बात बहुत अच्छी लगी है कि जो मन में हो वही ज़ुबान पर होता है ! मैं भी अपने घर पर बताती हूँ !” ग्रीष्मा ने हँसते हुए कहा। उसकी आवाज़ हेमंत के कानों को चाँदी की घण्टियों की आवाज़ की तरह लग रही थी।

“ और मुझे तो आपकी सारी बातें अच्छी लगी ।” हेमंत ने हँसते हुए बात पूरी की, “और हाँ, अगली बार मेरे बताए रेस्तरों में जायेंगे। मैं आपको लेने भी आऊँगा, और छोड़ने भी जाऊँगा !”

फोन रखते ही हेमंत कार से निकलकर घर की ओर बढ़ चला। आज वह बहुत खुश था। उसे आशा नहीं थी, कि सब कुछ इतनी जल्दी हो जाएगा। वह ग्रीष्मा के धैर्य, परिपक्वता और बेबाकपन से प्रभावित था। उसे विश्वास हो गया था कि उसकी पसंद को घर में सभी पसंद करेंगे। उसने घंटी बजाई। दरवाजा वसंत ने खोला।

“अरे छोटे, तू तो दरवाजे पर ही बैठा है !” हेमंत जब बहुत खुश होता तो वसंत को प्यार से छोटे क़हता। यह सुनते ही वसंत की खुशी की सीमा ही न रही। भैया को लड़की पसंद आ गयी थी !

हेमंत के हाल में पहुँचते ही सब लोग मानों उमड़ पड़े ! इस बार तो दादाजी, पापा और चाचा भी सब कुछ सुनने को लालायित थे। सबको सारी बातें विस्तार से सुननी थीं। क्या - क्या बातें हुई, क्या खाया, उसने क्या पहना था, बोलचाल में कैसी है.... !

हेमंत ने दोनों हाथ खड़े करके सबको शांत रहने को इशारा किया और बोला, " सब सवालों के जवाब देता हूँ। धीरज रखो सब ! पहले मेरी यह बात सुन लो - मुझे ग्रीष्मा और ग्रीष्मा को मैं पसंद हूँ। अब उसके मम्मी - पापा से बात कर ...."

उसकी बात भी पूरी नहीं हो पायी थी, और भाइयों ने उसे गोद में ही उठा लिया और खुशियाँ मनाने लगे। शर्मा खानदान की महिलाएँ और पुरुष, सभी प्रसन्न थे। घर के लाड़ले का विवाह जो तय होने जा रहा था।

****

दत्तक माँ

"नीरा, जल्दी करो। देर हो रही है।" संदीप ने अपना बैग उठाते हुए कहा।

"मम्मा, टिफ़िन....।" गौरव भागते हुए डाइनिंग हॉल में आया।

"मम्मा मेरा भी दे दो। जल्दी.... !" नेहा अपने बाल पोनी टेल में बांधते हुए बोली।

"हाँ, हाँ .... सबका टिफ़िन रेडी है....। सब पहले अपना नाश्ता पूरा फिनिश करेंगे ! तभी जाने मिलेगा।" नीरा ने अपने बच्चों को संबोधित करके कहा। संदीप ने चाय पी ली थी और अपने टिफ़िन के पैक होने की प्रतीक्षा कर रहा था।

नीरा जल्दी - जल्दी हाथ चला रही थी। काम करते हुए उसका ध्यान खिड़की से बाहर चला जाता था। वहाँ से सामने वाली बिल्डिंग दिखती थी। सुबह के समय प्रायः सभी घरों की बाल्कनियों में एक ही तरह की चहल - पहल दिखती थी। जैसे कोई गमलों में पानी डाल रहा है, कहीं झाड़ू लग रही है, वाशिंग मशीन में कपड़े डाले जा रहे हैं या धुले हुए कपड़े फैलाए जा रहे हैं। कोई यूँ ही बाल्कनी में खड़े होकर सुबह के सूर्यदेव की गर्माहट को अपने मुख पर अनुभव कर रहा है, कोई सुबह की चाय की चुस्कियाँ ले रहा है। घरों से कूकर की सीटियों की आवाज़, चाय के कप खनकने की मधुर ध्वनि, पराठों की सिंकने की सुगंध, पालतू कुत्तों के घूमने जाने के लिए उतावलापन, बच्चों के स्कूल जाने की हड़बड़ी, स्कूल बसों के हॉर्न, पास के पार्क में योगाभ्यास करने वालों की संयुक्त स्वर में ओंकार ध्वनी या लाफ्टर क्लब के लोगों का अनुशासित लाफ्टर ! सुबह का समय सब के लिए व्यस्ततम रहता था। किन्तु हमेशा की तरह इन सबसे अलग नीरा का ध्यान उनके घर के सामने वाली बिल्डिंग के एक घर की बाल्कनी की ओर गया। वही सूनापन, तार पर लटके वही कपड़े, मुरझाये हुए पौधे, खिड़की का एक पल्ला टूटा हुआ, लटका हुआ।

देखकर मन में अच्छा नहीं लगा नीरा को। प्रतिदिन ऐसा ही दृश्य रहता था। अवश्य घर के स्वामी कहीं लम्बी छुट्टी पर गए हुए हैं, तभी तो इतनी बुरी हालत है उस घर की। नीरा ने सोचा।

संदीप को टिफ़िन का बैग पकड़ाते हुए नीरा ने कहा, "संदीप वो सामने वाला घर....।"

"अब फिर तुम उसी बात को लेकर बैठ गयी। तुम रोज़ ही उस घर को देखकर परेशान होने लगी हो। अरे, वो लोग कहीं गए होंगे। जब हम लम्बी छुट्टी जाते हैं तब हमारे घर की भी ऐसी ही हालत हो जाती है। तुम कुछ ज़्यादा ही सोचती हो।" संदीप ने जाते - जाते कहा।

संदीप अपने ऑफिस और बच्चे स्कूल जाने के लिए बस स्टॉप की ओर चले गए। नीरा को भी मंदिर जाना था। मंदिर में जल चढ़ाकर नीरा घर आती और फिर नाश्ता करती थी। मंदिर पास की ही सोसाइटी में था। आज नीरा का ध्यान गया कि मंदिर में, एक कोने में सीढ़ियों पर एक बूढ़ी स्त्री बैठी थी। साड़ी और गहनों को देख अभिजात्य वर्ग की लग रही थी। पैरों में चप्पल नहीं थी। हाँ, पर ये असामान्य नहीं था। मंदिर में तो कोई भी चप्पल नहीं पहनता है। किन्तु नीरा का ध्यान इसलिए गया क्योंकि उस महिला के पैर बहुत रूखे, बिवाइयाँ भरे हुए थे। जैसे बहुत अरसा हो गया हो चप्पल पहने हुए। वह महिला नीरा की ओर देखकर मुस्कुराई। नीरा ने भी प्रत्युत्तर में मुस्कुरा दिया।

वह महिला बोली, "कब आयी नीमा....? ....पूजा कहाँ है ?"

"मैं नीमा नहीं, नीरा हूँ।" नीरा ने विनम्रता से कहा। पर वह वृद्ध स्त्री कहाँ सुन रही थी। वह कुछ बुदबुदा रही थी। नेत्र बंद कर लिये थे। नेत्र कोरों को ध्यान से देखने पर ऐसा लगा कि बहुत समय रोयी होगी ये स्त्री।

घर आकर भी नीरा उस महिला को भूल नहीं पा रही थी। शाम को संदीप से इस बारे में कहा। संदीप अपनी फाइलों में उलझा हुआ था। सुनकर अनसुना कर दिया, टाल दिया। बच्चे तो वैसे भी अपनी - अपनी पढ़ाई में व्यस्त थे। नेहा का बारहवीं और गौरव का दसवीं का वर्ष था।

अगले दिन की शुरुआत फिर से उसी वीरान बाल्कनी से हुई। नीरा का मन खिन्न हो गया। उसके चेहरे पर परिलक्षित हो रहा था। संदीप ने उसके कन्धों पर हाथ रखकर स्नेह से कहा, "बहुत ज़्यादा मत सोचा करो इन सब बातों पर। बस अपना, बच्चों का और मेरा ध्यान रखा करो। उसी क्रम में ! बाकी दुनियाभर की चिंता क्यों करती हो ?"

"संदीप वो स्त्री जो मंदिर में दिखी थी.... वो.... मैंने तुम्हें रात को बताया था .... "

"अरे अभी तो समझाया ! नीरा ऐसे तो तुम बी. पी. बढ़ा लोगी अपना।" संदीप और बच्चे प्रतिदिन की तरह चले गए। नीरा का मन नहीं मान रहा था। बुझे मन से मंदिर गयी जल चढ़ाने। वो महिला ठीक उसी जगह बैठी हुई थी। उसी साड़ी में ! यह विचित्र था। साड़ी क्यों नहीं बदली ? क्या घर नहीं गयी ?

वह किसी से पूछ रही थी कि नीमा आ गयी क्या ?, सोनू भी नहीं दिख रहा। किन्तु कोई उसकी ओर ध्यान नहीं दे रहा था। जैसे मानों वह अस्तित्व में ही नहीं हो। उस महिला का ऐसे ही बैठे रहना असामान्य तो था।

चूँकि एक दिन पहले ही उस महिला ने नीरा को नीमा कहा था अतः नीरा किसी अज्ञात भय से भयभीत होकर उस स्त्री की दृष्टि से स्वयं को बचाते हुए मंदिर में गयी और चुपचाप घर वापस आ गयी। पूरी दोपहर किसी काम में मन नहीं लगा। अवश्य ही कुछ तो सही नहीं था उस महिला के विषय में। ये नीमा कौन है ? और सोनू ? उस नीमा का पुत्र ?

शाम को नीरा ने पुनः संदीप से कहा। पत्नी की व्यग्रता शांत करने की गरज से संदीप ने आश्वासन दिया कि वह उस मंदिर वाली सोसाइटी के मेनेजर से बात करके उस महिला के विषय में पता करने का प्रयत्न करेंगे। आज तो बच्चे भी अपनी माँ की परेशानी को समझने का प्रयत्न कर रहे थे।

"मम्मी, कल छुट्टी है। मेरे कुछ फ्रेंड्स सामने वाली बिल्डिंग में रहते हैं। उनसे मिलकर पता करता हूँ कि ये सामने वाली बाल्कनी वाले सच में छुट्टी पर कहीं गए हैं या फ्लैट खाली करके चले गए हैं और ये गमले, कपड़े उन पुराने लोगों के ही छूट गए हों।" गौरव ने माँ को ढांढस दिया।

"हाँ, और माँ, कल मैं आपके साथ मंदिर चलूँगी।" नेहा ने नीरा से कहा।

"लो.... सारी प्रॉब्लम ही सोल्व हो गयी । नाउ चीयर अप !" संदीप ने नीरा के कन्धों पर हाथ रखते हुए कहा ।

"हाँ, और इसी बात पर पिज़्ज़ा पार्टी हो जाये !" गौरव चहक कर बोला तो सब ने हामी भर ली ।

अगले दिन संदीप को तो ऑफिस जाना था । बच्चे हमेशा की तरह छुट्टी होने के कारण अधिक देर सोना चाह रहे थे । नीरा अकेले ही मंदिर की ओर चल पड़ी । आज और दिनों की अपेक्षा व्यग्रता कम थी । आज नीरा को पूरी उम्मीद थी कि उसकी मन की उथल - पुथल का कुछ न कुछ समाधान निकल आएगा । मंदिर के उसी चिरपरिचित स्थान पर वह महिला बैठी थी । उसी साड़ी में ! नीरा ने उसकी ओर ध्यान न देने का दृढ़ निश्चय करके मंदिर में प्रवेश किया। शांत मन से जल चढ़ाया, दर्शन किये । पता नहीं क्यों आज अपने परिवार के लिए उज्जवल भविष्य की कामना करते समय नीरा को उस महिला का भी ध्यान आया, उसने निश्छल भाव से उस वृद्ध महिला के लिए प्रेमभाव से परिपूर्ण परिवार की कामना की ।

नीरा मंदिर से बाहर आ गयी । वृद्ध महिला अपनी जगह पर नहीं बैठी थी । नीरा को आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता हुई । चलो कदाचित उसके घरवाले आ गए उसे ले जाने । क्या इतने जल्दी उसकी पुकार ईश्वर ने सुन ली थी ! प्रसन्नता से भरी नीरा लम्बे डग भरते हुए अपनी सोसाइटी में आ गयी । तभी किसी ने पीछे से आवाज़ दी, "नीमा, मैं भी आई । सोनू कहाँ है?" नीरा का ह्रदय धक् करके मानो रुक ही गया ! पीछे मुड़कर देखा तो वही मंदिर वाली महिला थी ।

नीरा ने कुछ तेज़ी से कहा, "मैं नीमा नहीं हूँ । आप यहाँ कैसे आ गयीं ?.... गार्ड....?"

"सोनू कहाँ है....? मुझे भूख लग रही है....। नीमा, सोनू के पापा उठ ही नहीं रहे हैं....। जय सिया राम....। नीमा हलुआ बना दो....। तुम कब आयी ....?"

वह महिला अस्पष्ट, अस्फूट सी भाषा में बड़बड़ा रही थी। तब तक गार्ड भागता हुआ आया। नीरा ने संकेत करके उस महिला के बारे में पूछा।

"मैडम, मैं नया हूँ ड्यूटी पर, इनको नहीं पहचानता।"

"मैं भी नहीं जानती....। इनको बगल वाली सोसाइटी के मंदिर तक छोड़ आओ।" हड़बड़ी में नीरा को कुछ और नहीं सूझा।

"नहीं....! सोनू के पापा उठ नहीं रहे हैं....। नीमा घर चलो....। तुम कब आयी ....? भूख लग रही है....। पूजा कहाँ है....?"

तभी वहाँ एक और गार्ड भागकर आया और बोला, "यो मैडम तो मन्ने परले बिल्डिंग की २४५ की लाग रही सै !"

नीरा के मन में विचार कौंधा। कहीं इस महिला को स्मृतिभ्रम तो नहीं हो गया है। आखिर एक गार्ड तो पहचान रहा है ! नीरा द्रवित हो उठी। गार्ड को वापस जाने का संकेत किया। फिर उस महिला से बोली, "चलो आंटी, पहले घर चलकर कुछ खा लेते हैं फिर बात करेंगे।" नीरा उस महिला को, जिसके बारे में कुछ नहीं पता, उसे घर ले आई ! बच्चे अब भी सो रहे थे। नीरा ने उस महिला से हाथ - पाँव धोने का आग्रह किया और आदर से डाइनिंग हॉल में बिठाया। फिर उस ने झटपट चाय बनायी, प्लेट में बिस्कुट रखे, और जो सुबह पराठे बनाये थे, उन्हें भी गरम किया। वह महिला सलीके से डाइनिंग टेबल पर बैठ कर नाश्ता करने लगी।

"टिशु हैं....?" उस महिला ने कहा। नीरा चौंक गयी। नीरा ने टिशु पेपर का बॉक्स आगे बढ़ाया। उस महिला ने होंठ पोछे, हथेलियाँ भी साफ़ कीं। नीरा प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी। क्या इसकी याददाश्त सच में चली गयी है ?

"नीमा, मुझे शुगर है, भूल गयी तुम....?" मुस्कुराकर बोली वह। फिर हॉल की खिड़की से बाहर शून्य में ताकने लगी। "सोनू दिखाई नहीं दे रहा। उसके पापा उठ गए ....?" ऐसा कहते हुए वह उठी और डाइनिंग हॉल में ही रखे हुए दीवान पर लेट गयी। नीरा सब देख रही थी। एक विचित्र से अपरिचित

भय से घिर गयी वह। क्या उसने ठीक किया था उस महिला को अपने घर लाकर ?

वह महिला गहरी नींद में सो चुकी थी अबतक। लगता था कई रातों से सोई नहीं होगी वह। नीरा का ध्यान उस पर ही था। वह उस महिला के विषय में कुछ जान नहीं पायी थी। यही कुछ ७० - ७५ वर्ष की होगी। पीठ के बल सीधी सो रही थी वह। साड़ी का पल्ला दोनों कन्धों को ढंकते हुए , दोनों हथेलियों की उँगलियाँ वक्षस्थल पर आपस में जकड़ी हुईं, वह महिला जल्दी ही खुर्राटे भरने लगी। नीरा को घबराहट होने लगी। माथे पर स्वेद बिंदु उभर आये। समझ नहीं आ रहा था क्या करे वह। तभी गौरव उबासी लेता हुआ हॉल में आया। अलमस्त सा डाइनिंग चेयर पर बैठकर उसने नीरा को आवाज दी, “मम्मा...., कॉफ़ी बना दो” और वहीं सिर टेबल पर रखकर उनींदा सा अपना मोबाइल देखने लगा। नेहा भी हॉल में आ चुकी थी, “मम्मा...., मैं भी पियूँगी।”

नीरा अपनी जगह से हिली भी नहीं जैसे मानो कई किलो के बाट उसके पैरों से बाँध दिए गए थे। लड़खड़ाती हुई वह बोली “अभी बनाती हूँ ....।”

गौरव चहका, “अरे वाह, मम्मी....! आज कोई लेक्चर नहीं डिसिप्लीन पर !, कि बिस्तर ठीक करो, स्टडी टेबल की किताबें समेटो...., सीधे कॉफ़ी मिल रही है....!”

नेहा बोली, “चुप कर गोलू। सुबह से शुरू हो जाता है....।” वह ठिठक गयी। दीवान की ओर संकेत करके बोली, “मम्मा, ये कौन हैं....?”

“हैं....!? हमारे यहाँ मेहमान.... ब्रेकिंग न्यूज़ !” गौरव और भी कुछ बोले, नेहा ने उसके सिर पर चपत लगाते हुए कहा, “चुप कर....!”

“पर मम्मा...., सच्ची में, ये कौन हैं....?” लगभग फुसफुसाते हुए नेहा बोली।

गौरव की नींद भाग चुकी थी। वह भी नेहा की तरह ही उत्सुकता से नीरा की ओर देखने लगा। इस सप्ताहांत में हमारे यहाँ कोई अतिथि आने वाला है

ऐसा तो कुछ याद नहीं था उन दोनों को। नीरा ने बढ़ी हुई हृदयगति को नियंत्रित करने का प्रयास करते हुए अपने बच्चों से स्नेह से कहा, "बच्चों, चलो, अपने कमरे में चलो। तुम दोनों को कुछ बताना है !"

"मिलते हैं ब्रेक के बाद !" गौरव ने दीवान पर सोयी हुई महिला की ओर देखते हुए 'सेल्यूट' की मुद्रा में दायीं हथेली मोड़कर माथे पर रखी और कमरे की ओर मुड़ गया।

"कितनी मसखरी करता है तू गोलू ....! सिरिअस हो जा, बोर्ड हैं इस साल !" नेहा प्यार से अपने भाई की पीठ पर धौल जमाते हुए बोली। नीरा भावुक हो गयी। दोनों बच्चों का बहुत महत्वपूर्ण वर्ष था यह। उसका पूरा ध्यान बच्चों की ओर होना चाहिए था। और वह एक अपरिचित महिला को अपने घर में ही आश्रय देने ले आयी थी। पता नहीं बच्चे कैसे प्रतिक्रिया दें। और संदीप.... ! उनसे क्या कहेगी वह....। प्रतिष्ठा, परंपरा और अनुशासन के कट्टर अनुयायी संदीप को तो ये सब बखेड़ा गवारा ही नहीं होगा। कैसे संभालेगी वह सबकुछ।

जब तीनों कमरे में आ गए तो गहरी साँस लेकर नीरा ने यथासंभव सही शब्दों का चुनाव करते हुए कहना आरम्भ किया, "बच्चों, ये जो 'दादी' हैं....। इन्हें मैं भी पूरी तरह नहीं जानती। ये बगल वाले मंदिर में मिली थीं....। मिली क्या, वो तो खुद ही मेरे पीछे - पीछे आ गयीं। याददाश्त चली गयी हैं इनकी शायद। पर अपनी सोसाइटी का एक गार्ड कह रहा था कि उसने इनको हमारी ही सोसाइटी में देखा है ....। शायद २४५ में रहती हैं। रास्ता भूल गयीं हैं। जब उठेंगीं तो मैं सब पूछकर उन्हें घर तक छोड़ आउँगी।" बोलते हुए नीरा की आवाज़ भर्रा गयी थी जो उसके बच्चों के ध्यान में आ गया था।

"कोई बात नहीं मम्मी, आप उनके पास बैठो। मैं हम सबके लिए कॉफ़ी बनाती हूँ।" नेहा ने ढांढस देते हुए कहा।

गौरव कमरे में चहलकदमी करता हुआ २४५....२४५.... बोलता जा रहा था। फिर खिड़की के बाहर ध्यान से दूसरी बिल्डिंग को देखने लगा। मन ही मन उसने कुछ गुत्थी सुलझाई और लगभग चीखते हुए बोला, "यूरेका !

मम्मी.... ये २४५ तो वही बाल्कनी वाला घर हुआ जिसे देखकर आप रोज़ दुखी हो जाती हो.... !"

नेहा की आँखें भी आश्चर्य से फैल गयीं। नीरा और नेहा भी खिड़की के पास आ गए। सामने वही बाल्कनी दिख रही थी जो रसोईघर से भी दिखती थी।

"तो इसका अर्थ ये हुआ कि ये 'ग्रैंड मा' २४५ में रहती हैं....?" नेहा ने अटकल लगायी।

"हाँ....! और रास्ता भूलकर हमारी मम्मी द ग्रेट के साथ यहाँ आ गयीं.... केस साल्व्ड !!" गौरव की आँखों में चमक थी।

"लेकिन हमारे प्यारे 'शर्लोक होमस' ये दादीजी मम्मी के साथ मंदिर से आयीं हैं।" नेहा पूरी तरह आश्वस्त नहीं थी। "और यदि ये २४५ में ही रहती हैं तो वो घर इतना वीरान क्यों लगता है ?"

नीरा के मन में भी यही विचार कौंधा था। उसका मन विचलित होने लगा। अपने आप को संयत करने की गरज से बच्चों से बोली, "चलो जो भी है। जब वो उठेगी तब पता कर लेंगे। अभी जाओ दोनों और अपना रूटीन शुरू करो, मैं कॉफ़ी और नाश्ता लाती हूँ दोनों के लिए। नीरा कमरे से बाहर निकलने लगी तो गौरव ने हाथ पकड़कर उसे रोका और बोला, "मम्मी, इनको भी लगता है डिमेंशिया की प्रॉब्लम है....। वैसी ही, जैसी नानी को थी !"

नीरा का मुख मलिन हो गया। स्वयं को सँभालते हुए बोली, "हो सकता है....। अच्छा, जाओ अपने - अपने काम करो....।"

बच्चे अपनी दिनचर्या में व्यस्त हो गए। नीरा भी प्रतिदिन के बचे हुए काम निबटाने लगी। रह - रह कर उस महिला पर भी दृष्टि रहती थी उसकी। बहुत देर से सो रही थी वह। जब नीरा के काम हो चुके तब वह बच्चों के कमरे में गयी। उनका मन पढ़ाई में नहीं लग रहा था। लगता भी कैसे ! नीरा के आते ही खलबली मच गयी। नेहा ने अपनी माँ को पास बुलाकर बैठाया और कहा, "मम्मी ऐसे ही किसी को हम घर में नहीं रख सकते....। आप भी समझते हो

इस बात को। हमने तय किया है कि गौरव उस बिल्डिंग में जाकर इन दादीजी के बारे में पता लगाने की कोशिश करेगा....। फिर हम अपनी सोसाइटी के मेनेजर से भी बात कर सकते हैं....।"

"हाँ ये ठीक रहेगा....।" नीरा को भी कुछ सूझ नहीं रहा था।

"नीमा...., नीमा ...., चश्मा कहाँ है मेरा....? सोनू आया क्या.... और पूजा कहाँ है ?".... वह महिला उठ चुकी थी। नीरा, गौरव और नेहा भागकर हॉल में आये। गौरव एक क्षण को रुका, फिर जल्दी से जूते पहन कर बाहर निकल गया। नीरा को देखकर उस महिला के मुखपर हल्का स्मित पसर गया। जैसे अपरिचितों के मध्य किसी परिचित को देखकर अनुभव होता है, वैसे भाव थे उसके मुख पर।

"प्यास लगी है....।"

"हाँ आंटी, अभी लायी पानी...." नीरा ने तुरंत पानी का गिलास आगे किया।

"नीमा, मुझे अम्मा कहो न, आंटी क्यों कहती हो....। सोनू कहाँ है ? देखो तो उसके पापा अभी तक सो रहे हैं....। सुबह हो गयी ?.... मुझे बाथरूम जाना है....।"

नीरा कुछ कहे या करे, इसके पहले ही नेहा आगे आकर बोली, "हाँ अम्मा, चलो मैं बताती हूँ कि बाथरूम कहाँ है...." उसने अपनी माँ को संकेत करके आश्वासन दिया कि सबकुछ ठीक है, चिंता मत करो। थोड़ी ही देर में दोनों वापस आ गए। वह महिला पुनः दीवान पर बैठ गयी और कभी छत पर पंखे को, तो कभी खिड़की के बाहर शून्य में ताकती रही। बहुत देर तक चुप्पी छाई रही। वह महिला मन ही मन कुछ बुदबुदा रही थी।

"मैं उनके साथ इसलिए गयी थी कि मुझे डर था, कहीं ये अम्माजी बाथरूम का दरवाज़ा बंद करके खोलना ही न भूल जाये.... या कुछ और अनहोनी न हो जाय....।" नेहा ने कहा। नीरा ने प्यार से नेहा के सिर पर हाथ रखा।

“मुझे पता है, कहीं न कहीं आपको ये अम्मा नानी की याद दिला रही है। आप चिंता न करो। इस प्रॉब्लम का भी हल निकल ही आएगा। मैं और गोलू आपके साथ हैं।”

गौरव वापस आ गया था। उसने बताया कि २४५ में तो ताला लगा हुआ था। बगल के दो और फ्लैट में ताले लगे हुए थे। एक फ्लैट में कुछ कामगार काम कर रहे थे। न. २४१ के बड़े रूखे स्वभाव के अंकल थे। सो उन्होंने बात ही करने से मना कर दिया। न. २४४ वाली आंटी ने इतना जरूर कहा कि वो लोग यहाँ नए आये हुए हैं, ज्यादा कुछ नहीं जानते और किसी बुज़ुर्घ महिला से नहीं मिले हैं, हाँ लेकिन २४५ में एक बुज़ुर्ग महिला रहती थी और अपनी देखभाल करने वाली ‘मेड’के साथ गाँव गयीं हैं। ऐसा उसी देखभाल करने वाली मेड की जानने वाली दूसरी कामवाली ने कहा था।

बड़ा विचित्र था ये। भला कोई अपनी कामवाली के घर यानी गाँव क्यों जाएगा ! ये गुत्थी सुलझ नहीं रही थी। अब यदि ये वही २४५ वाली बुज़ुर्ग महिला है तो इसे तो कुछ याद ही नहीं ! और यदि ये वहाँ रहती ही नहीं तो कहाँ रहती होगी ! बस गार्ड के कहने पर विश्वास करके नीरा उसे घर ले आई थी। नीरा का सिर घूमने लगा। लगा कि, जैसे चक्कर आ जायेगा।

“नीमा, सोनू आया....? उसके लिए हलुवा बना देना....।” अम्मा की तन्द्रा भंग हो गयी थी। अम्मा ने ध्यान से नीरा के दोनों ओर खड़े नेहा और गौरव की ओर देखा।

“अरे, विशु ! कितना लम्बा हो गया रे तू....। और पुतुल, कितनी प्यारी लग रही बेटा !” कितने साल हो गए तुम लोग आते ही नहीं....।” कहते समय अम्मा के नेत्र अश्रुओं से नम हो गए थे। “नीमा, सोनू के पापा को उठाओ, देखो विशु और पुतुल आये हैं....। पूजा कहाँ है....?”

अम्मा फिर से हलुवा बनाने का आग्रह करने लगी।

नीरा हिम्मत करके अम्मा के पास आई और बोली, “अम्मा, अभी बनाती हूँ....। आप यहीं दीवान पर ही बैठकर आराम करो।”

बच्चों को कमरे में बुलाकर नीरा ने कहा, "बच्चो, इस समस्या का समाधान तो खोजना ही पड़ेगा। परन्तु मैं चाहती हूँ कि इन अम्मा को किसी भी तरह का धक्का न लगे....। वैसे ही ये अपने लोगों को नहीं पहचान रही हैं.... और हमें अलग - अलग नामों से बुला रही हैं....। मैं सबसे पहले नीचे ऑफिस में जाकर बात करती हूँ मेनेजर से। अभी वो ऑफिस में ही होंगे। नेहा, तुम अपनी किताबें लेकर डाइनिंग टेबल पर ही बैठ जाओ ताकि अम्मा पर नज़र रख सको।"

"मम्मी, मैंने अम्मा की फोटो ले ली है। आपको फॉरवर्ड कर रहा हूँ। आपको ऑफिस में दिखाने के काम आएगी।" गौरव बोला।

नीरा अपने कमरे में जाकर बाल ठीक करने लगी। बगल के ही कमरे में दोनों भाई - बहन आपस में बात कर रहे थे।

"नेहा दी, ये अम्मा बार - बार सोनू को क्यों बुलाती रहती हैं.... !"

"पता नहीं....। जैसे मम्मी को नीमा कहती रहती हैं।" नेहा सोचते हुए बोली।

"दीदी, जैसे नानी केवल आनंद मामा को ही पुकारती रहती थी, ठीक वैसे ही....।"

"हाँ, और नानी सबको नंदू ही बुलाती थी - चाहे वो बड़े मामा हों या आनंद मामा हों या पापा ही हों !" नेहा ने कहा।

"वही तो....! नानी को तो बस आनंद मामा से ही प्यार था....। याद है, वो कैसे कहती थीं - नंदू, नेट प्रैक्टिस हो गयी....? नंदू, नेट प्रैक्टिस हो गयी....? जैसे ये अम्मा बार - बार कहती है सोनू आ गया ?, सोनू कहाँ है ??.... पता नहीं, आनंद मामा यदि इतने सीरियसली नेट प्रैक्टिस करते तो आज उनका नाम गांगुली और द्रविड़ के बाद लिया जाता.... ! और मैं भी उनके ऑटोग्राफ लेकर दोस्तों को जलाता.... !"

"तू कभी सीरियस नहीं हो सकता क्या ? अम्मा के साथ - साथ तू नानी की भी खिल्ली उड़ा रहा है। समझ जरा। उन दोनों को गंभीर समस्या है।

डिमेंशिया या अल्ज़ाईमर की। और भूल मत आनंद मामा 'रणजी' तक खेले हुए हैं। वो तो नानाजी अचानक चले गए और नानी की ऐसी तबियत हो गयी तो मामा को बीच में ही अपने एम्बिशन को साइड में करना पड़ा....। तू तो सब जानता है।" नेहा ने समझाइश दी।

गौरव बोला "ठीक कह रही है दी, अब से नो मस्ती इस टॉपिक पर....। अब मैं समझा कि मम्मी इतनी क्यों भावुक हो गयी है। हम दोनों मम्मी के साथ हैं। पर सोचो शाम को पापा आयेंगे तो ये सब कैसे समेटा जाएगा?!"

"तब तक शायद सब ठीक हो जाए। मम्मी सोसाइटी के ऑफिस जा ही रही है। गोलू, ये सोनू कहीं उनका बेटा तो नहीं....। जैसे नानी नंदू मामा का नाम लेती रहती थी ! वैसे ही ये सोनू को पूछती रहती हैं ....। और सोनू के पापा.... ?" नेहा ने पूछा।

".... सोनू के पापा शायद अब न रहें हों। लेकिन चूँकि ये सब भूल चुकीं हैं इसलिए कहती रहती है की सोनू के पापा कहाँ हैं, उन्हें उठा दो आदि...." गौरव ने आशंका जाहिर की।

नीरा सब सुन रही थी। उनके वार्तालाप ने पुरानी स्मृतियाँ ताज़ा कर दीं थीं। नीरा की माँ अपने अंतिम दिनों में केवल सबसे छोटे पुत्र आनंद को ही पहचानती थी। अंत - अंत में बहुत चुप हो गयीं थीं। उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया था कि नीरा के पिता नहीं रहे थे। वो यथा संभव पूरा श्रृंगार किया करतीं थीं। जब बाद में सारे क्रियाकलापों में शिथिलता आ गयी थी और साड़ी पहनने में समस्या आती थी तब पुत्रवधुओं ने आग्रह करके सलवार कमीज़ पहनाना आरम्भ किया था। परन्तु अंत तक नीरा की माँ ने मंगलसूत्र पहनना नहीं छोड़ा था। नीरा के मन में विचार कौंधा - क्या ये अम्मा भी बिलकुल वैसा ही उदाहरण है जैसी उसकी स्वयं की माँ थी ? कौन जाने ! नीरा स्मृतियों और वर्तमान के गह्वर में डूबती - उतरा रही थी।

नीरा ऑफिस जा कर आई। बहुत अधिक कुछ सफलता नहीं मिली। ऑफिस बेयरर इस अम्मा के बारे में कुछ नहीं जानते थे। वो स्वयं नए आये हुए थे। घर आने पर बच्चों ने सुझाव दिया कि पुलिस में रिपोर्ट कर देते हैं।

नीरा ने दृढ़ता से मना कर दिया । कहीं न कहीं वह अम्मा में अपनी माँ को देखने लगी थी । नेहा अपनी माँ को समझती थी । उसने नीरा को पानी पीने के लिए दिया और कहा, "ठीक है मम्मा, अभी हम इस बात को यहीं रहने देते हैं। आखिर हमने सोसाइटी के ऑफिस में बता दिया ही है । शाम को जब पापा आ जायेंगे तब आगे का सोचते हैं, ठीक है ?"

"हाँ मम्मा, अब कुछ खिला दो । कुछ बढ़िया सा पास्ता, पिज़्ज़ा वगैरा खाने की भूख लग रही है ।" गौरव पेट पर हाथ फेरते हुए बोला ।

"पीठ पर लड्डू खायेगा ?" नेहा गौरव के धौल जमाते हुए बोली । नीरा सहित तीनों ही हँस पड़े ।

बच्चे कमरे में चले गए । नीरा को अपने बच्चों पर गर्व होने लगा । कोई और बच्चे होते तो अब तक हाय तौबा मचा चुके होते कि ये सब क्या है ....। हमारी पढ़ाई का नुकसान होगा आदि आदि....। नीरा सारे दिन स्वयं को व्यस्त रखने का प्रयत्न करती रही । यथा समय पर अम्मा को खाना खिला दिया । आग्रह करके उन्हें कपड़े बदलने को प्रोत्साहित किया और अपना ही एक सूती सलवार कमीज़ पहनने को दिया । पैरों की बिवाइयों के लिए वैसलीन लगाने दिया । अम्मा दिन भर शांत ही रहीं । हाँ, बार - बार 'सोनू' को पूछती रही, और हलुवा बनाने के लिए कहती रही । नीरा ने कुछ सोचकर तुलसीमाला लाकर दी । अम्मा ने बहुत प्रसन्नता से वह माला ले ली और माला जाप करती रही । अम्मा के मुख पर प्रसन्नता और संतोष के भाव थे । दोपहर को सो भी गयी ।

शाम को संदीप के आने का समय जैसे - जैसे पास आ रहा था, नीरा की व्यग्रता बढ़ने लगी । बच्चे माँ की व्यथा समझते थे अतः हॉल में ही अपनी पढ़ाई लेकर बैठे थे । यथा समय संदीप आया । जैसे ही दरवाज़ा खुला, इससे पहले नीरा कुछ कह पाती या बच्चे कुछ करते, अम्मा ही दौड़कर संदीप के पास पहुँच गयी और भाव विव्हल होकर बोली, "सोनू ! कितने दिन से राह देखती हूँ....। आज आया है । अरे बेटा, तेरे सर के बाल कहाँ गए ! देख, ये नीमा हलुवा बनाती ही नहीं....।"

अम्मा संदीप की बाँह पकड़े हुए थी और नेत्रों में अश्रु थे। सिसक कर बोलने लगी "देख न, पापा उठ गये क्या ....? पता नहीं कहाँ हैं...."

संदीप को इसकी जरा भी आशा नहीं थी। सावधानी से अपनी बाँह छुड़ाकर नीरा के पास आकर बोला, "ये सब क्या है ? ये सोनू कौन है ? और ये आंटी कौन हैं ?"

"संदीप, मैं समझाती हूँ ....। ये अम्मा हैं। कौन हैं, कहाँ रहती हैं, नहीं पता। सुबह मंदिर गयी थी मैं, तो ये मेरे पीछे - पीछे आ गयीं....।"

"और तुमने घर में पनाह दे दी ! गजब हो नीरा तुम भी.... !" संदीप के स्वर में तल्खी पता चल रही थी। जूते उतारते हुए वह बोला "ये सारा झमेला क्या है, ठीक से बताओ। मैं कपड़े बदल कर आता हूँ !"

नीरा की आँखें डबडबा गयीं। अम्मा इन सब बातों से बेखबर माला जप रही थी और बीच - बीच में सोनू आ गया, सोनू आ गया, ऐसा कह रही थी। नेहा और गौरव नीरा के पास आये। नेहा ने कहा, "कोई बात नहीं मम्मी, वैसे भी पापा का रिएक्शन बहुत पोज़िटिव रहेगा, हम ऐसी आशा नहीं कर रहे थे, है न ?"

"बल्कि मुझे तो पापा बॉस का रिएक्शन बहुत पॉज़िटिव लगा !" गौरव बोला। नीरा और नेहा के मुख पर प्रश्न सूचक भाव देखकर वह बोला, "देखो.... पापा ने नानी की हालत पास से देखी हुई है और वो जानते हैं कि डिमेंशिया के पेशेंट्स ऐसे ही बर्ताव करते हैं। इसीलिए आज भी एक अपरिचित अम्मा को घर में देखकर एकदम से पापा ने रियेक्ट नहीं किया, बल्कि कह रहे हैं कि पूरी बात समझाओ। है न....! नहीं तो उन्होंने अबतक हम सबको कार में बिठाकर सीधे पुलिस स्टेशन पहुँच जाना था - अम्मा के सहित.... !"

नीरा में थोड़ी हिम्मत आई। ये, गौरव का बचपना नहीं गया है परन्तु कभी - कभी बहुत समझदारी की बात कर जाता है। उसने झटपट चाय - नाश्ते का प्रबंध किया और टेबल पर रखा। संदीप भी आ चुका था। संदीप के मुख पर गंभीरता के भाव थे। बच्चे भी टेबल पर आ डटे , माँ के अंगरक्षक बनकर।

संदीप ने नीरा की पूरी बात सुनी। नेहा और गौरव ने भी दिनभर की घटना बतायी। इन सब से अनभिज्ञ अम्मा कभी शून्य में ताकती रहती, कभी टीवी पर चल रहे धार्मिक चैनल को निर्लिप्त भाव से देखती रहती। नीरा और बाकी लोगों पर अम्मा का ध्यान नहीं था। संभवतः वह इसी बात से खुश थी कि उनका सोनू मिल गया था।

"देखो, जो भी हो, हम ऐसे किसी की माँ को या किसी को भी घर में नहीं रख सकते। मैं अभी सोसाइटी प्रेसिडेंट और सेक्रेटरी से मिलकर इनके बारे में पता करने की कोशिश करता हूँ। यदि एक गार्ड कह रहा है, तो ये अम्मा कम से कम इसी सोसाइटी की ही है, ऐसा तो लगता है। अब २४५ की ही रहने वाली है या नहीं ये तो तब पता चलेगा जब उस घर में रहने वाला आएगा और बताएगा। क्या पता ये किसी और घर की हों, रिश्तेदार हों और अपना पता भूल गयीं हों....। नीरा.... ! ये क्या मुसीबत उठा लायीं तुम.... !" कहते - कहते संदीप की आवाज़ तेज़ हो गयी।

नीरा की आँखें भर आयीं।

"पापा.... !" नेहा ने अपने पिता से संकेत करके माँ से ऐसे बात न करने को कहा।

"अच्छा, अच्छा ठीक है....। दुखी मत हो। मैं देखता हूँ क्या कर सकता हूँ। तुम अपना और बच्चों का ध्यान रखो। चिंता मत करो कुछ तो हल निकल ही आएगा....।" संदीप ने नीरा का हाथ थाम कर कहा।

"यिप्पी....!!" गौरव ने एक प्रसिद्ध फ़ुटबाल खिलाडी की तरह 'विक्ट्री सिग्नल' किया। संदीप ने उसके सिर पर प्यार से चपत लगाकर कहा, "मेरे हीरो ! फुटबॉल ही देखता रहता है या पढ़ाई भी करता है....। एक्सरसाइज भी कर। खुद ही फुटबॉल हुआ जा रहा है....।"

संदीप सोसाइटी के प्रभारी अधिकारीयों से मिल आया। अम्मा की फोटो गुमशुदा के रूप में दोनों बिल्डिंग और आस - पास की सोसाइटियों के नोटिस बोर्ड में लगाने का तय हुआ था। तथाकथित २४५ फ्लैट का मालिक विदेश में रहता था। बाकि फ्लैट में ताले थे। जो रहिवासी थे भी तो वो अधिक

सहयोग नहीं कर रहे थे। बहुत अधिक सफलता नहीं मिली थी। वृद्धाश्रम का भी पता लगाने का प्रयास किया गया।

अम्मा खाना खाकर दीवान पर ही सो गयी थी। हाँ, उनके आग्रह करने पर हलुवा बनाया गया था जिसे अम्मा ने प्रेमपूर्वक अपने 'सोनू' को खिलाया। संदीप ने बहुत बेमन से सोनू का पात्र निभाया। अम्मा संतृप्त मन से सो गयी। आज बहुत दिनों के बाद अच्छी नींद आने वाली थी !

संदीप ने दोनों बच्चों को निर्देश दिया कि हॉल से ऐसी हर वस्तुओं को हटा दो जो काँच की हों, या नुकीली हों ताकि अम्मा को रात बे रात चोट न लगे। हॉल में एक लाइट जलती हुई छोड़ दी गयी। चारों ने तय किया कि एक - एक बार उठकर अम्मा पर ध्यान देंगे।

कमरे में आने के बाद संदीप ने नीरा को कहा, "देखो नीरा....,मैं इस अम्मा के विषय में कुछ वचन नहीं देना चाहता। तुम्हें इतना भावुक होकर उन्हें घर ले आने का निर्णय नहीं लेना चाहिए था। सोचो बच्चों की पढ़ाई है, अगले महीने मम्मी - पापा भी आने वाले हैं....। फिर ये नया बखेड़ा ! कैसे समेटोगी ये सब.... ?"

"लेकिन ऐसे ही उन्हें बीच सड़क पर तो नहीं छोड़ सकती थी मैं....! मुझे विश्वास है या तो उनको सब याद आ जायेगा, या उनकी फोटो देखकर परिवारवाले आ जायेंगे। वो लोग ढूँढ ही रहे होंगे।"

"कोई फायदा नहीं तुमसे बात करने का.... इन अम्मा को याद तो कुछ है नहीं.... ! नीरा ! ये अम्मा तुम्हारी मम्मी नहीं हैं !"

संदीप स्पष्ट रूप से देख सकता था कि नीरा को ये अम्मा अपनी माँ की याद दिलाती है। नीरा अपराधबोध से ग्रस्त हो गयी थी। मुख मलिन हो गया था। रोने ही वाली थी कि संदीप ने उसका हाथ थाम कर कहा, "मन छोटा मत करो। घर से नहीं निकाल रहा हूँ उन्हें। हाँ, कुछ अच्छे वृद्धाश्रम के बारे में पता लगाने की कोशिश कर रहा हूँ। उनके सुरक्षित और आरामदायक रहने की व्यवस्था करके ही घर से विदा करेंगे - अब तो ठीक है....?"

नीरा ने हामी में सर हिलाया। उसको इस बात का संतोष था कि संदीप बुझे मन से ही सही परन्तु अम्मा को घर में आश्रय देने के लिए मान गए थे - लेकिन कुछ ही दिनों तक ही।

जैसा सोचा था उतना सरल नहीं लग रहा था अम्मा के परिजनों के बारे में पता लगाना। अम्मा के नीरा के घर आकर भी लगभग दो दिन हो चुके थे परन्तु कोई भी नहीं आया था। अम्मा अपने बारे में या परिजनों के बारे में कुछ भी बता पाने में असमर्थ थी। हाँ, इतना अवश्य था कि वह अपने नए परिवार में बहुत प्रसन्न थी। अम्मा के अनुसार 'नीमा' पहले से खाना बहुत अच्छा बनाने लगी थी। बस लिट्टी चोखा, चूड़ा मटर या ठेकुआ बनाना भूल गयी थी! 'विशु' पहले से अधिक साँवला हो गया था और 'पुतुल' अधिक सुन्दर हो गयी थी ....। और तो और 'सोनू' गंजा हो गया था....! वो अपना चश्मा ढूँढती रहती, सोनू के पापा के सोते रहने की शिकायत करती, और किसी 'पूजा' की बात करती रहती।

ऐसे ही एक दो दिन और बीत गए। अम्मा अपनी निर्धारित शैया यानि दीवान पर बैठी माला जाप कर रही थीं। दिन भर अधिक बात नहीं करती थी। परन्तु प्रसन्न दिखती थीं। 'सोनू' के घर आते ही मुख और चमक उठता था। रोज ही हलुवा बनाने की डिमांड होती थी। दिन भर का थका हुआ संदीप 'सोनू' बनकर चिढ़ जाता था। नीरा मन मसोस कर रह जाती थी।

एक शाम को जब बच्चे कोचिंग से वापस आये तो अपनी माँ को दुखी देखकर पास में सट कर बैठ गए। नीरा बरबस रो ही पड़ी।

"पता नहीं कैसे सब ठीक होगा। अम्मा को तो कुछ भी याद नहीं। पहले दिन बोली थी कि शुगर है। अब तो खूब मीठी चाय पीती हैं, आलू मटर खाने का हठ करती हैं....। और मैं देख रही हूँ कभी दिन में ज़्यादा ही सो जाती हैं और रात को जागती रहती हैं, बुदबुदाती रहती हैं। थोड़ी चिड़चिड़ी भी हो गयी हैं। बस अपने 'सोनू' को देख कर खुश होती हैं!"

"मम्मा, लेकिन कुछ बातें ऐसी करती हैं कि उनके बहुत पढ़े लिखे होने का या बहुत ही 'वेल टू डू' फॅमिली की होने का आभास होता है। जैसे उन्हें

खाने की टेबल पर ही खाना अच्छा लगता है, टिशु पेपर जरूर चाहिए , रोज पेपर पढ़ना है....। हालाँकि चश्मा नहीं होने से दिक्कत होती है....। कल तो रशिया - युक्रेन वार के बारे में बात कर रही थी !" गौरव बोला।

"हाँ ! और मम्मी, जैसे वो आपको लिट्टी चोखा वगैरा बनाने को कहती है इससे लगता है कि या तो ये बिहार की हैं या वहाँ कई वर्ष रह चुके परिवार से हैं.... मेरा गेस है" नेहा ने कहा।

"यस ! मम्मी, वो कहती है ना, कि विशु यानि मैं अधिक सांवला हो गया हूँ, पापा याने उनका 'सोनू' गंजा हो गया है....आदि - आदि, इसका अर्थ ये हुआ कि उनका बेटा गंजा नहीं है, विशु मेरी उम्र का ही है.... वैसे ही पुतुल भी....।"

"वाह, क्या खोजी दिमाग लगाया है !" नेहा चहकी।

"नीमा, सोनू, विशु और पुतुल, ये चार नाम तो पता चल ही गए हैं अम्मा के परिवार के। क्यों न सोसाइटी के नोटिस बोर्ड पर ये नाम डालकर पता किया जाए ?" गौरव ने उत्साहित होकर कहा।

"मैं भी इनकी 'रील' बनाकर सोशल मीडिया पर डाल दूँ....?" नेहा बोली।

"पता नहीं ये सब ठीक रहेगा या नहीं। पर मैं सोचती हूँ कि अम्मा का एकबार मेडिकल चेकअप जरूर होना चाहिए।" नीरा सोचती हुई बोली।

पापा मान जायेंगे.... ? गौरव को संदेह था। "पर कोई बात नहीं, हम दोनों चलेंगे आपके साथ....।"

नीरा मुस्कुरा उठी बच्चो के संवेदनशील व्यवहार को देखकर।

"एक मिनट, ये अम्मा किसी पूजा की बात करती है कभी - कभी। ये कहीं उनकी काम वाली का नाम तो नहीं ? गार्ड रूम के रजिस्टर से सारी पूजा नाम वाली काम करने वाली महरियों के बारे में पता कर सकते हैं।" नीरा उत्साहित होकर बोली।

दोनों बच्चे खुश होकर एक साथ बोले, "वाह, वाह हमारी नीरा जासूस! सही पकड़े हैं !"

शाम को ये सारी बातें नीरा ने संदीप को बतायी। संदीप ने गंभीरता से कहा, "चीज़ें समेटने की जगह फैलती जा रहीं हैं। चलो,अम्मा का मेडिकल तो करा ही लेते हैं। मैंने अपने दोस्त महेश से बात की है। वह यहाँ के स्थानीय पुलिस स्टेशन इंचार्ज को जानता है। उसने मदद करने का वादा किया है। नीरा, आज तक कभी पुलिस वुलिस के चक्कर नहीं लगाये। पता नहीं क्या होगा।" नीरा तो पहले से ही मायूस थी। संदीप ने ही कहा, "चलो, लेट्स टेक वन स्टेप एट अ टाइम ....। कल हाफ डे ले रहा हूँ। अम्मा का मेडिकल करा लेते हैं।"

आने वाले कुछ दिन बहुत ही व्यस्त रहे। अम्मा का मेडिकल हुआ। मधुमेह था। चश्मा बनवाया गया। डिमेंशिया भी था। पुरानी मेडिकल हिस्ट्री तो पता नहीं थी, फिर भी दवाइयाँ शुरू कर दी गयीं थी। ये काम भी नीरा के जिम्मे आ गया था। अम्मा कभी दैनिक दिनचर्या में सहयोग करती थी तो कभी जिद पकड़ कर बैठ जाती कि नहीं नहाऊँगी ....। सोनू के पापा से मिलवाओ....। नीरा के संयम की परीक्षा ले रहे थे विधाता।

एक - एक करके दिन बीतते जा रहे थे। अम्मा के बारे में कुछ भी पता नहीं चल पा रहा था। नीरा के सास श्वसुर ने आने का स्थगित कर दिया था। वे लोग नीरा और संदीप की दुविधा समझ रहे थे। श्वसुर की आँखों का जो मोतियाबिंद का ऑपरेशन होना था, अब वो लोग संदीप की बहन के पास इंदौर जाकर करवाने वाले थे। संदीप को अच्छा नहीं लगा था। ऐसा लगा मानो वह अपने दायित्वों का निर्वाह ठीक से नहीं कर पा रहा था। संदीप की खिन्नता उसके व्यवहार में परिलक्षित हो रही थी। नीरा मन मसोस कर रह जाती थी। खैर, बच्चों ने इस मेहमान को अपना लिया था। जब समय मिलता, थोड़ी देर अम्मा के साथ बिता लेते थे। मोबाइल पर फोटो खिंचवाना बहुत पसंद था अम्मा को। उनकी ओर मोबाइल घुमाते ही मुख पर मुस्कराहट छा जाती थी। अम्मा की निश्छल मुस्कान देखते ही सबकी निराशाएँ , असमंजस और उदासी दूर हो जाती थी। अम्मा के लिए स्टडी वाला कमरा खाली कर दिया गया था। गौरव नेहा के कमरे में पढ़ाई करता था और दीवान पर रात को

सोता था। अम्मा कभी दीवान पर ही सो जाती तो वह सोफे पर सो जाता था। नेहा आवश्यक होने से अम्मा को बाथरूम रात बे रात लेकर जाती। बच्चों ने जिद करके अम्मा को पायल पहना दी थी। इससे ये फायदा होता था कि जब भी अम्मा कहीं हलचल करती तो घर के किसी न किसी सदस्य को पता चल जाता था। विषम परिस्थितियों के अनुसार बच्चों ने सामंजस्य बिठा लिया था। कहीं न कहीं नीरा की माँ की हालत सबको पता थी अतः अम्मा के साथ सभी लोग संवेदनशील थे।

एक दिन नेहा ने कलाई पर पहनने वाले दो एक जैसे 'रिस्ट बैंड' बनवाकर लाये। एक उसने अम्मा को पहना दिया, एक स्वयं पहन लिया और कहा, "अम्मा, ये हमेशा पहने रहना। मैं भी पहने रहूँगी। ये हमारे फ्रेंडशिप बैंड हैं....। देखो सुन्दर हैं ना....?" अम्मा खुश हो गयी। थोड़ी देर रुकर बोली, "पुतुल, तू बहुत प्यारी लग रही है....रात हो गयी क्या....?, "मेरा चश्मा खो गया....।"

अम्मा की सर्वथा असंबद्ध बातों को या अप्रासंगिक प्रतिक्रिया को नीरा या कोई भी गंभीरता से नहीं लेता था। वो लोग वही करते थे जो अम्मा के लिए और सबके लिए उचित हो।

"मम्मी, ये बैंड अम्मा की सेफ्टी के लिए है इसके अन्दर की साइड मैंने हमारा पता, मोबाइल नम्बर, अम्मा का ब्लड ग्रुप आदि छपवा दिया है, जैसा आनंद मामा ने नानी के लिए बनवाया था। आप ध्यान रखती हो कि अम्मा अकेले कहीं ना जाए , पर टू बी ऑन द सेफ़र साइड मैंने ये बनवा दिया है। आप चिंता ना करो।"

नीरा ने मन ही मन नेहा को ढेरों आशीष दिए।

संदीप कई दिनों से कुछ समाजसेवी संस्थाओं के संपर्क में था। वह और नीरा कुछ वृद्धाश्रम भी जाकर देख चुके थे। कुछ स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा संचालित वृद्धाश्रम की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। मूलभूत सुविधायें सब थीं परन्तु वहाँ के रहिवासियों के मुख पर क्लांत भाव थे। दूर शून्य में देखते इन पुरानी पीढ़ी के लोगों को अतीत की स्मृतियाँ दुखी करतीं, वर्त्तमान की

परिस्थिति निराश करती और भविष्य अनिश्चित लगता। नीरा को अम्मा को वहाँ भेजने का मन नहीं किया। आखिर उसकी माँ होती तो क्या वह भेज देती....? यही प्रश्न अपने से करती। अब अम्मा इतने दिनों से घर पर रह रही थी कि एक तरह से उनकी सबको आदत बन गयी थी। दवाएँ चल रहीं थीं परन्तु सब ही जानते थे कि डिमेंशिया में जो शारीरिक या मानसिक क्षय हो चुका है वह तो वापस ठीक नहीं किया जा सकता था। बस दवाइयाँ देकर क्षय की गति को कम किया जा सकता था। अम्मा अधिक समय तक चुप बैठी रहा करती थी। भूख बहुत कम हो गयी थी। नीरा ने कुछ बिहारी व्यंजन बनाने भी सीख लिए थे। जब लिट्टी या चोखा की सुगंध से घर भर जाता तो अम्मा के मुख पर प्रसन्नता छा जाती। बिल्डिंग के गार्ड भी जानने लगे थे कि अम्मा नीरा के यहाँ रहती है। कभी - कभी कोई कामवाली या गार्ड अम्मा का हाथ पकड़कर पास वाले मंदिर तक या पार्क में थोड़ी देर तक घुमाने ले जाते थे। बिल्डिंग के कई फ्लैट्स की रहने वाली कुछ बुज़ुर्ग महिलाओं ने मिलकर भजन 'ग्रुप' बनाया था। जब उन्हें अम्मा के विषय में और नीरा के परिवार की जद्दोजहद के बारे में पता चला तो उन्होंने अम्मा को प्रति मंगलवार अपनी मंडली में ले जाने का नियम बना लिया। कुछ अड़ोसी - पड़ोसी समय - समय पर धार्मिक, सामाजिक पुस्तकें, फल या नारियल पानी वगैरा दे जाते कि चलो, इसी बहाने नीरा और संदीप की मदद हो जाय! यह सब स्वयं स्फूर्त था - इसके लिए कोई भी अतिरिक्त पैसे की मांग नहीं करता था। यह एक तरह की समाजसेवा थी जिसमें सभी स्वेच्छा से काम कर रहे थे। नीरा और संदीप लोगों के इस सहयोग से अभिभूत थे।

परन्तु यक्ष प्रश्न वही था कि ऐसा कब तक चलने वाला था! यह तो धीरे-धीरे निश्चित हो गया था कि अम्मा २४५ फ्लैट की ही रहने वाली थी, क्योंकि गार्ड के अतिरिक्त उस बिल्डिंग के भी कुछ लोगों ने ये कहा था। पर वह फ्लैट बंद था। ताला तुड़वाकर अन्दर जाने का प्रश्न ही नहीं उठता था। संदीप किसी भी तरह की अनावश्यक परेशानियाँ बढ़ाने के पक्ष में नहीं था। उसका ऐसा मानना था कि यदि कोई पूजा नाम की कामवाली थी ही, तो हो सकता है अम्मा को मंदिर के पास भटकने के लिए छोड़ कर वह फ्लैट से कुछ चुराकर भी तो भाग सकती है। और इधर फ्लैट का असली मालिक आकर बोले कि

अमुक कीमती सामान खो गया है और फ्लैट का ताला तोड़ने वाले से पूछा जाना चाहिए तो संदीप और नीरा के पास क्या उत्तर रहेगा !

अम्मा को उनके घर आये हुए लगभग तीन महीने हो गए थे। उनके परिवार का कोई सूत्र नहीं मिला था अभी तक। वो पूजा नाम की कामवाली का भी पता नहीं मिला। यदि कोई कामवाली अम्मा के पास थी भी तो संभवतः उसका नाम पूजा नहीं था ! फोटो को पहचान कर भी कोई अभी तक अम्मा के लिए पूछताछ करने के लिए नहीं आया था। गार्ड के कहने पर भी अविश्वास होने लगा था। बगल वाली बिल्डिंग में स्थित मंदिर के कार्यप्रभारी भी अम्मा के विषय में अधिक कुछ नहीं जानते थे। संदीप और नीरा ने ये निष्कर्ष निकाला था कि जब अम्मा नीरा को 'मिलीं' थीं, तब मंदिर जाकर आश्रय लिए हुए 'उनको' संभवतः एक या दो दिन ही हुए होंगे। तदन्तर अम्मा नीरा के साथ हो लीं थीं। अब भी निश्चित रूप से नहीं कहा नहीं जा सकता था कि अम्मा २४५ फ्लैट की ही रहने वाली थी क्योंकि उसका मालिक विदेश में रहता था और उससे संपर्क साधने के लिए कोई नंबर नहीं था।

अब तो ऐसा भी लग रहा था कि अम्मा इसी एरिया की थी ही नहीं ! और उनके निष्ठुर परिजनों ने अपने क्षेत्र से बहुत दूर इस क्षेत्र में स्थित मंदिर में लाकर छोड़ दिया था...., उनसे छुटकारा पाने के लिये।

एक दिन संयोग से छुट्टी का दिन था। संदीप और बच्चे घर पर ही थे। दिन में लगभग ग्यारह बजे घर की घंटी बजी। नीरा ने ही द्वार खोला। सामने एक अपरिचित दंपत्ति को खड़ा पाया। दंपत्ति कुछ सत्तर वर्ष की आयु के आस-पास के लग रहे थे। संदीप भी वहाँ आ चुका था। नीरा ने औपचारिक अभिवादन किया और आने का कारण पुछा तो आगंतुक पुरुष ने संदीप की ओर देखते हुए हाथ जोड़कर अपना परिचय देना आरम्भ किया, "नमस्ते, मैं नरेंद्र भंडारी, और ये मेरी धर्मपत्नी प्रेमा भंडारी हैं। हम बगल वाली बिल्डिंग में रहते हैं। आज सुबह बिल्डिंग की लिफ्ट के पास मिथिला भाभी की फोटो लगी हुई देखी तबसे मन बहुत विचलित हो रहा है। इसीलिए हम यहाँ आये हैं।"

नीरा और संदीप अविश्वास से एक दुसरे को देखने लगे। जल्दी ही आगंतुकों को बैठक में बिठाया गया। औपचारिक परस्पर परिचय हुआ। नीरा ने नेहा को पानी लाने का संकेत किया। भंडारी दंपत्ति संकोच के साथ सोफे पर बैठ गये। अम्मा आस - पास नहीं थी। संदीप अधीर हो रहा था। उसने कहा, "क्या जानते हैं आप अम्मा...., मेरा मतलब मिथिलाजी के बारे में ....?"

नरेन्द्र भंडारी ने पानी का घूँट पीकर गला खखारा और बोलना आरम्भ किया, "संदीपजी, ये मिथिलाजी हैं - श्रीमती मिथिला झा, यदि उनका पूरा परिचय दूँ तो। इनके पति स्वर्गीय ओंकारनाथ झा का तीन वर्ष पहले देहांत हो गया है। आप तो जानते ही हैं कोविड महामारी में कई हँसते - खेलते परिवार बिखर गए। झा परिवार भी उनमें एक है। मिथिलाजी को स्मृतिभ्रम की गंभीर समस्या है....।"

"ये कहाँ रहती हैं, इनके बाकी परिवार के लोग कहाँ हैं ...., सब कुछ बताइये।" नीरा अधीर हो रही थी। संदीप ने नीरा को संयम बरतने को कहा और भंडारी की ओर अभिमुख होकर बोला, "भंडारी जी आप अम्मा के विषय में जो भी जानते हैं कृपया विस्तार से बताइये। क्षमा करें, मेरे लिए उन्हें मिथिला जी कहना सरल नहीं होना क्योंकि हम सब उन्हें अम्मा ही कहते हैं और वो भी यही संबोधन पसंद करती हैं। आप खुल कर कहिये। इससे उनके परिजनों को ढूँढने में आसानी होगी।"

"संदीप जी, पूरी बात कहता हूँ। हम २४६ नम्बर के फ्लैट में रहते हैं। हम पिछले चार महीनों से अमरीका में थे। छोटी बेटी की डिलीवरी थी। परसों ही अमरीका से लौटे हैं। दो दिन तो जेट लैग के कारण हम दोनों को ही बहुत थकान हो रही थी। अब हमारी भी उमर हो गयी है, शिथिलता आ गयी है। आज ही मैं नीचे उतरा था दूध वगैरह लेने, तब मैंने मिथिलाजी की फोटो देखी। घर आकर प्रेमा को बताया। तब से ही हम परेशान हैं। झा जी का फ्लैट २४५ बंद पड़ा है....। देखिये, मिथिला जी को डिमेंशिया कई वर्षों से है। जबतक झा जी थे, वो अपनी पत्नी का बहुत ध्यान रखते थे। फिर भी उनकी भी उम्र बहुत हो गयी थी अतः घर के पूरे काम करने के लिए एक आया और मिथिला

जी के रेगुलर रूटीन के लिए दूसरी आया रखी हुई थी। .... उनके नाम क्या थे प्रेमा....?"

भंडारी जी अम्मा के विषय में बोलते हुए मानो अपराधबोध ग्रस्त थे। वह अपनी पत्नी का संबल चाहते थे अतः पत्नी से आगे बताने के लिए संकेत किया।

प्रेमा जी ने बताया "हाँ, हाँ.... मीना और राधा ! मीना घर का पूरा काम और राधा मिथिला भाभी का पूरा काम करती थी....। यानि उन्हें खाना खिलाना, दवाइयाँ देना, नहलाने, कपड़े पहनाने आदि का ध्यान रखती थी। मीना भी हेल्प कर देती थी। कोविड के समय मीना गाँव चली गयी तो वापस ही नहीं आई। तब राधा ही पूरा काम सँभालने लगी थी....।"

"एक मिनट, आपने बताया, झा जी कोविड के समय नहीं रहे....। उस समय उनके परिवार का अन्य कोई भी सदस्य नहीं आया....?" संदीप ने पूछा।

"संदीप जी, झा जी कोविड से गए या अन्य हेल्थ कोम्प्लिकेशन के कारण, ये साफ़ नहीं है क्योंकि तब तीसरी लहर थी, और तब उनका एकलौता बेटा आया था। वह भी बहुत कम समय के लिए। आप तो जानते ही हैं विदेश से आना, वह भी बहुत लम्बे समय के लिए , बहुत आसान नहीं होता।"

"तभी सोसाइटी ऑफिस से ये पता चला था कि फ्लैट २४५ का मालिक विदेश में है।" नीरा सोचते हुए बोली " ये पूजा कौन है ? अम्मा बार - बार पूजा को याद करतीं हैं।"

"अरे वो मिथिला भाभी राधा को ही पूजा कहती थीं ....। दरअसल, ये भी दुखभरी बात है। पूजा इनकी बेटी का नाम है जो बहुत वर्षों पहले ब्रेन फीवर की वजह से पटना में ही गुजर गयी थी। पूजा अपनी माँ का बहुत ध्यान रखती थी। शायद उस घटना का मिथिला भाभी पर बहुत गहरा असर हुआ और उनकी ऐसी हालत हो गयी है।" भंडारी जी की पत्नी ने बताया।

"हाँ, झा जी खुद पटना विश्वविद्यालय में इतिहास विषय के प्राध्यापक रहे थे। मिथिलाजी अंग्रेजी विषय की व्याख्याता थीं, रिटायरमेंट के बाद झा

परिवार समस्तीपुर में पैतृक घर में रहने चले गए थे। बेटा सत्येन्द्र या सोनू कंप्यूटर इंजिनियर है, पूजा भी पोस्ट ग्रेजुएट थी.... बहुत प्रबुद्ध परिवार है झा परिवार। पूजा के जाने के बाद उनके बेटे सत्येन्द्र ने यहाँ फ्लैट खरीदा और हठ करके झा दंपत्ति को यहाँ ले आया। ये सोचकर कि उन्हें पूजा से जुड़ी यादें यहाँ कम आएँगी। फिर ये देश की राजधानी है, सत्येन्द्र के लिए भी आना - जाना आसान रहता।" भंडारी जी ने कहा।

"फिर भी.... पापा के जाने के बाद माँ की कोई खैर खबर नहीं ले रहा बेटा....ये भी तो विचित्र बात है.... !" नीरा बोली।

"नीरा बेटा, अब इसे विदेश की अत्यंत व्यस्त लाइफ स्टाइल कह लो, या अपने आपको निरंतर साबित करते रहने की लालसा और आवश्यकता कह लो, जो हमारे बच्चे व्यवहारिकता को भावुकता से ज्यादा प्राथमिकता देते हैं। सत्येन्द्र कम ही आता है इंडिया। उसने यहाँ झा जी और भाभीजी के लिए सब सुख सुविधाओं के साधन जुटा दिए थे। ये राधा भी प्रमाणिक एजेंसी से हायर की गयी थी। हर महीने उसके खाते में पैसे डाल दिए जाते थे....। पता नहीं कहाँ चली गयी वह !" प्रेमाजी ने कहा।

"पर हमें लगता है झा जी को हमेशा अपना पैतृक स्थान याद आता रहा। वे इस शहर को अपना ही नहीं पाए। भाभीजी की क्या कहें ! उन्हें तो शायद ये आभास ही न हो कि वह समस्तीपुर में नहीं हैं ! दोनों बहुत एकाकी जीवन व्यतीत कर रहे थे।" ये सत्येन्द्र कोविड महामारी आरम्भ होने से पहले दिवाली पर पूरे परिवार सहित आया था। वह, उसकी पत्नी नमिता, बच्चे विशु और प्रिया आये थे। उनके वापस लौटने के कुछ महीने बाद ही लॉक डाउन शुरू हो गया और बाकि तो आपको भी पता ही है कि उन दिनों में कितनी दिक्कतों का सामना करना पड़ा था हम सभी को। सत्येन्द्र, या की कहें सोनू फिर आ ही नहीं पाया। सीधे वह झा जी के अंतिम संस्कार के समय आया था।" भंडारी जी ने बात पूरी की।

"अम्मा मुझे सोनू और नीरा को नीमा कहती है। ये नीमा कौन है, क्या आपको पता है?" संदीप ने पूछा।

"ये तो पता नहीं....। मुझे लगता है जैसे मिथिला भाभी राधा को पूजा समझती हैं, वैसे ही नीरा जी को नीमा समझती हों। ये नीमा कोई उनकी स्टूडेंट, रिश्तेदार या पुरानी पड़ोसन हो सकती है, या हो सकता है, उनकी बहु नमिता के नाम का 'शार्ट फॉर्म' नीमा हो !....पक्के तौर पर कह नहीं सकते ! और सोनू तो सत्येन्द्र का घर का नाम है। " भंडारी जी ने कहा।

"एक माँ, जिसकी याददाश्त चली गयी है, बूढ़ी है, और अकेली है। उसके लिए बेटे का ह्रदय नहीं पिघलता होगा ?" नीरा दुखी होकर बोली।

"विदेशों में इलाज अच्छा है परन्तु मेडिकल के बिल बहुत ज़्यादा आते हैं। सोनू ने सोचा ज़रूर होगा। क्या पता उसकी स्वयं की आर्थिक स्थिति कैसी है....। बढ़ते बच्चे भी हैं ....।"

भंडारी जी की बात काटकर नीरा आवेग में बोली, "अरे, तो माँ को ऐसे ही बेसहारा छोड़ दो ? वो तो राधा के खाते में पैसे भेज कर कर्तव्यों से छुट्टी पा लेने वाली बात हो गयी। विदेश में इलाज करना इतना मुश्किल है तो अम्मा के बेटे - बहु को और मुश्किल परन्तु सही निर्णय ले लेना चाहिए था। जैसे ये, यहाँ का घर बेचते और उन्हीं पैसों से अम्मा का ठीक से इलाज हो जाता और वहाँ विदेश के ओल्ड एज होम में रहने का किराया वगैरा सब निकल आता। अरे, यहाँ वापस भी तो आया जा सकता था। पर माँ को किसी भी हालत में ऐसे दूसरों के भरोसे नहीं छोड़ना चाहिये था....। पता है कैसी हालत में मुझे मिली थी अम्मा.... ?!"

"नीरा, शांत हो जाओ ...." संदीप नीरा की मानसिक स्थिति समझ सकता था। "भंडारी जी क्या आपके पास झा जी के बेटे का कांटेक्ट नंबर है ? और कहीं किसी से राधा के बारे में पता किया जा सकता है क्या....?"

"मैं कोशिश करती हूँ दूसरी काम वालियों से बात करके...." प्रेमा भंडारी बोलीं।

तभी हॉल में अम्मा आ गयी। अम्मा ने भंडारी दंपत्ति को देखा परन्तु जैसे पहचाना नहीं हो ! भंडारी दंपत्ति अवश्य पहचान गए। श्रीमती भंडारी ने आगे बढ़कर बात करने का प्रयास किया, "भाभी प्रणाम !"

अम्मा कुछ बोली नहीं। हल्का सा स्मित था मुख पर। फिर पास आकर श्रीमती भंडारी की दोनों कलाइयाँ कसकर पकड़कर रोते हुए बोलने लगी, "पूजा, कहाँ गयी थी....। देख सोनू के पापा कहाँ हैं। चाय बना दे....।"

लगभग झंझोड़ ही दिया था अम्मा ने श्रीमती भंडारी को। धीरे - धीरे पकड़ शिथिल हो गयी, और अम्मा धीमी गति से चलकर वापस कमरे में चली गयी। श्रीमती भंडारी के मुख पर भय के भाव स्पष्ट दिख रहे थे।

"आप ठीक हैं....?" नीरा ने पूछा।

"हाँ, मैं ठीक हूँ। मिथिला भाभी ने कभी यह स्वीकार ही नहीं किया कि झा जी नहीं रहे। वह सोचती है कि झा जी कमरे में सो रहे हैं। सच में नीरा,आप और संदीपजी वो कर रहे हैं जो उनके अपने सगे भी नहीं कर रहे हैं। हम दोनों से जो मदद हो सकेगी हम अवश्य करेंगे। बस भाभी जी को सम्मानपूर्वक जीवनयापन करने मिले यही भगवान् से प्रार्थना है। हम आज ही, बल्कि अभी ही सोनू से बात करेंगे।"

अपनी पत्नी की बात पर भंडारी जी ने भी स्वीकरोक्ति में सिर हिलाया।

नीरा ने भंडारी दंपत्ति से चाय पी के जाने का आग्रह किया परन्तु उन्होंने विनम्रतापूर्वक मना कर दिया। वे लोग चले गये। अगले दो दिन इसी उहापोह में निकल गए कि जाने अम्मा के पुत्र से बात हो भी पायी है या नहीं। संदीप और नीरा को पूर्ण विश्वास था कि कभी भी उस सोनू का फोन आ सकता है। तीसरे दिन भंडारी जी स्वयं ही आ गए। उन्होंने बताया कि सोनू से बात हो गयी है। वह जल्दी ही संपर्क करेगा। संदीप और नीरा को सोनू की तरफ से कोई अधीरता न दर्शाना थोड़ा विचित्र लगा।

"आप इस झा परिवार को कितने समय से जानते हैं ....?" नीरा के इस प्रश्न पर भंडारी जी थोड़े अचकचा गए, फिर बोले, "देखिये, झा परिवार को यहाँ आये हुए लगभग आठ - नौ वर्ष होने को आये हैं। उनकी पुत्री के निधन के बाद ही यहाँ आकर सैटल हो गए थे। झा जी और भाभीजी बहुत ही सरल स्वभाव के दंपत्ति थे। सोनू और उसके परिवार से ज़्यादा मिलना तो नहीं हो पाया है क्योंकि अव्वल, वो लोग आते ही कम हैं, वो भी बहुत कम दिनों के

लिए। वैसे वो लोग भी संस्कारवान हैं....। अब उनकी क्या कहें, हमारे बच्चे भी विदेश में हैं। उनका दो - ढाई वर्ष में 'इंडिया' का एक चक्कर लगता है। उसमें भी इनको 'डेड लाइन' मीट करनी होती है अपने प्रोजेक्ट्स की। बेचारे भागते ही रहते हैं। बच्चों के बच्चे तो और भी 'क्लू लेस' या 'कंफ्यूज़' रहते हैं। उन्हें हमारी, और हमें उनकी भाषा ही समझ नहीं आती !" फीकी सी हँसी के साथ उन्होंने कहना जारी रखा "विदेशों में बच्चों को हम ही भेजते हैं इन्द्रधनुषी सपने दिखलाकर। हमारे बच्चे वहाँ बहुत मेहनत करते हैं, संघर्ष करते हैं और धीरे - धीरे वहाँ के माहौल में ढल जाते हैं। व्यवहारिक हो जाते हैं। हर बात को भावनात्मक कसौटी पर नहीं कसते। वैसे ये लोग अपने देश और परिवार से बहुत प्यार करते हैं किन्तु सपने पूरे करने, महत्वाकांक्षा पूर्ण करने और माता - पिता के प्रति कर्तव्य निर्वाह करने के बीच त्रिशंकु की सी स्थिति में फँस कर रह जाते हैं। अंत में हम जैसे लोग जो बूढ़े हैं, अकेले रह जाते हैं। कितने भी सुख सुविधाओं के साधन हैं पास में, पर ये सब संसाधन बच्चों के सानिध्य को पूरा नहीं कर पाते। एकाकी जीवन जीना ही हमारी मजबूरी है....।" भंडारी जी झा परिवार के बारे में बताते - बताते अपनी ही आपबीती सुना बैठे।

"मैंने कहीं पढ़ा था केवल एशिया में ही विश्व की अट्ठावन प्रतिशत वृद्धों की जनसंख्या है। भंडारी जी, विदेश में रहने वाले बच्चों की क्या बात करें, हम तो यहीं हैं, फिर भी कई बार माता - पिता को जब जरूरत हो तो पहुँच नहीं पाते। आप दुखी मत होईये।" संदीप ने बातचीत को हल्का करने का प्रयास किया, "बस मैं उम्मीद करता हूँ कि ये झा जी का बेटा आपसे संपर्क साधे, बल्कि सीधे देश ही आ जाए। सत्य तो यही है कि अम्मा को इस समय सबसे ज़्यादा अपने सोनू की जरूरत है।"

सत्येन्द्र का फोन नहीं आया था। नीरा को प्रतीक्षा भी थी और विश्वास भी था उसके फोन के आने का। एक ओर अम्मा के अपने पुत्र से मिलने की ख़ुशी थी दूसरी ओर अम्मा चली जायेगी, इसका दुःख भी हो रहा था। जाने कैसे अम्मा से नीरा को लगाव हो गया था। उसे पता था कि स्मृतिभ्रम के रोगी का उपचार नहीं होता और देखभाल दिन प्रतिदिन मुश्किल होती जाती है, फिर

भी आश्चर्यजनक रूप से घर के सभी सदस्यों ने अम्मा को उनकी सारी कमियों के साथ अपना लिया था।

लगभग चार दिन बाद सत्येन्द्र का फोन संदीप को आया। सत्येन्द्र ने आतुरता से अपनी माँ के विषय में पूछा और संदीप को कई बार धन्यवाद किया। संदीप ने सीधे ही मुद्दे पर आकर बात की.... "सत्येन्द्र ,आप इंडिया कब पहुँच रहे हो ? हमें आपकी माँ की न पूरी मेडिकल हिस्ट्री पता है, न वो इस स्थिति में हैं कि हमें कुछ भी बता सकें। वैसे वह शारीरिक रूप से स्वस्थ हैं, आप उसकी चिंता मत करो। बस अब जल्दी आ जाओ।"

फोन की दूसरी ओर चुप्पी थी। ये चुप्पी विचित्र थी। प्रतिक्षण की चुप्पी अब कानों को चुभ रही थी फिर भी संदीप ने संयम से काम लिया और सत्येन्द्र के उत्तर की प्रतीक्षा करता रहा। लगभग पांच मिनट बाद सत्येन्द्र गला साफ़ करके बोला "संदीप जी, मैं जल्द से जल्द आने की कोशिश कर रहा हूँ। मुझे ख़ुशी है कि मम्मी आप के पास है। मैं एक तरह से चिंतामुक्त हो गया। मैं एजेंसी से संपर्क करके राधा के बारे में पता लगाने की भी कोशिश कर रहा हूँ.... नहीं तो दूसरी केयर टेकर के लिए बात करने वाला हूँ। राधा ने धोखा दे दिया। उसके पैसे भेजना भी बंद कर दिया है मैंने। केयर टेकर अरेंज होते ही सीधे आपके ही पते पर भिजवा दूँगा ताकि आपको भी मम्मी की देखभाल करने में दिक्कत ना आये....।"

सत्येन्द्र की बात काटकर संदीप ने कहा, "अम्मा को केयर टेकर की नहीं,आपकी जरूरत है। एक बार आप आ जाओ फिर क्या और कैसे करना है वह तय कर लेना। तबतक आपकी माँ मेरे यहाँ सुरक्षित हैं। आप इसके लिए निश्चिन्त रहें ....।" फोन स्पीकर पर था। नीरा सत्येन्द्र की आवाज़ सुन सकती थी।

"नहीं, नहीं, मेरा वह मतलब नहीं था। मैं तो आ ही रहा हूँ। वो तो मैं इस लिए कह रहा था कि यदि कोई काम करने वाली मेरे पहुँचने से पहले आ जाय तो नीरा भाभीजी को आसानी हो जायेगी" सत्येन्द्र अब थोड़ा संभल कर बोलने लगा "अब आपसे क्या छिपाना....। दरअसल मैं जिस कंपनी में काम

करता हूँ, उसका कारोबार पूरे विश्व में फैला हुआ है। मैं उसके पूरे साउथ ईस्ट एशिया और ऑस्ट्रेलिया ऑफिस का काम देखता हूँ। हर साल इसी अवधि में इस पूरे एरिया के ऑफिशियल टूर पर रहता हूँ , लगभग एक महीने में पूरा कवर करना होता है और रिपोर्ट भेजनी पड़ती है । अभी जापान में हूँ, फिर कोरिया, ताईवान, थाईलैंड, फिलिपिंस होते हुए ऑस्ट्रेलिया जाना होगा....। मैं बीच में टूर छोड़ नहीं सकता। मुझे मम्मी के बारे में कुछ दिनों पहले पता चलता तो मैं ये टूर स्थगित कर देता कुछ समय के लिए। पहले इंडिया आकर मम्मी का सब बंदोबस्त करके फिर टूर पर जाता....। अभी मेरे लिए बहुत मुश्किल है....आप स्वयं जानते होंगे कि हम कितनी भी तरक्की कर लें, 'डेड लाइन' मीट करना कितना इम्पोर्टेन्ट होता है.... आई होप, मेरी बात समझ रहे होंगे !"

"आप ठीक कह रहे हैं। लेकिन कब क्या करना है ये प्राथमिकताएँ हम ही तो तय करते हैं। अभी आपका यहाँ होना सर्वोपरि है।" संदीप ने कहा।

"यदि मैंने टूर आधे में छोड़ दिया तो मेरा बहुत नुकसान हो जाएगा। देखिये, ठन्डे दिमाग़ से, व्यवहारिक रूप से सोचते हैं। मैं अभी आ जाऊँ या पंद्रह-बीस दिन बाद, मम्मी की हालत में कोई अंतर नहीं आने वाला है। यदि मैं टूर पूरा करता हूँ, टार्गेट अचीव करता हूँ, तो मेरी तरक्की के निन्यानवे प्रतिशत चान्सेस हैं। तरक्की के साथ पैसा भी बढ़ेगा और मैं मम्मी के लिए ज़्यादा अच्छा मेडिकल ट्रीटमेंट अफ़ोर्ड कर पाऊँगा !"

"परन्तु आपकी मम्मी वापस सामान्य जीवन नहीं व्यतीत कर पाएगी, चाहे कितना भी अच्छा इलाज हो उनका। ये तो आप समझ ही रहे हैं। फिर भी आप इतना तो सुनिश्चित कर ही सकते हैं कि अपनी जीवन यात्रा के अंतिम पड़ाव की ओर अग्रसर आपकी माँ को उनके परिजनों के बीच सम्माननित जीवन जीने का अवसर मिले।" संदीप के मुख पर निराशा के भाव थे। नीरा को भी सत्येन्द्र के इस अप्रत्याशित व्यवहार पर खेद हो रहा था।

थोड़ी देर असहनीय चुप्पी छाई रही फिर धीमे परन्तु स्पष्ट शब्दों में सत्येन्द्र ने अपना निर्णय कह सुनाया, "क्षमा चाहता हूँ संदीप जी। मैं अभी तुरंत नहीं आ पाऊँगा। मुझे आप स्वार्थी समझ सकते हैं लेकिन अभी मेरे

विचार से यही निर्णय सही रहेगा। मैं फिर भी जल्दी से जल्दी आने का प्रयत्न कर रहा हूँ....। दिल्ली वाले उस फ्लैट की भी डील करवानी है ताकि मम्मी के लिए जीवन भर के लिए फाईनेन्शिअल सिक्यूरिटी रहे और उनका इलाज भी सबसे बेस्ट हो....।"

"अम्मा को इमोशनल सिक्यूरिटी भी चाहिए....। खैर, मैं बात यहीं समाप्त करता हूँ। आप अपनी माँ के लिए निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र हैं। आप चिंता न करें, जब तक आप आते हैं, अम्मा हमारे यहाँ सुख से रह रहीं हैं.... ।" संदीप ने दूसरी ओर से उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना फोन रख दिया।

नीरा की गृहस्थी हमेशा की तरह ढर्रे पर चल रही थी। बच्चे अपनी पढ़ाई-कोचिंग में व्यस्त थे। संदीप ऑफिस में। अम्मा दिनों दिन सुस्त होती जा रहीं थी। हालाँकि संध्या के समय जब पूरा परिवार घर पर होता और सब एक साथ रात का खाना खाते तब अम्मा को बहुत अच्छा लगता। वो अपने 'सोनू' के गंजेपन की चिंता करती, कभी पुतुल के साथ सेल्फी खिंचवाती...., और कभी नीरा की शिकायत सोनू से करती कि नीमा रोज नहाने के लिए जोर डालती है !

पंद्रह - बीस दिन से एक महीने के ऊपर हो गया था, अभी तक सत्येन्द्र नहीं आया था। फोन भी नहीं आया था। कभी नीरा और संदीप के मन में विचार आता कि पुलिस में रिपोर्ट लिखवा दी जाए सत्येन्द्र के विरुद्ध। पर फिर ये सोच कर छोड़ देते कि यदि सत्येन्द्र पर केस बन गया तो उसके परिवार का क्या होगा ! वह अपने परिवार के पास विदेश भी नहीं जा सकेगा। भंडारी जी कभी - कभी आ जाते। सोसाइटी के लोग भी यथा संभव मदद कर दिया करते थे। नेहा और गौरव अपने माता - पिता के दैनंदिन संघर्ष को देख - समझ रहे थे। वे भी अपनी ओर से पूरा सहयोग कर रहे थे।

आखिर एक दिन रविवार को बिना किसी सूचना के सत्येन्द्र आ गया। संदीप भी उसी समय बाज़ार का काम निबटा कर घर लौटा था। औपचारिक परिचय के बाद सत्येन्द्र ने अपनी माँ से मिलने की इच्छा जताई।

"अरे, इसमें इतने संकोच से क्यों कह रहे हैं आप ! आप ही की माँ हैं.....। अभी नीरा से कहता हूँ ....।" संदीप ने नीरा को आवाज़ लगाई । नीरा पानी लेकर आयी । सत्येन्द्र ने विनम्रता से मना कर दिया । वह अपने साथ बोतल वाला पानी लेकर आया था । नीरा भी बैठक में बैठ गयी । उसने गौर किया, सत्येन्द्र बिलकुल अपनी माँ की तरह दिखता है । नीरा ने बताया कि अम्मा को लेकर बच्चे पास वाले मंदिर में गए हैं, बस अभी आते ही होंगे । नीरा के मन में संतोष था कि उसकी तपस्या पूर्ण होने वाली थी । अम्मा को उनका बेटा मिलने वाला था । संदीप ने सत्येन्द्र को मंदिर ले चलने की बात कही ताकि वह अपनी माँ से मिल ले ।

आशा के विपरीत सत्येन्द्र ने कहा, "मम्मी को लेकर बच्चे आते ही होंगे....। फिर मिल लूँगा....। मैं पहले आप लोगों का धन्यवाद कैसे करूँ, किन शब्दों में करूँ ये समझ नहीं आ रहा । क्षमा चाहता हूँ कि मैं लेट हो गया आने में । परन्तु मेरे लिए वह टूर बहुत जरूरी था । खैर, मैंने यहाँ वाले फ्लैट की डील कर ली है । सारा पैसा मम्मी के अकाउंट में डलवा रहा हूँ । संदीप जी, मेरे रिश्तेदार यहाँ इंडिया में रह नहीं गए हैं । जो हैं, वे ज़्यादातर विदेशों में ही हैं । मेरी बहन पूजा भी नहीं रही । मेरा मन यहाँ नहीं लगता । ये तो पापा की जिद थी इंडिया में ही रहने की । मेरी पत्नी के माता - पिता भी चार - छः महीनों के लिए इंग्लैंड या अमरीका, अपने बेटों के पास रहने आते हैं । अभी सोच रहा हूँ कि अगले दो तीन दिनों में घर के सामान को 'सॉर्ट आउट' कर लूँगा । ज़रूरी डाक्यूमेंट्स ,ज्यूलरी, फोटोस वगैरा ही रखने हैं मैंने । बाकी सामान निकाल दूँगा....।"

"अरे, फ्लैट बेच दिया ? तो आप कहाँ रुके हैं ? और अम्मा कहाँ रहेंगी?" नीरा चौंक गयी ।

"भाभी जी मैं तो होटल में रुका हूँ । मेरे लिए वही कन्विनिएन्ट है....। मम्मी के लिए वैसे भी ये फ्लैट बहुत बड़ा था । उन्हें तो कुछ याद भी नहीं है । सोचता हूँ, इसी लोकेलिटी में एक छोटा फ्लैट ले लेता हूँ । फुल टाइम दो 'मेड' रखेंगे जो मम्मी का पूरा ध्यान रख सके । मैं खुद हर चार - छः महीने में चक्कर लगा लिया करूँगा....। बल्कि उससे भी अच्छा सोचूँ तो यहाँ भी तो ऐसे

सीनियर मेमोरी केयर नर्सिंग होम होते होंगे जहाँ मम्मी जैसे पेशेंट्स रह सकते हों ! पैसे की कोई कमी नहीं होने दूँगा....।"

"भाईसाहब आप ये क्या कहा रहे हैं, मेरी कुछ समझ नहीं आ रहा !" नीरा सकते में थी, "नर्सिंग होम में ही रखना है तो अपने साथ ही ले जाइए और वहाँ के नर्सिंग होम में रखिये। कम से कम आपको इंडिया आना नहीं पड़ेगा।" नीरा कड़वाहट नहीं छिपा सकी।

"भाभी जी आप गलत समझ रहीं हैं। मम्मी जब ठीक थीं तब एक बार आयीं थीं। तब भी उनका वहाँ मन नहीं लगता था। अब तो सबकुछ भूल ही चुकीं हैं। अब कैसे मन लगेगा। यहाँ कम से कम जाने पहचाने चेहरे तो दिखते हैं यहाँ आस पास !"

"तो आप लोग वापस आ जाइए !"

"मेरे लिए पॉसिबल नहीं है ये सब....।" सत्येन्द्र सिर लटका कर बैठ गया।

"जब आपके पिता थे, तब आप कितनी बार इंडिया आते थे ?" संदीप के प्रश्न पर सत्येन्द्र थोड़ा अचकचा गया। तनिक रुक कर बोला, "दो साल में ही चक्कर लग पाता था। बच्चे बड़े हो गए हैं। उनकी पढ़ाई, अपनी और नमिता की छुट्टी आदि सबकुछ मैनेज करना पड़ता है ....।" मैं समझ रहा हूँ कि मेरी मम्मी के प्रति क्या ड्यूटी है।"

"ड्यूटी नहीं, रेस्पोंसिबिलिटी समझिये सत्येन्द्र जी। कर्तव्य और दायित्व में अंतर होता है। जब बच्चे छोटे होते हैं तो माँ - बाप उन्हें पाल - पोस कर बड़ा करते हैं, ये कर्तव्य की भावना से नहीं बल्कि दायित्व की भावना से करते हैं। वैसे ही जब वो लोग बूढ़े हो जाते हैं, अक्षम हो जाते हैं तब हमारा दायित्व हो जाता है कि हम उनकी ठीक तरह से देखभाल करें....। खैर छोड़िये....।"

"भंडारी जी बता रहे थे कि झा जी अपने अंतिम दिनों में बहुत अस्वस्थ रहने लगे थे। फिर भी आप नहीं आ पाए थे; उनके निधन हो जाने के बाद ही

आप आये थे.... वह भी अकेले ! उसके लगभग तीन वर्ष पहले आप सपरिवार आये थे ....।"

संदीप की बात को बीच में काट कर सत्येन्द्र बोला, "ये सब कहकर आप क्या इंगित करना चाहते हैं ?"

"कुछ भी नहीं। बस आपकी प्राथमिकताओं का वरीयता क्रम देख रहा हूँ।" संदीप कुछ और कहे उससे पहले बच्चे अम्मा को लेकर वापस आ गए। अपरिचित आगंतुक को देख कर बच्चे अन्दर चले गए। अम्मा भी मंथर गति से अन्दर जाने लगी। नीरा ने स्नेह से उनका हाथ थाम कर रोका और कहा, "अम्मा.... देखो तो कौन आया है ?"

संदीप और सत्येन्द्र बड़े वाले सोफे पर बैठे थे। अम्मा ने दोनों पुरुषों को देखा फिर अपने 'सोनू' के पास पहुँचकर प्रेम से बोली, "सोनू, देख, पुतुल ने कुल्फी नहीं खिलाई....। नीमा से बोलो न कि हलुवा बनाये, भूख लगी है।" फिर अम्मा घूमकर आगंतुक की ओर देखती हुई बोली "नमस्ते ! चाय पी के जाना। पूजा को बताती हूँ।"

अम्मा धीमी चाल चलते हुए अपने कमरे की ओर चली गयी। साथ में बोलती जा रही थी.... सोनू के पापा उठो, कबसे सो रहे हैं !

"अम्मा के लिए समय चक्र आपकी बहन पूजा के जाने के बाद लगभग रुक गया है। क्या आपने कभी यह समझने का प्रयत्न किया कि स्मृतिभ्रम की रोगी आपकी माँ के साथ वृद्ध हो चुके आपके पिता ने कैसे सबकुछ संभाला होगा ! और उनके जाने के बाद वह बिलकुल अकेली हो गयी। उनकी अवस्था एक अनाथ बालिका की तरह हो गयी। उन्हें फुल टाइम मेड नहीं, फुल टाइम बेटा, बहू, पोता पोती, परिजन चाहिए !" संदीप की आवाज़ कहते हुए भर्रा गयी।

"आज अम्मा ने आपको नहीं पहचाना ....। आप सोच सकते हैं कि डिमेंशिया के कारण होगा। पर आपके मन में कचोट नहीं उठी !?, क्या आपका अंतर्मन धिक्कार नहीं रहा ! क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि जब नीरा को मंदिर की सीढ़ियों पर बैठी आपकी माँ मिली थी तब उनकी अवस्था कैसी रही

होगी !.... वह एक मैली कुचैली साड़ी में थीं। बाल बिखरे हुए , पैरों में चप्पल नहीं, आँखें रो - रो कर सूजी हुईं ! बस सोनू की राह देखती हुई ! खैर, इन सब बातों का अब कोई अर्थ नहीं है। मैं आपका आशय समझ चुका हूँ। जब आप से फोन पर बात हुई थी तब से ही मेरे मन में खटक थी परन्तु मैं आपको 'बेनिफिट ऑफ़ डाउट' देना चाहता था। इसलिए आपके आने की प्रतीक्षा कर रहा था। अब सारे 'डाउट' दूर हो चुके हैं".... संदीप ने दृढ़ता से कहना जारी रखा, "यहाँ ऐसी कई संस्थाएँ हैं जो वृद्ध पुरुष या महिला को गोद देने की प्रक्रिया को सरलता से करती हैं। ये पूरी तरह से लीगल कार्यवाही के साथ होता है। ....तो मैं आपसे निवेदन करता हूँ, कि आप मुझे अम्मा का लीगल गार्डियन बना दें। मैं कानूनी तौर से उन्हें अपने परिवार का सदस्य बनाना चाहता हूँ।"

संदीप की बातों को अवाक होकर नीरा सुन रही थी। सत्येन्द्र को तो जैसे शॉक लग गया था। हकलाते हुए वह बोला, "यानि आप मेरी माँ को गोद लेना चाहते हैं ?"

"माँ तो जगत जननी होती है। हम मनुष्यों में कहाँ इतना साहस कि जन्म देने वाली को 'गोद' ले सकें ! परन्तु 'लीगली' अम्मा आप पर आश्रित हैं। आप उन्हें अपने बंधन से मुक्त कर दें तो वह बिना किसी चिंता के हमारे परिवार की सदस्य बनकर रह सकती हैं। अब अपने परिवार के साथ अम्मा का दायित्व भी मेरा है।"

नीरा भाव विभोर होकर संदीप की ओर देख रही थी। संदीप ने कहना जारी रखा, "हमें आपसे किसी भी तरह की आर्थिक मदद नहीं चाहिए। हमारे लिए जैसे हमारे माता पिता हैं, वैसे ही अम्मा है। हमारे बचपन में माँ बाप हमारी बीमारी के समय देखभाल में कोई कसर नहीं छोड़ते थे .... चाहे उन्हें कितनी भी समस्या आती होगी। अब हमारा कर्तव्य और दायित्व है कि जब उन्हें हमारी जरूरत है तो हम भी कोई कसर न छोड़ें। सत्येन्द्र जी, आप मेरी रिक्वेस्ट स्वीकार कर रहे हैं ना ? बस आप अम्मा को मुझे 'दत्तक' दे दें और सारी औपचारिक्ताएँ पूर्ण कर दें। और हाँ, आपसे हमारा वचन है कि जब भी आप चाहें, आप अम्मा से मिलने आ सकते हैं।"

सत्येन्द्र के पास कुछ था ही नहीं प्रतिवाद करने को। उसके पास पैसा था, परन्तु पैसों से वह माँ की स्मृतियाँ वापस नहीं ला सकता था। इधर उद्विग्न सा संदीप बैठक से उठकर फ्रिज के पास आ गया और पानी निकाल कर पीने लगा। बैठक से अम्मा का कमरा दिखता था। अम्मा अपने कमरे की खिड़की की ओर मुख किये हुए माला जाप कर रही थी। इस बात से बेखबर कि उनका जाया हुआ सोनू बाहर बैठा है, हारा हुआ ! सत्येन्द्र के पैर मानों पंगु हो गए थे जो अपनी माँ के कमरे में जाने की हिम्मत ही नहीं हो रही थी। तभी उसे माँ की आवाज़ सुनाई दी, "सोनू !, देख पापा उठ गए की नहीं !"

सत्येन्द्र के मुख से एक शब्द नहीं फूटा। लग रहा था, जैसे शरीर से आत्मा निकल गयी हो।

"पापा सो रहे हैं अम्मा। चलो, आपको कुल्फी खिलाकर लाता हूँ....। शुगर फ्री वाली ....।" संदीप ने डाइनिंग हॉल से ही कहा।

"हम भी चलेंगे.... !" बच्चों की एक साथ आवाज़ आई। बच्चों की खिलखिलाहट में अम्मा की हँसी भी शामिल थी।

जब पहली बार भंडारी जी से माँ के बारे में पता चला था तब सत्येन्द्र इस पक्के निर्णय के साथ भारत आने वाला था कि माँ के लिए यहीं, किसी सबसे अच्छे मेमोरी केयर नर्सिंग होम में रहने की व्यवस्था कर देगा। पैसों की और अच्छे से अच्छे इलाज की कोई कमी नहीं होने देगा। पर ऐसी अवस्था में माँ को अपने साथ कैसे ले जा सकता है ....! ना ही वह पूरी तरह यहाँ वापस आ सकता है। ऐसी परिस्थिति में नर्सिंग होम ही सही विकल्प लग रहा था। परन्तु यहाँ माँ को सही अर्थों में भरा पूरा प्रेम पूर्ण परिवार मिल गया था। इतना ही तो वह चाहती थी ! सब कुछ होते हुए भी सत्येन्द्र सब कुछ हार गया था। माँ भी। बोझिल कदमों से वह संदीप और नीरा के घर से बाहर आ गया।

****

पारिजात

आज सुबह से ही बहुत गर्मी थी और उमस थी। ऑफिस में सेंट्रल वातानुकूलन की व्यवस्था थी फिर भी ऐसा लग रहा था जैसे ए.सी. काम नहीं कर रहे थे। दोपहर होते - होते आसमान धूसरित बादलों से ढँक गया। चार बजे तक तेज हवाएँ चलने लगीं और तेज आंधी के साथ वर्षा भी आरम्भ हो गयी। राजवीर का ऑफिस सातवें माले पर था। बड़ी - बड़ी काँच की खिडकियों से बाहर का नज़ारा देखा जा सकता था। राजवीर एक बहुत ही बड़ी अंतर्राष्ट्रीय ऑटोमोबाइल कंपनी में काम कर रहा था। राजवीर और उसकी टीम के सदस्य कई दिनों से कड़ी मेहनत कर रहे थे। उसकी टीम को प्रोजेक्ट समयावधि से पहले पूरा करना था। इसकी सफलता पर निर्भर करता था कि टीम के लोग जर्मनी भेजे जा सकेंगे या नहीं। राजवीर की टीम के सदस्य उसका बहुत मान करते थे। राजवीर था भी बहुत मेहनती, अनुशासित और अपनी टीम को लीड करने वाला। उसी के कॉलेज के कुछ सहपाठी उसकी ही कंपनी में थे। परन्तु अधिकतर दूसरे प्रोजेक्ट्स में टीम मेम्बर थे। उन्हें राजवीर में आये अप्रत्याशित बदलाव से ईर्ष्या भी होती और आश्चर्य भी होता। कॉलेज वाले ज़माने से सर्वथा भिन्न था यह राजवीर ! तब का पढ़ाई, और क्लासेज में मन न लगाने वाला राजवीर अब कितना गंभीर और मेहनती हो गया था। वह कुशाग्र तो आरम्भ से ही था, बस उन दिनों अपनी पढ़ाई को गंभीरता से नहीं लेता था।

संध्या पूरी ढलने से पहले ही वर्षा रुक गयी थी। बादल छँटने लगे थे। आकाश में सूर्यास्त के समय की गुलाबी रंगत छा गयी थी। दूर पश्चिम की ओर के स्याह बादलों को अस्ताचलगामी सूर्य की रश्मियों ने रुपहली चमकीली सजावट कर दी थी। राजवीर अपने ऑफिस की खिड़की से यह नयनाभिराम दृश्य देख सकता था। उसकी टीम के सहयोगी ने सूचना दी कि उनका काम प्रायः पूरा हो गया था और परिणाम आशा अनुरूप ही आ गये थे। वह बहुत

प्रसन्न था। उसने तत्काल सभी सहयोगियों को बुलाया और खुशखबरी साझा की। टीम को पहले से ही पता था, बस अपने बॉस के बुलावे की प्रतीक्षा कर रही थी ! राजवीर ने औपचारिक घोषणा करके सभी को बधाई दी।

"सर, आज तो पार्टी बनती है !" किसी ने कहा।

"ज़रूर ! आज सबकी छुट्टी.... रात को देर तक काम करने की ज़रुरत नहीं है .... और पार्टी मेरी तरफ से। कहाँ जाना चाहते हो सब ?" राजवीर ने खुश होकर कहा।

"काफी तेज बारिश हुई है आज। मुझे तो मेट्रो से जाना है.... पार्टी अटेंड करूँगा तो घर पहुँचने में देर हो जायेगी .... सो आई विल गिव इट अ मिस !" एक ने कहा।

"अरे, क्यों परेशान होते हो। मैं छोड़ दूँगा" हरीश ने कहा। वह राजवीर का सहपाठी था, साथ ही में काम कर रहा था। राजवीर के प्रोजेक्ट लीडर होने से उसे कोई वैमनस्य नहीं था।

"अच्छा, पार्टी भी जल्दी से ही ख़त्म करना तुम लोग। सभी लोग घर टाइम से पहुँचना। इस वीक एंड पर ग्रैंड पार्टी करेंगे.... ठीक है ?" राजवीर ने कहा।

"सर, पास के ही मॉल में नया कैफ़े एंड बार खुला है, नाम भी बहुत अच्छा है.... 'पंच एंड पीच'.... वहाँ के 'मोक टेल' ड्रिंक्स और 'पंच' बहुत इंटरेस्टिंग हैं। फिर तरह - तरह के कॉफ़ी और खाने के लिए भी देशी - विदेशी ऑप्शंस हैं। फ्रूट सलाद बार भी है। वहीं चलते हैं।" एक ने सुझाया।

"दोस्तों, कहीं भी जाओ, बस 'ड्रिंक एंड ड्राइव' मिक्स नहीं करना और घर जल्दी पहुँचना। आज की पार्टी बस ट्रेलर समझो। वीक एंड पर बड़ा धमाका करेंगे, ठीक है ?" राजवीर ने सबको सावधान किया।

"एग्रीड सर, वैसे भी मैं जल्दी ही जाना चाहता था। माँ और दादी ने आज जगराता रखा है। सो आज नो ड्रिंक्स !" राहुल ने कहा।

“अरे बॉस, राहुल की मम्मी ने मातारानी से मन्नत माँगी है कि इस साल दिवाली तक राहुल की शादी फिक्स हो जाये तो पूरे ऑफिस के लिए ग्रैंड भंडारा करवाएंगी !” हरीश ने चुहल की। राहुल झेंप कर रह गया। ऑफिस में हरीश इस बात का ध्यान रखता था कि टीम के अन्य सदस्यों के बीच राजवीर का ‘बॉस’ होने का सम्मान बना रहे। अतः वह स्वयं भी पूरी औपचारिकता का ध्यान रखता था।

“वैसे सर, राहुल की हेयर लाइन नार्थ से साउथ रिसिड कर रही है, और वेस्ट लाइन ईस्ट से वेस्ट तक फ़ैल रही है, पर ‘राहुल’ को ‘अंजलि’ नहीं मिल रही है !” एक सहकर्मी ने चुटकी ली। भरी शरीर वाले राहुल ने दोस्तों के मज़ाक का बुरा नहीं माना। बनावटी गुस्सा दिखाकर अपने ज़रूरत से ज़्यादा चौड़े होते ललाट को एक हथेली से ढँकने का प्रयास करने लगा। सब सहकर्मी ठहाके लगाने लगे। हँसते हुए राजवीर ने सबके लिए ऑफिस में ही कॉफ़ी मँगवा दी। कॉफ़ी पीकर सब लोग अपने बॉस की ओर से दी हुई पार्टी को भरपूर एन्जॉय करने मॉल की ओर निकल गए। राजवीर ने पार्टी के लिए पहले ही राहुल के अकाउंट में पैसे भेज दिये थे। अपना बचा हुआ काम समेटकर राजवीर आज घर जल्दी पहुँचना चाहता था।

वह लिफ्ट के पास खड़ा था। लिफ्ट रुकते ही लिफ्ट से निकलने वाले पुरुष की ओर उसका ध्यान गया। अरे, यह तो निलेश है ! निलेश भी उसकी ओर देख कर ठिठक सा गया। फिर दोनों ही दौड़कर एक दूसरे से गले मिले। आखिर बहुत वर्षों बाद दोनों दोस्त मिल रहे थे !.... संभवतः ग्रेजुएशन के बाद।

“यार, तू यहाँ कैसे ?” राजवीर बोला।

“मैं भी यही सोच रहा हूँ कि तुझे कैसे पता चला कि ‘मेरे दिल में आज क्या है.... तू कहे तो मैं बता दूँ !’.... एक्चुअली तेरा ऑफिस यहाँ, साँतवें माले पर है, ऐसा मुझे पता चला तो मिलने चला आया” निलेश ने पुराने ज़माने के अभिनेता की चिरपरिचित अदा में सिर एक ओर झुका कर मुस्कुराते हुए और गुनगुनाते हुए कहा।

राजवीर हँस पड़ा और निलेश की पीठ पर धौल जमाते हुए उसकी टेढ़ी गर्दन को सीधा करने के लिए एक हथेली से सहारा दिया। फिर वह बोला, “तू यहाँ क्या ख़ाक छान रहा है.... मेरे विचार से तो तेरी ज़रुरत फिरंग लोगों को ज़्यादा थी न ! तभी तो तू उनकी सिलिकॉन वैली संभाल कर बैठा था....”

“मत पूछ यार ! सिलिकॉन वैली में या तो ‘सिली’ याने मूर्ख लोग हैं या ‘कॉन’ याने बहुत शातिर दिमाग के लोग बैठे हैं। वहाँ मेरे जैसे सीधे - सादे आदमी का गुजर बसर नहीं हो सकता था !” निलेश को अपने ‘सिलिकॉन’ के विशिष्ठ संधि विग्रह पर बहुत गर्व हो रहा था पर राजवीर ने ध्यान नहीं दिया।

“फिर भी.... क्यों आया वापस ? कब आया ?....और यहाँ कैसे ?”

“ठहर जा। सब बताता हूँ। चल कहीं बैठते हैं !” निलेश के ऐसा कहने पर राजवीर ने हामी भरी और दोनों ही लिफ्ट में दसवें माले पर जाने के लिए सवार हो गए जहाँ एक अच्छा थाई रेस्टोरेंट खुला था। वहाँ पहुँच कर राजवीर ने आर्डर किया और दोनों दोस्त बातें करने लगे। थोड़ी ही देर में वेटर ने कोल्ड ड्रिंक और आर्डर की डिशेस लाकर रखीं - पैड थाई (थाई फ्राइड राइस नूडल), टोफू सटाए (ग्रिल्ड टोफू), सोम टुम (कच्चे पपीते का सलाद) और खानोम बांग (थाई कोकोनट क्रेपे)। निलेश हर एक डिश का नाम जोर - जोर से पढ़ता और गर्दन हिलाता जा रहा था। इस बीच राजवीर ने सलीके से नैपकिन खोलकर अपनी गोद में रखा। फिर काँटे - चम्मच से भोजन का थोड़ा - थोड़ा हिस्सा दोनों की प्लेट्स में रखता गया। अपने इस पूरे उपक्रम से प्रसन्न होकर राजवीर मुस्कुराया। सबकुछ जैसे उसके नियंत्रण में, सुरक्षित था। निलेश भी प्रशंसा भरी दृष्टि से देख रहा था। अंततः वह बोला “यार राज, हम दो - चार साल अमरीका में रहकर भी बिदेसी नहीं बन पाए, और तुम कैसे इधर ही रह कर अंग्रेज के ताऊ बन गए ?!”

राजवीर बस मुस्कुराया और अपना काम जारी रखा। जब वह संतुष्ट हो गया तो कोल्ड ड्रिंक को उठाकर ‘चियर्स’ किया। दोनों दोस्त खाने पर टूट पड़े। राजवीर को हर अवसर के अनुरूप हमेशा साफ़ सुथरे कपडे पहनना, अच्छे से तैयार होना, जूते पोलिश से चमकते हुए, बालों का एक भी ‘बांका’ना

होना और सबसे सर्वोपरि 'फाइन डाइनिंग' करना बहुत अच्छा लगता था। उसका दृढ़ विश्वास था कि ऐसे हमेशा अनुशासित तरीके से तैयार रहने से आधी जंग तो वैसे ही जीत ली जाती है। फिर उसे अपनी क्षमताओं पर पूर्ण विश्वास था। तभी तो चार साल के छोटी समयावधि में वह अपनी कंपनी का अत्यंत महत्वपूर्ण ऑफिसर था। उसके निर्णय, उसकी राय बहुत महत्त्व रखती थी।

उसके विपरीत निलेश अल्हड़ या चिंतामुक्त स्वभाव का व्यक्ति था। छः महीने पहले भारत आ गया था। अच्छी नौकरी मिल गयी थी और उससे वह संतुष्ट था। निलेश ने ही फिर बात शुरू की, "यार राज, तू तो बिलकुल बदल सा गया है। देख अपने आप को, कैसा सूटेड - बूटेड रहने लगा है.... नहीं, मेरा मतलब है कि इसमें कोई बुराई नहीं है.... पर बताऊँ, मुझे वो कॉलेज वाला केयर फ्री राज याद आ रहा है।"

"हम्म ! 'पॉवर ड्रेसिंग' कहते हैं इसे ! समय की ज़रूरत है निलेश। इसलिए खुद को वैसे ही ढाल लेना चाहिए.... मेरी कंपनी का यह ड्रेस कोड है ऐसा समझ ले। और अब मुझे अच्छा लगने लगा है। अच्छे से तैयार रहना, खुद की और अपने सहयोगियों की ग्रूमिंग करते रहना .... दिखने में भी और काम में भी।" राजवीर ने कहा।

"बात तो सही है। कॉलेज का ज़माना और था। हम सब ही बेखबरी में जीते थे.... और लड़कियों पर मरते थे !" निलेश अपने ही वाक्य पर हँस पड़ा। राजवीर मुस्कुरा दिया।

निलेश बोलता गया, "धक्के में पास होते गए। ....और जब पी. जी. के लिए कॉलेज चुनने का समय आया तो अपने कम मार्क्स मुँह चिढ़ा रहे थे.... मैं तो फिर भी बॉर्डर लाइन से निकल गया.... कुछ लोग पीछे रह गए।" निलेश जल्दी - जल्दी 'खानोम बांग' पर हाथ साफ़ कर रहा था, इस बात से बेखबर कि जो 'पीछे रह गए थे' का उल्लेख वह कर रहा था, उसमें एक राजवीर भी था। राजवीर चुपचाप खाता रहा। कुछ क्षण बीत जाने के बाद ही निलेश को अपनी चूक का अनुभव हुआ। उसने धीमे से कहा, "लेकिन सोना भट्टी में तप कर ही तो कुंदन होता है, है ना ! राज, तुझे ही देख। बाय गॉड क्या तरक्की

कर रहे हो... मेरी गुड विशेस हमेशा तुम्हारे साथ हैं। हम जैसे जो लोग 'अमेरिकन ड्रीम्स' जीने के लिए गए थे। क्या झंडे गाड़ लिए हमने ?!"

राजवीर ने विषय बदला, "कहाँ रहता है आजकल तू ? कभी घर जरूर आना।.... और शादी - वादी कर ली या.... ?"

"नहीं यार, अभी ही तो इंडिया आया हूँ। थोड़ा बैंक बैलेंस तगड़ा हो जाय तो सैटल होने की सोचूँगा।" गंभीर होकर निलेश बोला। परन्तु वह ऐसा प्राणी ही नहीं था कि अधिक देर गंभीर रह सके। वेटर को और कोल्ड ड्रिंक लाने के लिए संकेत करके बोला, "तुझे निखिल याद है ? उसने वहीं, अपनी कलीग स्पेनिश लड़की से शादी कर ली। आशीष और प्रीती तो यहीं से शादी करके फिर वहाँ पहुँचे हैं। इन फैक्ट प्रीती मेरी ही पुरानी कंपनी में काम करती है। निधि, रेड्डी, जफ़र, समीर, डी. अरुणा, अक्षत, सौरभ.... सारे के सारे धीरे - धीरे अमरीका ही पहुँच गए हैं अपने बैच के ! और मुग्धा भी कैलिफोर्निया में ही एक जायंट आई. टी. कंपनी में है। अपनी टीम को लीड करती है।....वहाँ हम सब का सोशल मीडिया पर ग्रुप था। महीने में एक बार मिलने का ट्राई करते थे। ठहर, सबकी लेटेस्ट फोटो दिखाता हूँ। पता, सब बदल गए हैं, मेच्योर दिखने लगे हैं.... कुछ मोटे भी हो गए हैं, मेरी तरह !"

राजवीर को अपने पुराने सहपाठियों के बारे में जानने का बिलकुल मन नहीं था। सब बहुत अच्छे थे, किसी से कोई वैमनस्य नहीं था। बस उनके साथ राजवीर की अपने कॉलेज के अंतिम दिनों की यादें जुड़ी हुई थीं जो कि ह्रदय में शूल की भांति चुभी हुई थीं। कॉलेज के दिनों में राजवीर अपने मिलनसार स्वभाव के कारण दोस्तों में लोकप्रिय था। वह मेधावी था पर पढ़ाई को गंभीरता से नहीं लेता था। विज्ञान या कंप्यूटर के विषयों में उसके कॉन्सेप्ट्स बिलकुल साफ़ थे। सभी उससे मदद लेते थे। विशेषकर मुग्धा ! वह बहुत महत्वकांक्षी, बुद्धिमती लड़की थी। राजवीर भी उसकी मदद करने को सदा उद्यत रहता था। ग्रेजुएशन के बाद कम मार्क्स के कारण राजवीर अपनी युनिवर्सिटी के उस समय के सबसे अच्छे कॉलेज में पी. जी. के लिए प्रवेश नहीं ले पाया। राजवीर को बहुत दुःख हुआ। परन्तु उससे ज़्यादा दुःख इस बात से हुआ कि उसके साथ के अधिकतर लोगों का अच्छे कॉलेजों में प्रवेश

हो गया था। उसने अपना दुःख मुग्धा से कह सुनाया। वह स्वयं और मुग्धा की मैत्री को औरों से अलग, अतिविशिष्ठ मानता था। लेकिन अप्रत्याशित रूप से मुग्धा का रुख बहुत उदासीन था। बल्कि वह रुष्ट भी थी और उसने राजवीर को ही दोष दिया कि वो ही पढ़ाई के प्रति गंभीर नहीं था अतः परिणाम तो भुगतना ही पड़ेगा। ऐसे व्यवहार की आशा राजवीर को नहीं थी। फिर भी उसने अगले वर्ष और अधिक मेहनत करके उस प्रतिष्ठित कॉलेज में प्रवेश पाने का प्रण किया। राजवीर ने मुग्धा से एक वर्ष यहीं देश में रहकर नौकरी के अवसर ढूँढने का आग्रह किया ताकि जब राजवीर का भी पी.जी. हो जाए तो दोनों साथ में विदेश चले जाते। परन्तु मुग्धा इससे प्रभावित नहीं हुई। उसका मानना था कि राजवीर के लिए अपना एक वर्ष व्यर्थ करना तर्कसंगत नहीं है और उसने यह भी स्पष्ट कर दिया कि वह अपनी महत्वाकांक्षा को अवसर मिलने पर अवश्य पूर्ण करेगी और राजवीर के लिए प्रतीक्षा करने में समय नष्ट नहीं करेगी।

फिर क्या था, राजवीर के साथी उससे आगे निकल गए। राजवीर को मुग्धा के व्यवहार से बहुत धक्का लगा था। उसने अपने उसी पुराने कॉलेज से ही आगे पढ़ने का निर्णय लिया। धीरे-धीरे कॉलेज अलग होने के कारण सबका मिलना - जुलना कम हो गया फिर संपर्क भी कम होता गया। एक बार जब बाकी सब विदेश जाने की होड़ में पड़ गए, तो रहे - सहे संपर्क सूत्र भी टूट गए। राजवीर को कोई मलाल नहीं था। उसने बहुत अच्छा परिणाम लाया था। विदेश जाने के अवसर उसे भी मिले परन्तु वह नहीं गया। उसकी माँ उन दिनों बहुत अस्वस्थ रहा करती थी। पथरी का दर्द हमेशा रहने लगा था। पिता राष्ट्रीय बैंक में थे और स्थानांतरण होता रहता था; उन दिनों वह हैदराबाद में थे और राजवीर की माँ भी पिता के साथ ही रह रहीं थीं। हैदराबाद में उसकी माँ का पथरी का उपचार चल रहा था। दादी राजवीर के साथ में ही दिल्ली में रहती थी। बहनें बड़ी हो गयीं थी। एक कॉलेज के पहले वर्ष में थी और दूसरी नौवीं में थी। ऐसे में राजवीर को विदेश जाना उचित नहीं लगा था। उसका पहला कर्तव्य दादी का ध्यान रखना और बहनों के भविष्य सुरक्षित करने का था। अब उसे लगता कि मुग्धा के साथ विदेश जाने का उसका स्वप्न कितना अव्यवहारिक था ! जो हुआ, अच्छा ही हुआ था।

आज राजवीर अपनी नौकरी में बहुत सफल था और संतुष्ट भी था। बहनों की पढ़ाई ठीक चल रही थी और माँ - पापा भी स्वस्थ थे।

परन्तु ह्रदय पर एक तरफ़ा प्रथम प्रेम की असफलता की चोट तो थी ही ! अतः कभी - कभी टीस भी उठती थी। आज इस निलेश ने फिर घाव हरे कर दिए थे। वैसे मुग्धा से मिली ठोकर से एक बात अवश्य अच्छी हो गयी थी कि राजवीर बहुत महत्वाकांक्षी हो गया था। परिणाम स्वरूप उसने कम समय में ही बहुत सफलता प्राप्त कर ली थी।

निलेश, राजवीर के मन की उहापोह से बेखबर, सॉफ्ट ड्रिंक पीने में लगा हुआ था। फिर बोला, "मुग्धा याद तो है ना तुम्हें !, अरे वह करियर वाईस तो बहुत अच्छा कर रही है। पर पता है, उसका डाइवोर्स होने वाला है, ऐसा सुनने में आया है ! अच्छे पैकेज के साथ वह अटलान्टा जाना चाहती थी कंपनी बदल के। उसका पति चाहता था कि एक साल रुक जाते हैं.... कुछ फैमिली कमिटमेंट थे। मुग्धा नहीं मानी। उधर दुर्भाग्य से अटलान्टा वाला ऑफर भी हाथ से चला गया। अब डाइवोर्स पक्का है !"

'एक साल रुक जाते हैं' वाली बात पर राजवीर के मुख से व्यंगात्मक हँसी निकल आई। उसने भी मुग्धा को ठीक एक साल ही तो रुकने के लिए कहा था !

"तू 'गॉसिप आंटी' कब से बन गया है ? चल, खाना खा और दूसरी बात कर ....चल मेरी सुन.... मेरी टीम जर्मनी जा रही है दो महीने के लिए। मैं पिछले दो सालों में जापान, कोरिया और जर्मनी के कई चक्कर लगा चुका हूँ.... पर अपने पैर बहुत अच्छे से देश की धरती में गड़ा रखे हैं।" राजवीर ने विषय बदला।

"सही है बॉस, मानना तो पड़ेगा !" निलेश ने ह्रदय से राजवीर की प्रशंसा की.... "पर तू घोड़ी कब चढ़ रहा है ?"

"अक्षता का ग्रेजुएशन पूरा हो गया है। वह जॉब करेगी या एम्. बी. ए. करना चाहती है, ये उसे तय करना पड़ेगा। अजिता ने एक वर्ष का 'ड्राप' लिया है। फिर से एंट्रेंस एग्जाम देना चाहती है। यार, एक बार दोनों सही दिशा

पकड़ लें, अपने पैरों पर खड़ी हो जायें, तब अपने बारे में सोचूँगा।" राजवीर ने कहा।

"ह्म्मम.... तो मतलब अभी हमारे 'राज' को 'सिमरन' मिलने में देर है !... पर ये भी ठीक है, पहले परिवार, फिर बाद में ख़ुद पर ध्यान दो !" .... "सच में आज तुझसे मिलकर बहुत अच्छा लगा। अब मिलते रहेंगे। मैं यहाँ नौवें माले पर ऑफिस के काम से आया था। तेरा ऑफिस इसी बिल्डिंग में ही है, ऐसा जानते ही तुझसे मिलने चला आया। बाई द वे, ये थाई खाना बहुत अच्छा था। मैंने पहली बार खाया। थोरोली एन्जोयेड इट। अगली बार मेरी ओर से ट्रीट, पक्का...." निलेश बोला।

राजवीर ने मुस्कुराकर दोस्त को विदा किया। निलेश अपनी कार से आया था। राजवीर भी घर की ओर चल दिया। न चाहते हुए भी सारे रास्ते निलेश से हुई मुलाकात के विषय में सोचता रहा। मुग्धा को वह प्रायः भूल ही चुका था, निलेश ने याद दिलवा दी। घर आते - आते सिर में दुखने लगा था। अब ये लगातार दो - तीन रातों से काम करते रहने के कारण था या निलेश से हुई बातों के कारण था, राजवीर समझ नहीं पा रहा था। घर पहुँचते ही बहनों ने आतुरता से प्रोजेक्ट के बारे में पूछा। राजवीर की सफलता का सुनकर दोनों बहनें और दादी बहुत प्रसन्न हो गयीं। दादी ने तुरंत 'नज़र' उतारी। बहनों ने मिलकर फटाफट हलुवा बनाया। समोसे मँगवाये गये। पापा से विडियो कॉल पर बात हुई। मम्मी भी पापा के साथ ही थीं। वह दोनों भी बहुत खुश दिख रहे थे।

समोसों और हलुवे की पार्टी शुरू हो गयी। राजवीर का पेट भरा हुआ था। परन्तु बहनों और दादी के उत्साह पर पानी नहीं फेरना चाहता था। जितना बन पड़ा, सहयोग किया फिर कपड़े बदलने चला गया। नहाकर, कुरते पायजामे में राजवीर जब बैठक में आया तो देखा कि दादी और पोतियों की पार्टी अभी भी चल रही थी। उसने तुरंत सबको कहा, "दादी, अब रात वाली दवाइयाँ ले लो। अधिक देर तक जागना ठीक नहीं। समय पर सो जाना। और तुम दोनों ! जाओ अपने कमरों में जाओ और पढ़ाई करो .... ढील नहीं देनी है.... समय से सो जाना। सुबह पाँच बजे मैं उठा दूँगा। वाक पर जाना है न ?"

तीनों महिलाओं के मुख पर एक से शरारत के भाव थे। वो तीनों एक साथ नाटकीयता से बोल उठीं - "हर चीज़ समय से और अनुशासित तरीके से ही होनी चाहिए। बाद में पछताने से क्या फ़ायदा होगा !" अजिता एक कदम आगे बढ़ाकर बोली, "भाई की ज़िन्दगी का एक ही 'गोल' है - 'डिसिप्लिन इज़ अ रिलिजन, एंड कीपिंग बिज़ी, अ रिचुअल !"

राजवीर ने बनावटी गुस्सा दिखाते हुए कहा, "अजिता की बच्ची, ठहर अभी बताता हूँ ....तू कल चार बजे उठेगी। समझी !"

दोनों बहनें खिखिलाते हुए कमरों में भाग गयीं। दादी भी हँसते हुए बोली, "दोनों कमरे में भी जाकर थोड़ी देर तक तो ऐसे ही हँसती रहेंगी। बेटा, बता खाना गरम कर दूँ ? बड़ा थका हुआ दिख रहा है। सिर दुःख रहा है ? आ, सिर पर तेल मल दूँ।"

"नहीं दादी। मैं ठीक हूँ। दोस्त के साथ खाना खाकर आया हूँ। आपने खा लिया ? आप देर मत किया करो। दवाइयाँ समय पर ले लेना। मैं जाता हूँ सोने...." राजवीर जा ही रहा था कि पापा का कॉल आ गया, "बेटा राज, इससे पहले भूल जाऊँ,.... परसों, शनिवार को मेरे बचपन के दोस्त की बेटी, अपनी दादी यानि मेरे दोस्त की माँ को लेकर आ रही है, मेडिकल चेकअप के लिए। उमेश अंकल ! याद आया ? उनकी बेटी आ रही है। हमारे घर पर ही रुकेंगे। अम्मा जानती है उमेश को। उमेश की माँ याने प्रमिला चाची और अम्मा तो पक्की सहेलियाँ हुआ करती थीं। अम्मा से पूछना....वो लोग सुबह ही पहुँचेंगे...."

अब ये क्या मुसीबत है। राजवीर ने सोचा, परसों तो शनिवार है। अपनी टीम को पार्टी देने का वादा किया है। किसी रिसोर्ट में ले जाने की सोच रहा था। और अब ये अतिथियों का ध्यान रखना पड़ेगा। परन्तु पापा का आदेश था। बिना प्रश्न के पूर्ण करना था। राजवीर ने पूछा, "कितने बजे की फ्लाइट है ? मैं लेने पहुँच जाऊँगा। पर पहचानूँगा कैसे ? कौन सी बेटी आ रही है...., बिन्नी दीदी ?" बिन्नी, जहाँ तक राजवीर को याद था, उससे दो वर्ष बड़ी थी।

“अरे बेटा, बिन्नी की तो शादी हुए शायद पाँच - छः वर्ष हो गए, हम लोग नहीं जा पाए थे अटेंड करने....गिन्नी की भी शादी हो गयी है शायद.... खैर, मेरे ख्याल से बीच वाली बेटी आ रही है.... और वो लोग ट्रेन से आ रहे हैं। मैं तुम्हें ट्रेन और टिकट के डिटेल्स भेज रहा हूँ। बेटा भूलना मत। उनके लिए नया शहर है। थोड़ा ध्यान रखना। मैं कल बैंगलोर जा रहा हूँ, कांफ्रेंस है। मम्मी भी साथ जाएगी। कहीं भूल ना जाऊँ इसलिए आज ही बता रहा हूँ।”

“ठीक है पापा, आप डिटेल्स भेज देना।” राजवीर ने बुझे मन से कहा। दादी देख रही थी। राजवीर ने आने वाले मेहमानों के बारे में बताया। दादी बहुत खुश हो गयी कहने लगी, “अरे वाह प्रमिला आ रही है ? क्या हुआ है उसे ? बहुत सालों में मिलना हो पायेगा। बेटा, ठीक से उनकी मदद कर देना। रुद्रपुर से आ रहे हैं। उनके लिए ये नया शहर है न !”

“दादी, मुझे यह भी नहीं पता कि किस ट्रेन से आ रहे हैं ! खैर, पापा डिटेल्स भेज रहे हैं। मैं देख लूँगा। उन्हें अच्छे से होटल में भी रुकवा सकता हूँ जो उनके हॉस्पिटल के पास हो। हॉस्पिटल में ही प्राइवेट रूम भी बुक कर सकता हूँ। भाग - दौड़ नहीं करनी पड़ेगी ‘उसे’ .... वो उमेश अंकल की बीच वाली बेटी साथ आ रही है.... नाम नहीं पता मुझे।”

दादी उत्साह से बोली, “सिम्मी आ रही है ? अरे वो तो बड़ी समझदार बच्ची है। प्रमिला को कोई दिक्कत नहीं होगी।”

“ये तो बड़ी अच्छी बात कही आपने दादी। वो ‘सिम्मी’ संभाल ही लेगी। हम क्यों बीच में पड़ें। मैं उन लोगों को स्टेशन से लाकर उनके हॉस्पिटल के प्राइवेट रूम में ही पहुँचा दूँगा। ठीक है ?” राजवीर ने कहा।

“बेटा इतनी रुखाई से क्यों बात कर रहा है। तुझे पता नहीं उस परिवार के हम पर बहुत अहसान हैं। अभी हमें थोड़ा ही सही, कुछ वापस करने का अवसर मिला है तो हमें जरूर करना चाहिए।”

“चलो ठीक है दादी। कर दूँगा। बस ?” राजवीर को नींद आ रही थी। वह वार्तालाप समाप्त करना चाहता था।

शनिवार को तय समय पर राजवीर पुरानी दिल्ली रेलवे स्टेशन पहुँच गया। ट्रेन डेढ़ घंटा लेट थी। फिर 'आउटर' पर खड़ी कर देने के कारण आधा घंटा और लेट हो गयी। स्टेशन पर लोगों की रेल - पेल, प्लेटफार्म पर छिटपुट सामान बेचने वालों के शोर शराबे, गर्मी, प्लेटफार्म का साफ़ सुथरा न होना, और ट्रेनों की आवाजाही से होने वाले होर्न्स की आवाजें और इन सबसे ऊपर समय - समय पर होने वाले अनाउंसमेंट को सुनते - सुनते राजवीर के कान पक गए थे। हमेशा की तरह वह अवसर के ही अनुरूप साफ़ सुथरे कपड़े यानि जीन्स और टी शर्ट पहने हुए था। आँखों पर काला चश्मा था। रह - रह कर घड़ी देख रहा था। उसे रेल्वे स्टेशन आये हुए लगभग दस साल तो हो ही गए होंगे ! वह स्टेशन के वातावरण से बिलकुल सामंजस्य नहीं बैठा पा रहा था।

शनैः शनैः करके अंततः ट्रेन प्लेटफार्म पर आ खड़ी हुई। राजवीर बोगी नंबर और टिकट नंबर के अनुसार भागकर आगे गया। परन्तु भीड़ इतनी थी कि जैसे कुछ ठीक से हो ही नहीं पा रहा था। ये तो अच्छा ही था कि यह ट्रेन का अंतिम स्टेशन था, अतः चढ़ने वालों की भीड़ नहीं थी ! राजवीर ने मन ही मन धन्यवाद किया इन अतिथियों को इस ट्रेन का चुनाव करने के लिए। वह दूर ही खड़ा रहा। थोड़ी भीड़ छंट जाय तो आगे जाने की सोची। वैसे भी एक बूढ़ी महिला और उसके साथ एक युवती, ऐसे यात्री जोड़े कम ही होंगे ! वह ढूँढ ही लेगा।

भीड़ कम हो गयी थी। उसने देखा, बोगी के दरवाज़े से एक युवती हाथ में एक बड़ी अटैची लेकर उतरी। अटैची थोड़ी ही दूर प्लेटफार्म पर रखकर पुनः दरवाज़े तक गयी और पास ही रखी एक और अटैची तथा एक बैग को उतारा। फिर वह अन्दर गयी और एक बूढी महिला को सहारा देकर नीचे उतारा। बूढ़ी महिला सलवार कमीज़ पहने हुए थी और हाथ में छड़ी थी। बाल पूरे पके हुए थे। युवती ने स्नेह से उस बूढी महिला के सिर पर हाथ फेरा और संभवतः पुछा कि क्या वह ठीक है। जिस पर वह महिला मुस्कुराकर हामी भरने लगी। युवती ने बोतल का पानी उसे पीने को दिया और स्वयं मोबाइल निकालकर फोन करने लगी। उस युवती ने नीली जीन्स और भूरे रंग की कुर्ती पहन रखी थी। घुंघराले बाल कसकर पीछे क्लिप में बाँध रखे थे। पैरों में

स्पोर्ट्स शूज़ थे। राजवीर को विश्वास हो चला था कि ये दोनों ही उसके घर आने वाले अतिथि हैं। परन्तु दो बड़ी अटैचियाँ? केवल चेकअप के लिए ही आये हैं, या रहने! तभी उसका फोन बजने लगा। अपरिचित नंबर था। उसने उठाया। दूसरे ओर से एक महिला का स्वर था, "हेल्लो, क्या मैं राजवीर जी से बात कर रही हूँ?"

"उह, हाँ, राजवीर बोल रहा हूँ ....आप ?.... आप सिम्मी बोल रही हैं?" राजवीर ने अनुमान लगाया। वह उस प्लेटफार्म वाली युवती की ओर मुड़ा। वह भी मुड़कर उसे ही देख रही थी। दोनों में जैसे परस्पर मूक संवाद हुआ और वे दोनों ही एक दुसरे की ओर आगे बढ़े। औपचारिक परिचय हुआ। राजवीर ने आगे बढ़कर सिम्मी की दादी के चरण छुए। राजवीर ने कुली लेने की बात की जिसे सिम्मी ने विनम्रता से मना कर दिया। वह बोली, "आप बस दादी का हाथ थाम कर चलिये। वैसे तो वह छड़ी के सहारे चल लेती है परन्तु स्पीड कम ही रहती है .... हाँ, हाथ पकड़ लिया जाय तो थोड़ा जल्दी चल लेती है। सामान की चिंता मत करिये, ये मैं सब संभाल लूँगी।"

राजवीर का ध्यान एक विशिष्ठ बात पर गया। सिम्मी के हाथों में एक छोटी सी मलमल के कपड़े की पोटली थी जिसमें से पारिजात के फूलों की भीनी भीनी सुगंध आ रही थी। पोटली की डोरियों को सिम्मी ने अपनी बैग से बाँध लिया। राजवीर कुछ कहे, इसके पहले सिम्मी ने दादी का हाथ उसकी ओर बढ़ा दिया। सिम्मी ने बैग कन्धों पर ले लिया और दोनों अटैचियाँ खींचकर चलने लगी।

प्लेटफार्म पर भीड़ बहुत कम हो गयी थी अतः चलने में समस्या नहीं आ रही थी। राजवीर ने एक दो बार अटैची ले लेने का आग्रह भी किया परन्तु सिम्मी ने मुस्कुराकर मना कर दिया। स्टेशन के बाहर आकर कार के पास पहुँच गए वो लोग। दादी थक गयी थी। अटैचियाँ कार के बूट में रख दी गयीं। राजवीर स्वयं ही कार चलाकर लाया था। आज ड्राईवर नहीं था। राजवीर को एक क्षण असमंजस हुआ। यदि ये दोनों पीछे बैठ जाते हैं तो वह 'ड्राईवर' जैसे लगेगा। यदि किसी एक को आगे बैठने के लिए कहता है, तो किसे कहे! या न कहे.... ऐसे ही चलने दे.... !

“राजवीर, इफ यू डोंट माइंड, क्या दादी आगे बैठ सकती है ? उनके घुटनों के लिए थोड़ा आसान हो जायेगा.... वैसे कोई बात नहीं। वह पीछे भी बैठ जाएगी।” सिम्मी ने पुछा।

“बस बेटा, ये बूढ़े हो चुके घुटनों का ही तो सारा झमेला है, जो ऑपरेशन कराना है। वैसे तो सारी हड्डियाँ ही बूढ़ी हो गयीं हैं.... अब क्या - क्या बदल सकते हैं ! पर ये बच्चे माने तब न !” दादी ने प्यार से सिम्मी के सिर पर चपत लगाई।

“नहीं दादी, क्या बात कर रहे हैं आप। आईये न, आप आगे बैठिये।” राजवीर ने आगे बढ़कर आगे की सीट का दरवाज़ा खोला और ख़ुशी से दादी को आगे बैठने में मदद की। सिम्मी ने उसकी दुविधा दूर कर दी थी ! सिम्मी पीछे बैठ गयी। रास्ते भर कोई विशेष बात नहीं हुई। सिम्मी पीछे बैठी लगातार मोबाइल पर कुछ देख रही थी। दादी खिड़की से बाहर इस बड़े शहर की रंगत और भव्यता देखकर बुहत स्तंभित थी। पहली बार राजवीर को चुप रहना अखर रहा था। वह रेडियो या म्यूजिक सिस्टम भी नहीं चला पा रहा था ये सोचकर कि क्या पता ऐसा करना इन लोगों को असभ्यता ना लगे। आखिर उसने ही बात की, “दादी, आप लोग पहली बार आ रहे हैं या पहले भी आ चुके हैं ?”

“अरे बेटा, बहुत साल हो गए उमेश के साथ आई थी, तुम्हारी सबसे छोटी बहन के पहले जन्मदिन पर !” क्या नाम है उसका, बड़ा प्यारा नाम है... ममता ने रखा था। ....याद आया, अजिता ! यही है ना ?”

राजवीर ने मुस्कुराकर हामी भरी। सिम्मी अनवरत अपने फोन पर लगी हुई थी। राजवीर की कार पारिजात की भीनी सुगंध से भर गयी थी। उसे उत्सुकता हुई। उसने पूछ ही लिया, “ये पारिजात के फूल वहाँ से लाने का कोई विशेष कारण है दादी ?” प्रश्न वैसे उसने सिम्मी से पूछा था ! सिम्मी का मुँह खुला कुछ कहने को, परन्तु दादी ने बोलना शुरू कर दिया, “अरे, ये फूल सिम्मी को बहुत पसंद हैं .... सफ़ेद, नन्हें - नन्हें फूल होते हैं, परन्तु खुशबू बहुत ही अच्छी होती है। ये तो वहाँ घर से तोड़कर लायी है कि अस्पताल में मेरे

सिरहाने रखेगी। कमरा खुशबू से भर जायेगा तो मुझे ऑपरेशन के बाद अच्छा लगेगा .... और घर के करीब लगेगा ! भोली है बच्ची !" राजवीर मुस्कुरा दिया। सिम्मी खिन्न हो गयी। अब ये सब बताने की क्या आवश्यकता थी ! राजवीर ने बात करने की गरज से कहा, "दादी, आपको शहर बदला हुआ लग रहा है ?"

"शहर तो बहुत बदल गया है बेटा।" चश्में के पीछे से झाँकती उनकी सूनी आँखें जैसे बहुत कुछ कहना चाहती थीं, "पता है, ममता का मायका यहीं का है.... अब तो कोई नहीं रहता यहाँ.... उमेश का रिश्ता तुम्हारे पापा ने ही तो कराया था !" प्रत्युत्तर में राजवीर पुनः मुस्कुराया। अच्छा ! तो पापा और उमेश अंकल की दोस्ती इतनी पुरानी है ! वह सोचने लगा। उमेश अंकल स्वयं क्यों नहीं आये। उन लोगों का रुकना, हॉस्पिटल में दिखाना, ऑपरेशन के बाद फिर से दिखाने के लिए आना .... ये सब काम वह स्वयं ही कर लेते ! उनकी बेटी को आने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। इन सबसे भी बड़ी बात, मैं बिलकुल फ्री रहता इस पूरे झमेले से !

राजवीर अपने अन्तर्मन से वार्तालाप करते हुए घर कब पहुँच गया, इसका उसे भान ही नहीं रहा। घर पर सब आतुरता से प्रतीक्षा कर रहे थे। विशषकर राजवीर की दादी। दोनों दादियों का भावुक होकर गले मिलना सच में देखने लायक था। सच में लगता था पक्की सहेलियाँ मिल रहीं थीं। अक्षता और अजिता सिम्मी से औपचारिकता वश मिलीं। स्वाभाविक था, क्योंकि पहली बार मिल रहीं थी। राजवीर को अंतर नहीं पड़ने वाला था। ये लोग थोड़े समय के लिए ही आये थे। तो यदि उसकी बहनें इस लड़की से ज़्यादा नहीं भी मिलतीं हैं तो कोई बात नहीं। वैसे भी सिम्मी अपनी दादी के इलाज में और अक्षता और अजिता अपनी पढ़ाई में व्यस्त रहने वाले थे। चलो, एक दो दिन की बात है। घर के गेस्ट रूम में रहने की व्यवस्था कर ही दी गयी है; फिर ये हॉस्पिटल के रूम में चले जायेंगे या यदि ऑपरेशन की अभी आवश्यकता नहीं है तो वापस चले जायेंगे। राजवीर ने स्वयं को ही समझाया और वह अपनी टीम को पार्टी देने के लिए बुक किये हुए रिसोर्ट चला गया।

जब राजवीर वापस आया तो रात बहुत हो चुकी थी। घर में सब सो चुके थे। अगला दिन रविवार होने के कारण घर की चहल - पहल थोड़ी देर से आरम्भ होती थी। देर ही सही, फिर भी राजवीर सुबह साढ़े आठ बजे तक नहा - धोकर, तैयार होकर नाश्ते की टेबल तक आ गया था। उसने हमेशा की तरह बहनों को बुलाया। वे दोनों अलसाते हुए पहुँचीं।

"क्या भैया, एक दिन तो थोड़ा ज़्यादा देर सोने दिया करो.... बिलकुल हॉस्टल वार्डन की तरह नियम - क़ानून बना कर चलते हो आप !" अजिता ने शिकायत की।

"अरे बेटा, जल्दी उठने में बुराई ही क्या है। देखो, सिम्मी और प्रमिला तो कबके उठकर हॉस्पिटल जा भी चुके !" दादी ने सबके लिए नाश्ता लगाते हुए कहा।

"अरे, कितने बजे गए ? कैसे गए ?....दादी, मुझे उठा देतीं आप.... मैं उन्हें छोड़ आता।" राजवीर ने चौंक कर कहा।

"अरे बेटा, कहाँ रुकने वाले थे वो लोग ! नाश्ता भी नहीं किया उन लोगों ने" दादी ने दुखी होकर कहा।

"चिल भैया, कैब करके गए हैं। सिम्मी ने रात को ही कैब वाला 'ऐप' डाउनलोड करके सबकुछ सीख लिया था .... बहुत 'कूल' है वह लड़की, आई मस्ट से !" अक्षता ने कहा। सब नाश्ता खाने लगे।

राजवीर थोड़ा अनमना हो गया। उसे स्वभाववश सबकुछ अपने नियंत्रण में रखना भाता था। कल से ये आगंतुक भार लग रहे थे परन्तु अपने पिता को दिए वचन के कारण राजवीर उन लोगों के प्रति स्वयं का कर्तव्य समझ रहा था। उसके मन में विचार आया कि एक बार तो उससे प्रमिला दादी या 'वह' सिम्मी कह देती तो वह अवश्य ही जल्दी उठकर उन्हें हॉस्पिटल ले जाता। ऐसा करने में उसे प्रसन्नता होती। ये शहर उनके लिए नया है। फिर ये लोग अपेक्षकृत छोटे शहर से आये हैं। कभी - कभी कुछ टैक्सी वाले भी बदमाश होते हैं। नए लोगों को झट से पहचान लेते हैं, कहीं कुछ अनहोनी हो जाय तो....! और ये सिम्मी और उसकी दादी बड़े दुस्साहसी बनती फिर रहीं हैं कि

अकेले ही सब मैनेज कर लेंगी ! और पता नहीं ये दादी की घुटनों की समस्या कितनी गंभीर है, कहीं कुछ और परेशानियाँ तो नहीं हैं, हॉस्पिटल में सब कुछ ढूँढ लेंगी या नहीं.... कम से कम बताना तो चाहिए था....

"क्या सोच रहे हो भैया ? कब से कह रही हूँ कि अचार देना, आप सुन ही नहीं रहे हैं !" अजिता बोली तो राजवीर की विचारों की श्रृंखला टूटी। उसने जल्दी से पराठा खाया और दादी से कहा, "मैं जाता हूँ हॉस्पिटल। देखता हूँ, शायद उन्हें कुछ ज़रुरत हो तो.... ।"

राजवीर हॉस्पिटल पहुँचा और ओपीडी में पता करके वह रेडियोलोजी डिपार्टमेंट तक पहुँच गया। उसका स्कूल के समय का एक दोस्त इसी डिपार्टमेंट में पदस्थ था। उसी से राजवीर ने सिम्मी की दादी के विषय में पूछताछ की। तभी उसने देखा कि सिम्मी अपनी दादी को सावधानी से व्हीलचेयर में बैठाकर 'एक्स रे' कक्ष से बाहर, पास ही बने प्रतीक्षालय कक्ष की ओर ला रही थी। राजवीर को देखकर उसके चेहरे पर स्मित पसर गया। दादी भी प्रसन्न हो गयी। सिम्मी बोली, "अभी दादी के चेस्ट और घुटनों का एक्स रे हो गया है। सबसे पहले तो ब्लड सैंपल ही देना था। अब दो घंटे बाद फिर देना है। शुगर की जाँच के लिए। अभी दादी को कुछ खिला देती हूँ....।" सिम्मी ने राजवीर की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा किये बिना बैग से टिफ़िन निकालकर पराठा रोल निकालकर दादी को दे दिया।

ओह, तो घर से जल्दी इसलिए आये क्योंकि खाली पेट ब्लड सैंपल देना था। राजवीर ने शीघ्र ही अनुमान लगाया। सिम्मी ने औपचारिकतावश राजवीर को भी नाश्ता करने का आग्रह किया जिसे उसने मना कर दिया।

"अभी और क्या - क्या टेस्ट बचे हैं ?" राजवीर ने जानना चाहा।

" सी.टी. स्कैन और एम्.आर.आई. भी कराना है। दादी अभी बहुत थक गयी है। उन्हें घर ले जाना होगा। वैसे मैंने एम्.आर.आई. के लिए कल का नंबर लगा दिया है। परन्तु सी.टी. स्कैन तो लगता है,आज ही करा लेना ठीक रहेगा।" सिम्मी ने दादी को पानी पिलाया और थरमस खोलने लगी। उसने फिर राजवीर को चाय 'ऑफर' की जिसे राजवीर ने विनम्रतापूर्वक मना कर

दिया। सिम्मी ने स्वयं भी नाश्ता किया। राजवीर का वास्तव में कोई काम नहीं था यहाँ, कोई आवश्यकता ही नहीं दिख रही थी। फिर भी वह वहीं रुका रहा। अपने मोबाइल पर मेसेज देखता रहा, कुछ अप्रासंगिक कॉल भी किये। तात्पर्य यह, कि वह वहीं रुका रहना चाहता था ताकि यदि उसकी मदद की आवश्यकता रही तो वह उपस्थित रहे। सिम्मी और उसकी दादी का नाश्ता हो गया था। वह राजवीर की ओर अभिमुख होकर बोली, "दादी को सी.टी. स्कैन के लिए ले जा रही हूँ। पता नहीं कितना समय लगे। फिर एक बार और ब्लड सैंपल देना होगा, उसके बाद हम वापस आ जायेंगे। ....मैं मैनेज कर लूँगी, यू डोंट वरी।"

"नहीं, मैं रुकता हूँ। दादी के टेस्ट हो जाने दो। फिर साथ चलते हैं।" राजवीर ने दृढ़ता से कहा।

"कोई फॉर्मेलिटी नहीं है...."

सिम्मी की बात को बीच में काटते हुए वह बोला, "नो, इट्स माय ड्यूटी....चलो सी.टी. स्कैन के लिए चलते हैं। कल से हॉस्पिटल आना हो तो ड्राईवर के साथ आना। मैं दूसरी कार भेज दूँगा।"

"सच में आवश्यकता नहीं है। मैं कर लूँगी.... ।"

"बस भी कर सिम्मी, इतनी देर से बेचारा बोल रहा है, क्यों ना - ना कर रही है बेटी ?" दादी ने अपनी निष्ठा राजवीर के प्रति दर्शा दी। सिम्मी चुप हो गयी। वह मुस्कुराकर बोली, "अच्छा दादी, जैसा आप कहें !" फिर रुद्रपुर वाले डॉक्टर के लिखे हुए पर्चे ठीक से फाइल में जमाने लगी। राजवीर को अपनी बात मनवाकर आत्मिक शांति मिली। जैसे पूरी परिस्थिति उसके नियंत्रण में आ गयी थी। राजवीर ने पहली बार सिम्मी को गौर से देखा। वह दुबली - पतली लड़की थी परन्तु मजबूत काठी की लगती थी जैसे स्कूल या कॉलेज में किसी हाई एनर्जी स्पोर्ट्स से जुड़ी हुई हो .... हमेशा स्पोर्ट्स शूज भी पहने रहती। मुखपर निरंतर शांत भाव पसरा रहता जिससे सुन्दरता की प्रचलित परिभाषा के अनुसार न होते हुए भी वह आकर्षक लगती थी। विशेषकर सिम्मी के होंठ हलके से ऊपर की ओर मुड़े हुए थे। अतः वह यदि मुस्कुरा नहीं भी

रही हो तो भी उसके मुख की ओर देखने पर ऐसा लगता कि हल्का सा स्मित होठों पर उपस्थित रहता। सिम्मी के मुख को देखकर ही राजवीर को यह अनुभव हुआ था कि आखिर सिम्मी की दादी की हालत इतनी भी बुरी नहीं है ! ऑपरेशन सफल ही रहेगा - सिम्मी के स्मित का इतना सकारात्मक प्रभाव था।

हॉस्पिटल के काम पूरे करके वे तीनों घर वापस आ गए। दादी हक़ से आगे बैठी और सिम्मी पीछे ! किसी ने कार में बैठने की इस 'व्यवस्था' का बुरा नहीं माना। घर पर राजवीर की दादी ने अपनी सहेली का सब कुशल क्षेम पुछा, बहनें सिम्मी के साथ रसोई में जाकर दोपहर के खाने का प्रबंध देखने चली गयीं और बतियाने लगीं। राजवीर सोचने लगा कि इनको आकर मुश्किल से २४ घंटे ही हुए थे और सब इतना हिलमिल गए थे, जैसे लगता था कई वर्षों से आना - जाना लगा हुआ हो ! उसको सिम्मी के बारे में जानने की उत्सुकता भी होने लगी और साथ ही में ईर्ष्या भी होने लगी कि कैसे इतने कम समय में सिम्मी ने उसकी बहनों का विश्वास जीत लिया था।

अगले दो दिन सिम्मी और दादी राजवीर के आग्रह पर उसकी ही कार से हॉस्पिटल गए। सारी जाँच हो चुकी थी। राजवीर अपने ऑफिस के और घर के अन्य सदस्य अपनी – अपनी दिनचर्या में व्यस्त हो गए थे। एक बात राजवीर को खटकती थी। राजवीर जब वापस लौटता, तो सिम्मी और उसकी दोनों बहनें बतियाते हुए मिलती थीं। बड़ी गहरी दोस्ती सी हो गयी थी उनमें ! अनुशासन और सर्वदा एक पाबन्द दिनचर्या का पालन करने वाला राजवीर अपनी बहनों को हँसते, खिलखिलाते देखता तो उसे लगता कि इस तरह तो दोनों अपना समय व्यर्थ गँवा रहीं हैं.... ये सिम्मी को तो पढ़ाई नहीं करनी है, लेकिन इन दोनों का बहुमूल्य समय व्यर्थ जा रहा है। राजवीर को देखते ही दोनों बहनें भाग जातीं, सिम्मी भी सिर नीचे करके अपनी दादी के पास चली जाती। यह सब देख राजवीर से नहीं रहा गया। उसने अपनी बहनों को समय का सदुपयोग करने के लिए बहुत देर तक समझाया। परिणाम यह हुआ कि अब उसे शाम वाली 'गप्पों की महफ़िल' नहीं दिखती थी। सबकुछ वैसा ही हो गया था जैसा कि वह चाहता था - उसके नियंत्रण में !

राजवीर का ध्यान गया था कि रात के खाने के समय प्रायः रानी मौसी, जो उनकी 'कुक' थी; का हाथ बँटाने सिम्मी रसोई में पहुँच जाती। कभी राजवीर की दादी के सिर में तेल मलने या पैर दबाने के लिए बैठी हुई दिखती.... साथ में उसकी अपनी दादी तो होती ही ! सुबह के नाश्ते के समय भी सिम्मी ही पहले नंबर पर होती - रानी मौसी के साथ रसोई में मदद करती हुई। दोनों की हँसी सुनाई देती। दो दिनों से अक्षता और अजिता भी जल्दी उठ जाते थे।

राजवीर की असहजता बढ़ती जा रही थी। इतने कम दिनों में ये सिम्मी जैसे पूरे घर पर छा गयी थी। मजे की बात यह थी कि कहीं कोई 'अनुशासन' नहीं टूटा था, बहनें ठीक से पढ़ रहीं थीं, दादी अपनी दोस्त के साथ घंटों बतियाते रहती, तीनों समय का खाना, दवाइयाँ आदि सबकुछ सही समय पर हो रहा था। राजवीर के स्वयं की दिनचर्या में कोई बदलाव नहीं आया था। जैसा वह चाहता था, वैसा ही पौष्टिक खाना बन रहा था। कोई देर रात तक टीवी नहीं, सुबह सब समय पर उठ जाते। राजवीर सिम्मी का सामना करने से बचता था क्योंकि उसे पता था कि घर में तीनों युवतियों की गहरी छनती दोस्ती में रुकावट उसी ने डाली थी ! इन सब में रोचक बात यह भी थी कि यदि राजवीर और सिम्मी का आमना - सामना हो जाय तो सिम्मी बहुत ही सरलता से बात करती थी। बस राजवीर की ही असहजता का कीड़ा मन और मस्तिष्क में कुलबुलाता रहता था ! उसके मन में यही विचार आता कि 'ये' लोग एक बार चले जायें तो ये विचित्र कुलबुलाहट समाप्त हो !

इधर सिम्मी की दादी ऑपरेशन के लिए मानसिक रूप से तैयार थी। किन्तु एक समस्या आ गयी थी। जो डॉक्टर ऑपरेशन करने वाला था, उसे अत्यंत महत्वपूर्ण काम के कारण एक सप्ताह के लिए विदेश जाना पड़ गया। चूँकि दादी का ऑपरेशन एक इमरजेंसी नहीं थी, और वह एक सप्ताह - दस दिन आराम से रुक सकती थी, अतः डॉक्टर ने दस दिन बाद का दिन तय कर दिया। अब मुख्य समस्या सिम्मी और दादी के रुकने की थी। वैसे ही यहाँ आकर उन्हें चार - पाँच दिन तो हो ही गए थे। राजवीर के घर का आगत्य और कितने दिनों तक स्वीकारते। घर में सभी लोगों ने इतने अपनेपन से रखा था,

सभी सुख - सुविधाओं का ध्यान रखा था। सिम्मी कृतज्ञ थी और जानती थी कि इस जन्म में तो कभी इनकी तुलना में इतनी ही अच्छी देखभाल वह नहीं कर पाएगी इन लोगों की। किन्तु इतने दिनों तक होटल में रुकने का खर्च उठने का सामर्थ्य नहीं था। सिम्मी अपने सीमित बजट को जानती थी। दादी भी अपनी पोती की चिंता समझ रही थी। इधर उन्हें ये भी पता चला था कि अजिता के मामा - मामी दो दिनों में आने वाले थे। उन्हें अमरीका जाने के लिए फ्लाइट पकड़नी थी। अब तो उन दोनों को यहाँ रुकने में और भी संकोच हो रहा था। दादी ने वापस जाने की सलाह दी। यद्यपि जाकर पुनः आने से यात्रा में पैसे तो खर्च होने ही वाले थे। तदापि सिम्मी को दादी का विचार जंच गया और उसने सोचा कि यही ठीक रहेगा। क्योंकि होटल में दस दिन रुकने से होने वाले खर्च से तो कम ही खर्च होगा ! उसने वर्किंग वीमेन हॉस्टल या पी जी हॉस्टल के लिए भी प्रयत्न किया था किन्तु स्थान खाली ना होने के कारण बात नहीं बनी थी। इस शहर में वे लोग और किसी को नहीं जानते थे जहाँ आश्रय ले सकें। सिम्मी ने तत्काल वापसी के ट्रेन टिकट कर लिए और सामान पैक करने लगी। उसके लाये हुए पारिजात के फूल तो कब के सूख गए थे। सिम्मी से वो फूल फेंके नहीं गए क्योंकि दादी के सफल ऑपरेशन की इच्छा से तोड़कर लाये गये थे। उसने वहीं गेस्ट रूम में रखी हुई एक पुस्तक में वो फूल दबाकर रख दिए। तभी वह आश्चर्यचकित हो गयी। जिस पुस्तक में उसने फूल रखे थे, उसका शीर्षक भी 'पारिजात' था ! विचित्र संयोग था। इसकी लेखिका नासिरा शर्मा को साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था इस रचना पर ! अन्य पुस्तकें बहुत पुरानी दिख रहीं थीं। लगता था कोई पढ़ता नहीं था। वैसे भी अधिकतर पुराने साहित्यकारों की लिखी हुई पुस्तकें थीं.... आजकल की पीढ़ी क्या पढ़ती ! संभवतः इसीलिए गेस्ट रूम की टेबल पर रखीं हुई थीं।

उनके कमरे की खटर - पटर सुनकर अजिता और उसकी दादी वहीँ आ गये। जब उन्होंने सामान पैक देखा और सारी बात जानी तो हैरान रह गए। अजिता की दादी तो रूठकर बोली, "इतने जल्दी पराया कर दिया प्रमिला ? अरे यहाँ रुकने में क्या दिक्कत है ? जाओगी, फिर एक हफ्ते बाद आओगी.... तकलीफ बढ़ेगी नहीं तुम्हारी !?"

"अरे नहीं राजबाला, कोई दिक्कत नहीं है यहाँ रहने में ! कैसी बात करती हो बहन ! वो तो बस उमेश की भी याद आ रही है ....फिर तो यहाँ आना ही है ।" सिम्मी की दादी ने अपनी सहेली को समझाने का असफल प्रयत्न किया।

"दादी, हम जाकर आते हैं। यही ठीक रहेगा। दादी की कुछ पुरानी वाली रिपोर्ट्स भी लेनी हैं। पापा को भी देख आऊँगी। पता नहीं कैसे मैनेज कर रहे होंगें वो। फिर मेरी भी कुछ चीज़ें लानी हैं...."

"मुझे पता है कि तुम बहुत मेटीकुलस हो अपने सभी कामों में। दादी की कोई रिपोर्ट नहीं भूली हो तुम। और 'ये' पहले ही इतनी भरी हुई अटैची तुम ला चुकी हो। तो और क्या लाना रह गया है !?" अजिता एक बड़ी सी अटैची को देखते हुए बोली। केवल चेकअप के लिए इतनी भरी हुई अटैचियाँ लाने के लिए अजिता और अक्षता के मन में कौतुहल तो बना हुआ था ही।

"अरे, वो तो ज़्यादातर सिम्मी का ही सामान है। फिर भी कुछ सामान और लाना पड़ेगा। दरअसल सिम्मी यहीं रहकर आगे पढ़ाई करेगी; हॉस्टल में रहकर.... जब मेरे घुटनों के इलाज के लिए यहाँ आने का तय हुआ तो हमनें सोचा कि कुछ सामान अभी पहुँच जायेगा, बाकि धीरे - धीरे आ जायेगा" दादी ने बताया।

"सिम्मी आगे पढ़ाई करोगी ? पर तुम तो आलरेडी जॉब करती हो !" अजिता चौंक कर बोली।

"अरे, कुछ नहीं। ये सब बाद में सोच लेंगे। दादी, अभी हमें घर जाना चाहिए...." सिम्मी ने संकोच के साथ अजिता की दादी को संबोधित करके कहा, "अजिता ने बताया, आपके यहाँ मेहमान भी आ रहे हैं। मुझे बस एक मदद चाहिए आपसे। ये एक अटैची आपके घर पर छोड़ सकती हूँ ? एक बार जब मेरी दादी का ऑपरेशन हो जाय, वह स्वस्थ होकर रुद्रपुर लौट जायें, तब मैं अपना सामान यहाँ से ले जाऊँगी। तब तक मैं अपने लिए हॉस्टल रूम का भी प्रबंध कर लूँगी।"

"कोई कहीं नहीं जा रहा। ये घर इतना बड़ा है कि सब आराम से रह सकते हैं। तुम लोग भी, और अजिता के मामा - मामी भी ! सिम्मी बेटा, टिकट कैंसल कर दो.... और ऑपरेशन होने तक यहीं रहो। तब तक तुम भी अपने लिए हॉस्टल देख लेना, अब तो ठीक है ?" राजवीर की दादी ने निर्णय ले लिया था।

संध्या को राजवीर घर आया तो उसने सिम्मी को उसके चिरपरिचित स्थान पर पाया - रसोई में रानी मौसी के साथ, रात के खाने की तैयारी में मदद करते हुए। वह अपनी दादी के पास गया और बोला, "मुझे अपने दोस्त से पता चला है कि ये उमेश अंकल की माताजी, मेरा मतलब सिम्मी की दादी के घुटनों का ऑपरेशन दस दिन के लिए आगे बढ़ गया है क्योंकि डॉक्टर छुट्टी पर है। तो अभी क्या विचार है इन लोगों का ? यहीं रुकने वाले हैं या मैं कहीं अच्छे होटल में रुकने का प्रबंध कर दूँ ?"

"कैसी बातें कर रहा है बेटा ! यहाँ नए शहर में कहाँ भेज दूँ ऐसे ही ? ये लोग यहीं रहेंगे। इतना बड़ा घर है.... तुम्हारे मामा - मामी को भी कोई समस्या नहीं होने देंगे।" दादी बोली।

"दादी मेरा यह आशय नहीं था। मैं तो इन्हीं लोगों की सुविधा को ध्यान में रखकर बोल रहा था। सच कह रही हो आप कि घर बहुत बड़ा है, किसी को परेशानी नहीं होगी। मुझे चिंता केवल अक्षता और अजिता की पढ़ाई की है। कोई भी आये या जाये, उन दोनों को कोई बाधा नहीं आनी चाहिए।" कहकर राजवीर अपने कमरे में चला गया। स्पष्ट था, कि वह अपनी दादी के निर्णय से सहमत नहीं था। वह पढ़ाई की महत्ता समझता था,अपने कॉलेज के समय की असफलता ने उसे बहुत सिखा दिया था। उसे याद था, मुग्धा ने भी उसकी जगह अपने सुनहरे भविष्य का चुनाव किया था।

जैसे पिछले चार - पाँच दिन बीते थे, वैसे ही अगले दो दिन भी बीत गए थे -- बिना किसी उथल - पुथल या 'तूफ़ान' के। जितना राजवीर चिंतित था बहनों की पढ़ाई को लेकर, वैसी कुछ भी हानि नहीं हुई थी उन दोनों की दिनचर्या में। 'वीक एंड' का पहला दिन यानि शनिवार का दिन भी बिलकुल

शांति से बीत गया था। बहनें अपने अपने कमरों में थीं, और दोनों दादियाँ राजवीर की दादी के कमरे में ! बस नाश्ते और खाने के समय चहल - पहल हुई। वह भी बहुत कम समय के लिए। उस दिन तो दिनभर सिम्मी घर पर थी ही नहीं। जब संध्या होने पर भी वह नहीं लौटी तो दोनों बूढ़ी महिलायें चिंतित होने लगीं। अजिता ने फोन भी लगाया पर बात नहीं हो पायी। व्यग्रता बढ़ने लगी थी। राजवीर की दादी राजवीर से आग्रह करने लगी सिम्मी को ढूँढ लाने के लिए ! अब राजवीर जाए भी तो कहाँ ! उसने भी फोन किया परन्तु बात नहीं हुई। अब तो उसे भी चिंता होने लगी। सिम्मी की दादी को भी कोई अनुमान नहीं था कि सिम्मी कहाँ गयी हो सकती है। राजवीर ने ही अनुमान लगाया कि हो न हो ये लड़की हॉस्टल ढूँढने निकली होगी। अजिता या अक्षता को भी कुछ नहीं पता था। वो दोनों भी परेशान हो रहीं थीं।

"घंटों तुम तीनों गप्पें मारते रहते हो। पर तुम दोनों से इतना नहीं हुआ कि पूछ ही लेते सिम्मी से, कि उसने हॉस्टल के लिए कहाँ अप्लाई किया है !" राजवीर ने बहनों को डांट लगायी। सिम्मी और उसकी दादी का यहाँ रहना राजवीर को अखरता था। परन्तु उन दोनों की सुरक्षा उसकी ही जिम्मेदारी है, यह भी वह समझता था।

"भैया आप हमको क्यों डांट रहे हो। हम लोग तो अब कोई गप्पें नहीं मारते। सिम्मी हमसे ज़्यादा हमारी पढ़ाई की चिंता करती है। वह हमारे कमरे में आती भी नहीं और हमें कड़ी मेहनत करने को कहती है। बस खाने की टेबल पर ही थोड़ी बहुत बात होती है.... वी आर आल्सो वरीड फॉर हर !" अजिता ने पलट कर कहा। अक्षता ने उसे संकेत कर चुप रहने को कहा। वह अपने भाई का गुस्सा भली भांति समझती थी।

राजवीर को भी कुछ सूझ नहीं रहा था। उसने अक्षता से यूनिवर्सिटी के आस पास के हॉस्टल और पी जी हॉस्टल के फोन नंबर की लिस्ट बनाने को कहा। उसने स्वयं झटपट कपड़े बदले और कार की चाबी उठाकर निकल ही रहा था कि घंटी बजी। द्वार पर सिम्मी खड़ी थी हमेशा की तरह मुख पर स्मित के साथ ! उसके हाथ में दो थैले थे, सब्जियों से भरे हुए। उसे देखकर सबकी जान में जान आयी। दादियों ने बहुत आशीष दिए, नज़र उतारी। सिम्मी की

दादी तो रोने ही लगी। अक्षता और अजिता सिम्मी के गले ही झूल गए, उलाहने देने लगे कि फोन क्यों नहीं उठाया, बता कर क्यों नहीं गयी कि कहाँ जा रही हो आदि आदि .... सिम्मी पूरे धीरज के साथ सबके प्रश्नों का उत्तर दे रही थी, सबको ढांढस दे रही थी कि सब ठीक है, उसे कुछ नहीं हुआ है।

बस राजवीर ही था जिसने कोई प्रश्न नहीं किया, न आगे जाकर मिला। घर की महिलाओं से मिलते हुए, उनको सँभालते, दिलासा देते हुए और समझाते हुए सिम्मी की दृष्टि एक बार राजवीर से मिली। राजवीर के अग्नेय नेत्र उसे ही घूर रहे थे। त्वरित ही सिम्मी ने नेत्र झुका लिए। कोई शब्दों का आदान - प्रदान नहीं हुआ।

"पता है सिम्मी, भैया अभी तुम्हारा नंबर सर्विलेंस पर डालने का सोच ही रहे थे। सच, इतना डरा दिया था तुमने !" अजिता बोली।

"सॉरी, वो मेरे फोन की बैटरी ख़त्म हो गयी थी। इसलिए बात नहीं कर सकी" सिम्मी ने खेद व्यक्त किया "मुझसे गलती हो गयी.... कहाँ जा रही हूँ, कितनी देर लग सकती है आदि सब बताकर जाना चाहिए था। आगे से ध्यान रखूँगी .... वैसे ये शहर एकदम से अनजाना भी नहीं है मेरे लिए। मैं रिपब्लिक डे परेड के लिए एन सी सी कैंप में और बाद में हॉकी के लिए नेशनल कैंप में भी दो बार आई हूँ !" सिम्मी ने उत्साहित होकर बताया।

"अच्छा, तो तुम हॉकी खेलती हो ?" अजिता ने खुश होकर पुछा।

"खेलती थी .... अब नहीं खेलती।" सिम्मी ने धीमे स्वर में कहा।

"लास्ट कब आई हो इस शहर में ? और कैंप में तो तुम ग्रुप में रहती थीं। अकेले कब घूमी हो यहाँ ?" अक्षता ने डांटते हुए कहा।

"अच्छा बाबा, गलती हो गयी। आगे नहीं करूँगी। थोड़ी देर ये सब्जी खरीदने में भी लग गयी। वास्तव में मैं आधा घंटा पहले आ जाती पर ये भुट्टे देखकर लालच आ गया। अक्षता, कल तुम्हारा मन कर रहा था न, भुट्टे खाने का ....देखो, एकदम नरम - नरम चुन कर लायी हूँ !"

"भुट्टे के दानों को हल्का उबालकर सूप बना लेंगे.... राजवीर भैया को हेल्दी खाना पसंद है।" रानी मौसी ने अपनी राय रखी।

"हाँ ! और थोड़े कुरकुरे पकौड़े भी बन जाएँ तो मज़ा ही आ जायेगा....।" अजिता वहीं डाइनिंग टेबल पर ही भुट्टे छीलने लगी। राजवीर देख रहा था कि सिम्मी के आने के बाद घर का माहौल ही बदल गया था। सब लोग रसोई में हँसते हुए काम कर रहे थे। चाय बन रही थी, सूप बन रहा था, भुट्टे भूने जा रहे थे, पकौड़ों के लिए मोटे दाने वाले भुट्टे कद्दूकस किये जा रहे थे। थोड़ी देर के लिए घर का अनुशासन मानों पोटली में बांधकर ऊपर आले में रख दिया गया था। राजवीर बैठक में टी.वी. खोलकर स्पोर्ट्स चैनल लगाकर बैठ गया। देखने में मन नहीं था। मोबाइल पर यूं ही इधर - उधर सोशल मीडिया पर उद्देश्यहीन देखता रहा। निःसंदेह वह सिम्मी पर क्रुद्ध था। परन्तु उसे सही सलामत देखकर प्रसन्न भी था। और उसके भुट्टे लाने के छोटे से कृत्य ने घर में जिस तरह खुशियाँ भर दीं थीं, उससे वह प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका था। बड़ी मिली जुली सी भावनाएँ राजवीर के मन में आ रहीं थीं। राजवीर ने ध्यान दिया कि सिम्मी अपने लिए कम, दूसरों के लिए अधिक सोचती है। एकाएक उसे मुग्धा का ध्यान आया। स्वयं ही इस ध्यान को परे झटका। सिम्मी और मुग्धा आपस में तुलना का विषय थीं ही नहीं !

कहना न होगा, चाय पकौड़ों का नाश्ता ख़ुशी से निपटा। भुने हुए भुट्टे नमक, नींबू , मसाला लगाकर खाए गए। रात के खाने के साथ सूप पिया जाना था।

"अरे भाई, ये हॉकी का खेल कबसे फॉलो करना शुरू किया ?" अजिता हाथ में भुना हुआ भुट्टा लेकर धम्म से सोफे पर आकर बैठी। राजवीर चौंक गया, उसे ध्यान ही नहीं था कि टी.वी. पर कोई हॉकी मैच चल रहा था। वस्तुतः उसका ध्यान टीवी पर था भी नहीं। वो तो ऐसे ही स्वयं की व्यग्रता कम करने और सिम्मी की देर से आने वाली लापरवाही से उपजे क्रोध को शांत करने के लिए टी.वी. चला दिया था। उसने चैनल बदलकर फुटबॉल का चैनल लगा दिया।

"तुम बहनों का 'ब्रेक टाइम' बहुत ज्यादा ही लंबा हो गया है .... जाओ अपने कमरे में। जब खाना लग जाए तो बुला लेंगे ! और ये हमेशा बिना इस्त्री किये कपड़े क्यों पहन लेती हो ? बहुत ज़्यादा ही 'इजी गोइंग' लाइफ स्टाइल नहीं हो रहा तुम लोगों का !? छुट्टी है तो क्या हुआ। हमेशा तैयार, साफ़ और करीने से इस्त्री किये कपड़े पहना करो। हर काम सही से, और समय से करना सीखो।" राजवीर ने दोनों बहनों को डपट लगायी।

रात का खाना भी शांति से हो गया। सब अपने अपने कमरों में चले गए। राजवीर ही बैठक में बैठा रहा और कुछ काम करता रहा। टी.वी. पर फुटबॉल लीग मैच चल रहे थे। लगभग बारह बजे राजवीर का ध्यान गया कि रसोई की बत्ती जल रही थी। वह तुरंत देखने गया। वहाँ सिम्मी कुछ काम कर रही थी। राजवीर को देखकर वह थोड़ा हिचक गयी। शाम वाली अग्नेय दृष्टि भूली नहीं थी वह।

वार्तालाप का प्रश्न नहीं उठता था। दोनों ही एक दूसरे के सामने नहीं पड़ना चाहते थे। फिर भी कुछ क्षणों बाद सिम्मी ने ही पहल की, "अक्षता और अजिता के लिए कॉफ़ी बना रही हूँ। क्या तुम लोगे ?" उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना सिम्मी गैस पर रखे भगोने पर ध्यान केन्द्रित करके खड़ी रही और साथ ही में कॉफ़ी पाउडर - चीनी का मिश्रण फैंटती रही। राजवीर को भी चाय या कॉफ़ी की बहुत इच्छा हो रही थी। वह सोच ही रहा था कि ऑफिस का काम पूरा करना है तो एक कप तो बनानी ही पड़ेगी ! अभी तो बनी बनायी कॉफ़ी का 'ऑफर' आया था। परन्तु यहाँ राजवीर का अहम् भी तो आड़े आ रहा था ! वह स्वयं बना लेगा। कोई समस्या नहीं है। वह रसोई के द्वार पर ही खड़ा रहा कुछ क्षण, यह सोचते हुए कि क्या कहे वह !

जितनी देर में वह कुछ कहता, सिम्मी ने तीन कपों में कॉफ़ी डाल दी थी। एक कप छोटी ट्रे में छोड़कर बाकी दो कप्स दूसरी ट्रे में रखकर सिम्मी ने कहा, "अपनी कॉफ़ी ले लेना। ठंडी हो जाएगी !" सिम्मी रसोई से बाहर निकलकर जा चुकी थी। राजवीर उसे जाते हुए देखता रहा। क्या लड़की है ! शाम की गलती का कोई पछतावा नहीं है। फिर भी वह सम्मोहित सा सिम्मी को जाते हुए देखता रहा। सिम्मी के घुंघराले बाल एक क्लिप की मदद से

समेटे हुए थे। उसने हल्का नीला सूती, सादा सलवार कमीज़ पहन रखा था। बायीं कलाई पर बहुत पुरानी सी कलाई घड़ी, जो कि हमेशा ही वह पहने रहती! .... वह चप्पल नहीं पहने हुए थी। राजवीर को नंगे पाँव घूमने वाले लोगों से चिढ़ थी। घर के ही अन्दर पहनने के लिए सबके लिए चप्पलों का प्रबंध था। आगंतुकों के लिए भी अतिरिक्त जोड़े रखे हुए होते थे। बाथरूम के लिए अलग, बाकि घर के लिए अलग ! घर में मंदिर के लिए अलग से कमरा तो था ही। सफाई पसंद राजवीर से सभी लोग दुखी थे।

राजवीर को सिम्मी का चप्पल ना पहनना अखर रहा था। कल बात करेगा वह। सहसा उसका ध्यान गया कि सिम्मी बाएँ पैर से लंगड़ा रही थी। बहुत अधिक नहीं, परन्तु जैसे थोड़ा 'ठमक' वाली चाल जैसे होती है, ठीक वैसे ही। जैसे जूते या चप्पल में नन्ही सी कंकड़ी रह जावे तो उस पाँव की जैसी चाल होगी, वैसी चाल ! यह तो ज़रूर पूछना होगा। पैर में दुख रहा होगा। क्यों नहीं दुखेगा ! आखिर देर से आई थी। सब्जियों के थैले उठाकर भागदौड़ की होगी। अवश्य कहीं ठोकर खायी होगी !

राजवीर कॉफ़ी उठाकर हॉल में आ गया। राजवीर ने न चाहते हुए भी यह माना कि कॉफ़ी बड़ी अच्छी बनी थी। उसकी नींद और आलस्य भाग गए थे। अब देर तक काम करने के लिए वह तैयार था !

अगले दिन हमेशा की तरह सिम्मी रसोई में थी। आज छुट्टी थी परन्तु राजवीर को जर्मनी वाले प्रोजेक्ट से सम्बंधित काम से ऑफिस जाना था। उसकी पूरी टीम को भी आना था। सिम्मी के पास सीधे आकर राजवीर ने कहा, "कल की कॉफ़ी के लिए धन्यवाद ! सच में उस समय कॉफ़ी की बहुत आवश्यकता थी।"

"यू आर वेलकम !" सिम्मी ने मुस्कुराकर कहा। आज राजवीर ने सिम्मी को पास से देखा। सिम्मी के मुखपर हमेशा पसरा रहने वाला स्मित तो था ही, उसकी आँखें भी बहुत सुन्दर थीं ! बड़ी बड़ी पलकें, साक्षात 'कमलनयनी" थी वह ! माथे पर घुंघराले बालों की एक दो लटें अव्यवस्थित सी बिखरी हुई थीं। सिम्मी के हाथ जल्दी - जल्दी चल रहे थे। तभी कूकर की सीटी बजी।

उस आवाज़ से जैसे राजवीर का सम्मोहन टूटा। उसे भान हुआ कि वह अभी तक सिम्मी को देखे जा रहा था। वह जल्दी से रसोई से बाहर निकला और डाइनिंग चेयर पर आकर बैठा। उसका ध्यान गया कि सिम्मी ने पूरा पैर ढंकती हुई चप्पल पहन रखी थी। राजवीर को कल रात की लंगड़ाती हुई सिम्मी याद आ गयी।

"आज पैरों में दर्द नहीं है। कल क्या हो गया था ? कहीं ठोकर लगी थी क्या ?" राजवीर ने पूरी ईमानदारी से पूछा।

सिम्मी के हाथ रुक गए। वह बोली, "नहीं नहीं, कोई ठोकर नहीं लगी थी। वो तो कल रात को मैंने अपनी चप्पल नहीं पहनी थी इसलिए मेरी चाल थोड़ी लंगड़ाती हुई थी। एक्चुअली एक्सीडेंट के बाद से मेरे बाएं पाँव में तकलीफ रहती है...." सिम्मी की बात पूरी भी नहीं हो पायी थी कि राजवीर का फोन आ गया और वह क्षमा माँगते हुए उठ कर चला गया। फिर इस विषय पर बात नहीं हुई।

अगले कुछ दिन सभी के लिए बहुत व्यस्त रहे। मामा - मामी आ गए थे। फिर अक्षता की सेहत खराब हो गयी। बुखार हो गया था। राजवीर अपने काम में इतना डूबा हुआ था कि घर की ओर ध्यान देने का समय नहीं निकाल पा रहा था। देर रात को आता, सुबह जल्दी चला जाता। दादी से सब संभलता नहीं था। अजिता पूरी समझदारी से सबकुछ कर ले ऐसी आशा करना व्यर्थ था। मामा - मामी की अलग प्राथमिकताएँ थीं, आवश्यकताएँ थीं। ऐसे में एक सिम्मी ही थी जिस पर सारा भार आ गया। उसने हिम्मत नहीं हारी। दोनों दादियों के मार्गदर्शन में और रानी मौसी की सहायता से सिम्मी ने सब संभाल लिया।

मामा - मामी अमरीका जाने के लिए अति उत्साहित थे। आखिर वे लोग अपने बेटे के यहाँ रहने जो जा रहे थे ! उन्हें अब यहाँ का सब कुछ तुच्छ लग रहा था। यहाँ का खान पान, रहन सहन, पहनावा, लोग, यातायात आदि आदि.... अजिता आये दिन उनसे उलझती रहती। मामा - मामी को विशेषकर ये रुद्रपुर से आये बिन बुलाये मेहमान कतई पसंद नहीं थे। विशेषकर सिम्मी !

सिम्मी और दादी ये सब समझते थे परन्तु रुके रहने के सिवा कोई चारा नहीं था उनके पास। इसीलिए सिम्मी घर के कामों में रानी मौसी का पूरा हाथ बँटाती थी कि कुछ तो योगदान कर सके वो लोग - ऐसे ही मुफ़्त में नहीं रह रहे थे वो और उसकी दादी।

राजवीर देर से आता और आकर भी अपने काम में व्यस्त रहता। किन्तु समय मिलते ही अपनी बहनों के पास जाकर हालचाल जानने की कोशिश करता। जब उसे पता चला कि अक्षता को बुखार होने पर सिम्मी ने रात जागकर उसका ध्यान रखा, समय पर दवाइयाँ दीं; तो इस बात के लिए वह सिम्मी को धन्यवाद कहना नहीं भूला। उसका ध्यान गया कि अजिता का मन पढ़ाई में नहीं लग पा रहा है। ये उसका प्रयास का दूसरा वर्ष था। एंट्रेंस में सफलता पाने के लिए अजिता ने 'ड्राप' लेकर कोचिंग लेनी आरम्भ की थी। आजकल अजिता और सिम्मी धीमी आवाज़ में देर रात तक बात करते मिल जाते। यद्यपि राजवीर अपने काम में व्यस्त था तथापि उसने तय किया अजिता से बाद में इस विषय पर बात करेगा। क्या ये सिम्मी का प्रभाव बहुत अधिक तो नहीं है। सिम्मी अच्छी लड़की है पर कहीं अनजाने में अज्जी की पढ़ाई में बाधा तो नहीं बन रही ! और उसका ऐसे सोचना असंगत भी नहीं था। अपनी बहनों और दादी का ध्यान रखना उसका कर्तव्य था। उनके लिए क्या अच्छा, बुरा है यह भी उसे ही देखना था।

एक और समस्या आ गयी थी। जिस प्रोजेक्ट पर राजवीर और उसकी टीम काम कर रही थी, उसी प्रोजेक्ट पर जर्मन कंपनी अपना सात - आठ सदस्यीय मंडल भारत भेजने वाली थी। उन लोगों में दो सदस्य भारतीय मूल के थे ! ये दोनों भारतीय लोगों के पिता भी आपस में दोस्त थे और साठ के दशक में जर्मनी जाकर बस गए थे। यद्यपि भारतीयता पूरी तरह नहीं छोड़ी थी इन लोगों ने ! ये लोग नियमित रूप से भारत आते रहते थे।

अब राजवीर की समस्या ये थी कि इन लोगों को संक्षिप्त भारत दर्शन कराना था और 'औथेंटिक' भारतीय खाना खिलाना था। वह भी घर पर ! वैसे ही राजवीर को चिंता करने के लिए क्या कम विषय थे जो अब ये भी एक कारण जुड़ गया था ! अजिता का मन पढ़ाई से हट रहा है। दादी की सेहत

नरम - गरम रहती है। ये सिम्मी और उसकी दादी की भी जिम्मेदारी है। मामा-मामी को कुछ न कुछ काम से रोज दो बार बाज़ार जाना होता है शौपिंग करने। रानी मौसी भी छुट्टी लेना चाहती है। ऊपर से इन फिरंग लोगों को ‘घर का खाना’ खाना है ! मम्मी भी इतने कम समय में कैसे आ पायेगी। ऑफिस की आपाधापी अलग !

कई सारी समस्याओं से जूझना था राजवीर को। ऐसी ही एक रात को जब वह थका हुआ घर पहुँचा तो दोनों दादियाँ बैठक में ही बैठी हुई मिल गयी। अब कौनसी नयी समस्या है जो दादी इतनी रात को यहाँ बैठी है, ऐसा सोचते हुए राजवीर ने ही पुछा, “क्या हुआ दादी ? यहाँ क्यों बैठी हो ?’’

“अरे बेटा आज तो सिम्मी ने बचा लिया अजिता को ! .... वो पिछले कुछ दिनों से एक लड़का उसे परेशान कर रहा था कोचिंग क्लास वाला। आज सिम्मी भी साथ गयी थी। उसने उस लड़के की अच्छी खबर ली। मैं जभी कहूँ, अजिता बिटिया कोचिंग जाने के लिए आना कानी क्यों करती थी !”

राजवीर तन के बैठ गया। अवाक् था वह। उसे पता ही नहीं था कि उसकी लाडली छोटी बहन इतने दिनों से परेशान थी ! वह भाग कर अजिता के कमरे में गया। अक्षता और सिम्मी भी वहीं थे। दोनों बूढी महिलायें भी वहीं पहुँच गयीं। मामा - मामी भी और रस लेने पहुँच गए। राजवीर ने अजिता को स्नेह से अंक लगाया और सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, “अज्जी, तू इतनी परेशान थी और मुझे पता भी नहीं था। माफ़ करदे बहन !” राजवीर भावुक हो गया था।

“भैया मैं ठीक हूँ। सिम्मी ने सब ठीक कर दिया है। होपफुली अब वह लड़का कुछ नहीं करेगा.... है ना सिम्मी ?” अजिता ने भाई का हाथ थाम कर कहा। राजवीर ने सिम्मी की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा। सिम्मी कुछ कहती इससे पहले मामी ने अपनी बात रखी, “सिम्मी - विम्मी ने जो किया वह ठीक है अपनी जगह। एक बार लकी हो गए तो क्या बड़ी बात है ? मैं तो कहती हूँ, ये कोचिंग की ज़रुरत ही क्या है ? हमारे मोनू ने तो कोई कोचिंग नहीं की थी !

देखो अमरीका में रह रहा है ! राज, इसकी कोचिंग बंद करवा दो !" मामा ने भी बहुत गंभीरता से मामी का समर्थन किया ।

सिम्मी के शब्द कंठ में ही रह गए । वह कुछ नहीं बोली । बस दोनों दादियों को आग्रह के साथ सोने के लिए भेज दिया । संध्या से ही घर के सब लोग व्यग्र थे अजिता के लिए । अब जो मामला सुलझ गया था तो सिम्मी चाहती थी कि सबकुछ पहले की तरह सामान्य हो जाए । मामा - मामी थोड़ी देर हाय तौबा मचाकर सोने चले गए । अक्षता पढ़ने का प्रयत्न करने लगी । अजिता को सिम्मी ने हल्दी वाला गरम दूध पिला कर जल्दी सो जाने के लिए मना लिया । आज सुबह से अजिता भावनात्मक रूप से बहुत अस्थिर थी । उसके मन मस्तिष्क को विश्राम की आवश्यकता थी ।

राजवीर की दादी को नींद कहाँ आने वाली थी ! वह अपने पोते की प्रतीक्षा कर रही थी क्योंकि उसने खाना जो नहीं खाया था । रानी मौसी खाना गरम करके डाइनिंग टेबल पर रख गयी थी । राजवीर हाथ मुँह धोकर आया । उसके मुख पर दिन भर की थकान दिख रही थी । खाना खाते हुए वह बोला, "दादी ये आज जो हुआ है, वह ठीक से पूरा बताओ । मैं अजिता से पूछकर उसे परेशान नहीं करना चाहता ।"

"ठहर, सिम्मी को बुलाती हूँ । वो थी वहाँ । वही ठीक से बताएगी !" दादी ने सिम्मी को आवाज़ दी । राजवीर नहीं चाहता था कि सिम्मी आये । उसे ग्लानि हो रही थी कि जो उसे करना चाहिए था, वह सिम्मी पूरे दायित्व के साथ कर रही थी । और तो और वह सिम्मी को दोषी भी मानता रहा था की वह दोनों बहनों का समय ख़राब करती है, जबकि वास्तविकता में हर क्षण वह अजिता और अक्षता की मदद के लिए उपस्थित रहती थी ।

दादी के बुलाने पर सिम्मी आ गयी । राजवीर का ध्यान गया कि आज सिम्मी फिर बाएँ पैर से हल्का लंगड़ाकर चल रही थी, जैसे उस पैर पर कम वज़न डाल कर चलने की आदत हो । सिम्मी को पता था कि उसे क्यों बुलाया गया है । उसने सीधे ही बताना शुरू किया, "अजिता ने तीन - चार दिन पहले बताया था कि कोचिंग सेंटर में एक लड़का उसे परेशान कर रहा था । जैसे फ़ोन

करना या मैसेज करना या नोट्स माँगना.... फिर वह अजिता के ऑटो को भी फॉलो करने लगा था। अजिता ने उसे स्पष्ट समझाया भी पर वह नहीं मान रहा था। जब मुझे पता चला तो कल मैंने भी साथ जाकर मामला देखा और उस लड़के को समझाया। वह तो मुझसे भी उद्दंडता करने लगा। आखिर में मैंने अपनी सहेली, जो मेरे साथ ही हॉकी खेलती थी, उससे बात की और उसके भाई का नंबर लेकर उसे पूरी बात बतायी। वह पुलिस में एएसपी है। आज वह खुद ही कोचिंग सेंटर आ गया था हमारी रिक्वेस्ट पर। उस उद्दंड लड़के को बस थोड़ी समझाईश दी है। ....अब वह परेशान नहीं करेगा। वह तो हमने कोचिंग सेंटर से उस लड़के की पूरी जानकारी भी ले ली थी। सभ्य परिवार से है। माता - पिता तक बात न पहुँचे, इसकी उसे भी चिंता थी ! फिर वर्दी वालों को देखकर तो सभी को स्थिति की गंभीरता का अनुभव हो जाता है। राजवीर, तुम इन दिनों बहुत व्यस्त हो इसलिए मैंने अपनी जिम्मेदारी से इस मामले को सुलझाने की कोशिश की है। पहली फुर्सत मिलते ही अजिता के कोचिंग सेंटर ज़रूर जाना। .... इनफैक्ट जाते रहना चाहिए। अजिता एक साल ड्राप लेकर पढ़ाई कर रही है न, ...कभी - कभी निराशा मन में घर कर जाती है। मैं तो कहती हूँ , थोड़ा सा 'डिसिप्लिन' में ढील देकर आप सब एक साथ समय बिताओ-मूवी देखो, हिल स्टेशन जाओ, या ऐसे ही बाहर खाना खाने जाओ.... आप लोगों के मम्मी - पापा यहाँ नहीं हैं। अजिता और अक्षता उन्हें बहुत 'मिस' करतीं हैं।"

सिम्मी एक ही सांस में सब कह गयी। राजवीर चुपचाप सुन रहा था। अजिता और अक्षता की तरह सिम्मी को भी राजवीर के गंभीर स्वभाव से डर लगता था। वैसे जब राजवीर सामने पड़ जाए तो सामान्य रूप से बातें कर लेती थी वह, परन्तु उससे सामना ही न करना पड़े ऐसी हमेशा इच्छा रहती थी ! और आज तो वह कदाचित कुछ अधिक ही बोल गयी थी ! हृदय ज़ोरों के धड़कने लगा था.... राजवीर की चुप्पी आने वाले बवंडर की सूचना दे रही थी। पागल है तू सिम्मी ! इतना सब बोलने की क्या ज़रुरत थी कि एक साथ समय बिताओ वगैरा - वगैरा.... तू कौन होती है सलाह देने वाली ? इनके घर में रहने मिला है, इनके मामलों में बोलने का हक़ नहीं मिला है !

"तुम ठीक कह रही हो। आगे से ध्यान रखूँगा.... थैंक्स अगेन, जो तुमने अज्जी का ध्यान रखा। मैं कल ही कोचिंग सेंटर जाऊँगा" राजवीर ने कहा। सिम्मी की रुकी हुई साँसें मानो फिर चलने लगीं। उसने शीघ्र ही राजवीर और दादी को 'शुभरात्री' कहा और वहाँ से चली गयी।

राजवीर उसे जाते हुए देखता रहा। सिम्मी ने अजिता की समस्या का समाधान किया था ही, वह दोनों बहनों की सच में चिंता करती थी। तभी उसे भान हुआ कि दादी उसे ही देख रही है। वह जाने क्यों झेंप गया, जैसे चोरी पकड़ी गयी हो !

वह गंभीर होकर बोला, "सिम्मी ने आज बहुत बड़ा काम कर दिया है। पिछले कुछ दिनों से मैंने भी नोटिस किया था कि अजिता और सिम्मी घंटों बातें करते रहते थे। मैं बल्कि नाराज़ भी था ये सोच कर कि सिम्मी ही अज्जी का समय व्यर्थ कर रही है। अब समझ आ रहा है कि कोचिंग से आकर अज्जी अपनी परेशानी सिम्मी को बताती होगी। अक्षता ख़ुद पढ़ाई में व्यस्त है तो उसे बताकर परेशान नहीं करना चाहती होगी अज्जी ! और सिम्मी ने भी सूझबूझ से मामला संभाल लिया। सच में कितनी समझदार हो गयी है ये अज्जी छुटकी भी" राजवीर बोलते हुए भावुक हो गया "....और मैं सोचता रहा कि उसका पढ़ने से ध्यान हट गया है।"

दादी ने स्नेह से पोते के सिर पर हाथ फेरा और बोली, "कोई बात नहीं बेटा। तू भी तो दिन रात मेहनत ही कर रहा है। सिम्मी बहुत समझदार लड़की है समझदार तो उमेश की तीनों बेटियाँ रहीं हैं। सच में, ममता ने बहुत अच्छी परवरिश दी है बेटियों को।"

राजवीर की उत्सुकता चरम पर थी। उसने पूछा, "दादी ये उमेश अंकल की तीनों बेटियों के बारे में कुछ बताओ। बिन्नी दीदी तो मुझसे बड़ी है, यह मुझे पता है। ये सिम्मी है। और छोटी वाली ?"

"छोटी वाली गिन्नी है। बेटा उस परिवार ने मुसीबत के समय हमारा हाथ न थामा होता तो हम बहुत मुश्किल में पड़ जाते !" दादी ने कहा।

"क्या हुआ था ?"

"उमेश और तुम्हारे पापा कॉलेज के समय के दोस्त हैं। दोनों की शादियाँ एक साल के अन्दर ही हुईं थीं। तुम्हारे पापा की छः महीने पहले हुई थी। लेकिन बच्चा उमेश को पहले हुआ। तभी बिन्नी तुमसे बड़ी है। सिम्मी यही कोई दो साल छोटी होगी तुमसे, मेरा ख्याल है। गिन्नी सिम्मी से दो साल छोटी होगी। गिन्नी और अक्षता बराबरी के हैं शायद। तुम्हारे दादाजी को, वो क्या कहते हैं, शेयर्स में पैसा लगाने की बहुत आदत थी। चिट फंड में भी हज़ारों लगे हुए थे। अब ये सब तो एक तरह का जुआ ही है, भले ही आप मानो या ना मानो ! बस क्या था। एक बार बुरी तरह से सारे पैसे डूब गए। हम कर्ज़दार ही हो गए। वह समय बहुत बुरा था। तुम बहुत छोटे थे। तुम्हारी मम्मी को अक्षता होने वाली थी। किस्मत ऐसी बुरी हुई, कि तुम्हारे पापा जिस प्राइवेट कंपनी में थे, वह भी बंद हो गयी। ऐसे कठिन समय में उमेश ने पैसों से बहुत मदद की। ममता ने तो सारे गहने लाकर दे दिए थे। तुम्हारे दादा तो खाट ही पकड़ लिए और फिर कभी पूरी तरह स्वस्थ ही नहीं हो पाए। तब तुम्हारे पापा ने उमेश के कहने पर ही बैंक की परीक्षा दी और फिर नए सिरे से नौकरी की। उन दिनों उमेश ने पूरी मदद की थी। धीरे - धीरे करके तुम्हारे पापा बैंक में बड़े पद पर पहुँच गए हैं। तुमने भी कड़ी मेहनत करके बहुत तरक्की की है। अब ईश्वर की दया से आज सब कुछ है हमारे पास....गाड़ी, बंगला ! पर हमें बुरा वक़्त कभी नहीं भूलना चाहिए...." दादी अपने अश्रुओं को पोछते हुए बोली।

"ये सिम्मी आज भी लंगड़ा रही थी। क्या हुआ है उसे,.... आप कल अवश्य पूछना। यदि डॉक्टर के पास जाना है तो ड्राईवर को बता दूँगा...." पुराने दिनों को याद करके दादी दुखी हो रही थी अतः विषय बदलने के लिए राजवीर बोला। परन्तु मन ही मन राजवीर वास्तव में सिम्मी के लिए चिंतित था।

"अरे बेटा, ये लंगड़ाकर चलना तो बेचारी सिम्मी की किस्मत ही है। उमेश और उसके परिवार ने कम दुःख नहीं झेले हैं। अभी भी झेल ही रहे हैं। नहीं तो ये प्यारी बच्ची 'नेशनल' खेली हुई है हॉकी में ! पता है, शायद मलेशिया, न्यूज़ीलैण्ड वगैरा भी खेलने गयी थी टीम के साथ ! एक रोड एक्सीडेंट हुआ, और उसकी दो पहिया को ट्रक ने टक्कर मार दी। वो तो

किस्मत अच्छी थी कि सिम्मी बच गयी। पर ये बायाँ पैर दो जगह से बुरी तरह से टूट गया था। छः - सात महीने परेशान रही, दो - दो ऑपरेशन हुए, शायद रॉड भी पड़ी थी। ठीक तो हो गयी पर पैर में थोडा ऐब आ गया। पता नहीं कहाँ गलती हो गयी या इलाज में कोई कमी रह गयी कि एक पैर अब थोड़ा सा छोटा रह गया है। ये सब भी प्रमिला ने ही बताया है।" बोलते हुए दादी की साँस चढ़ गयी थी।

थोड़ा पानी पीकर दादी ने कहना जारी रखा, "उमेश बहुत खुद्दार है। कोई भी परेशानी हो, उसने तुम्हारे पापा को कभी नहीं बताया। तेरह - चौदह वर्ष पहले उमेश को बहुत ही सीरियस दिल का दौरा पड़ा था। बच तो गया पर शरीर के आधे भाग का लकवा पड़ गया। काम धंधा छूट गया। पेंशन मिलने लगी। ममता की स्कूल की नौकरी थी इसलिए किसी तरह गुज़ारा चलता रहा। लगभग आठ वर्ष पहले तेज बुखार से अचानक ही सिम्मी की माँ ममता चल बसी। फिर क्या था, बस डिग्री के बाद ही बिन्नी ने स्कूल में नौकरी शुरू कर दी। सिम्मी को हॉकी का जूनून था तो उमेश ने हमेशा प्रोत्साहन ही दिया था। पर तीनों बेटियाँ हैं न ! उनकी शादी की चिंता खाने लगी उमेश को। सो बिन्नी की शादी करवा दी। इधर सिम्मी ने भी डिग्री के बाद बी.एड. किया और पढ़ाना शुरू किया। हॉकी तो सपना ही रह गया। एक तरह से बिन्नी की जगह सिम्मी ने ले ली। फिर ये खतरनाक एक्सीडेंट हो गया उसका। बच्ची बच गयी परन्तु पैर में ऐब आ गया। अब उसकी शादी तो होने से रही ! इसीलिए शायद जैसे ही गिन्नी की शादी लायक उमर हो गयी, उमेश ने उसका ब्याह करा दिया। वो तो उसके ससुराल वाले अच्छे हैं जो उसे आगे पढ़ने का मौका मिल गया। रह गयी सिम्मी, तो वह अपनी दादी और पापा का ध्यान रखती है। इतनी अच्छी, सुशील और समझदार लड़की है परन्तु विवाह के विषय में तो बेचारी नहीं सोचती होगी ! वैसे भी कौन ब्याहेगा उससे ! अभी शायद यहाँ रहकर आगे पढ़ना चाहती है। तभी कहूँ इतना सारा सामान अटैची में भर कर लायी है। एक बार प्रमिला ठीक होकर वापस चली जावेगी तो सिम्मी हॉस्टल में रहकर आगे पढ़ेगी। उसकी नौकरी का क्या होगा पता नहीं !"

राजवीर के अचरज का ठिकाना नहीं था। एक ही दिन में, बल्कि कुछ ही घंटों में उसे अपने परिवार और सिम्मी के परिवार के बारे में भर - भर के जानकारी मिल रही थी। यदि उमेश अंकल बताते तो उसके पापा अवश्य अपने दोस्त की मदद करते। अब राजवीर के समझ आया कि उमेश अंकल की जगह सिम्मी क्यों आई थी दादी के साथ ! उसका मन सिम्मी के प्रति सम्मान से भर उठा।

रात भर ठीक से सो न सका राजवीर। उसे कौतुहल हो रहा था कि पहले दिन से ही उसका ध्यान सिम्मी की चाल पर क्यों नहीं गया था जबकि अब कुछ दिनों से उसे दिख रहा था कि वह लंगड़ाकर चलती है। इस बात को लेकर वह बहुत प्रभावित भी था कि शारीरिक विकलांगता को सिम्मी ने हावी नहीं होने दिया था। राजवीर सारी विसंगतियों को किनारे रखकर सिम्मी की आगे बढ़ते रहने की जिजीविषा से प्रभावित हुए बिना न रह सका था।

अगली सुबह हमेशा की तरह सिम्मी रसोई में ही थी, साथ में अक्षता भी थी। आज अक्षता पराठा बनाना सीख रही थी। अपनी बहन में ये स्वागतयोग्य बदलाव देखकर राजवीर प्रसन्न हो गया। दोनों ही बहनें घर के कामों से जी चुराती थीं। सिम्मी का घर पर होना सकारात्मक बदलाव ला रहा था। राजवीर का सोचना था कि हर एक को घर और बाहर, दोनों जगह मोर्चा संभालना आना चाहिए, चाहे पुरुष हो या महिला हो। दोनों बहनें दादी का सुनती नहीं थीं, और राजवीर के कठोर स्वभाव के कारण उससे दूर भागतीं थीं। सिम्मी ने आकर एक तरह का संतुलन बना दिया था। जैसे वह भाई और बहनों के बीच सेतु का काम कर रही थी।

राजवीर को सिम्मी पर भरोसा होने लगा था। वह घर में है, इस आभास मात्र से ही राजवीर चिंता मुक्त रहने लगा था। उसे विश्वास हो चला था कि सिम्मी के रहते उसके घर पर, परिजनों पर कोई समस्या नहीं आएगी। उसने विदेशी मेहमानों के लिए घर में खाना बनाने के विषय में सिम्मी से ही बात करने की सोची। उसे विश्वास था कि यदि नहीं समझ आ रहा हो तो सिम्मी चुप रहेगी, तटस्थ रहेगी। परन्तु गलत राय नहीं देगी। मामा - मामी भी नाश्ता करने आ गए थे। सिम्मी की दादी की तबियत ढीली लग रही थी अतः उनके

लिए दलिया बना था। राजबाला भी अपनी सहेली प्रमिला का साथ देने के लिए दलिया खाने वाली थी !

पराठे बन कर टेबल पर आ चुके थे। सबने खाना शुरू किया। राजवीर ने अपनी बात रखी। हमेशा की तरह त्वरित प्रतिक्रिया देने वाली अजिता खुश होकर बोली, "छोले - भठूरे, दही भल्ले और पुलाव कैसा रहेगा ?"

"बहुत ऑयली हो जायेगा...." मामी बोली। मामा ने राय दी, "हाँ, आजकल सब लोग हेल्थ कोन्शिअस हो गए हैं।"

"साउथ इंडियन ?" अक्षता बोली, "वो बैलेंस्ड भी है, ज़्यादा तेल वाला भी नहीं होता !"

"नहीं, नहीं... अभी कल ही तो सिम्मी और रानी मौसी ने मिलकर इडली साम्भर बनाया था !" अजिता ने विरोध किया।

"ढोकला, थेपला, खांडवी, आदि गुजराती डीशेस कैसी रहेंगी ? और चाहें तो थोड़ा कुछ बाहर से भी मंगवा लेंगे।" मामी ने सुझाव दिया।

राजवीर देख रहा था सिम्मी ने कुछ नहीं कहा था। उसने पुछा, "सिम्मी तुम्हारी क्या राय है ?"

"अरे उससे क्या पूछना है.... जो तय होगा, वो ये और रानी मिलकर बना लेंगे !" मामी ने कहा। वह सिम्मी से जाने क्यों चिढ़ी रहती थी भगवान जाने। सिम्मी के हाथ का बनाया हुआ खाना ज़रूर उंगलियाँ चाटकर खा लेती थी। अजिता ने तो बोल भी दिया, "मामी क्यों हर बार सिम्मी के पीछे पड़ जाती हो। उसका बनाया तो हम सब चट कर जाते हैं। यदि अधिक परेशानी है तो मामी आप ही बना लेना। जरा हम भी स्वाद चख लेंगे आपके हाथों की कुकिंग का!"

मामी बगलें झाँकने लगीं। ये खाना बनाने की मुसीबत कौन मोल ले ! राजवीर सिम्मी की प्रतिक्रिया जानना चाहता था। वह कुछ बोल ही नहीं रही थी। अंत में खिन्न होकर वह बोला, "ठीक है, मैं किसी दूसरे 'कलीग' के यहाँ खाने का अरेंज करता हूँ। यहाँ तो किसी एक बात पर सहमति ही नहीं बन रही

है।" वह चुपचाप नाश्ता करने लगा। जब वह नाराज़ होता या खिन्न होता तो चुप्पी साध लेता था। यह चुप्पी सबको बड़ी चुभती थी। बहुत मनुहार के बाद मानता था। घर के लोग उसका यह स्वभाव जानते थे। अतः सभी अपनी - अपनी युक्ति से राजवीर को मनाने का प्रयत्न करने लगे। कोई साउथ इंडियन की बात कर रहा था तो कोई गुजराती थाली चाहता था। कोई पंजाबी खाने में फायदे देख रहा था तो कोई देसी और विदेशी का मिला जुला खाना बनवाने की पैरवी कर रहा था। परन्तु बात नहीं बन पा रही थी।

सिम्मी जानती थी कि उसका इस परिवार के किसी भी विषय में सम्मिलित होना मामी को जरा भी अच्छा नहीं लगता था। उसे यह भी लगता था कि कहीं न कहीं राजवीर को भी उसका अक्षता और अजिता के साथ उठना - बैठना या उनके मामलों में हस्तक्षेप करना पसंद नहीं आता था। सिम्मी और उसकी दादी को गिने - चुने कुछ ही दिनों के लिए रहना था यहाँ। वैसे ही इन लोगों का आतिथ्य वे लोग बहुत लम्बे समय से स्वीकारे हुए थे। अब जाने का समय भी पास आ रहा था। क्योंकि उसने ऑपरेशन के बाद शीघ्र ही घर वापस जाने का पक्का मन बना लिया था। उसने चुप रहना ही ठीक समझा।

राजवीर से रहा नहीं गया, उसने ही पूछ लिया, "सिम्मी तुम कुछ नहीं कह रही ? तुम्हारा क्या कहना है ?"

सिम्मी हिचकिचाकर बोली "सभी सुझाव बहुत अच्छे हैं। कुछ भी तय होगा, वो हम मिलकर बना लेंगे, ठीक है ना रानी मौसी ?" पलकें झुका लीं उसने।

"मैं तुम्हारी भी राय जानना चाहता हूँ। जैसे सबने कहा, तुम्हारे मन में भी कुछ होगा। मुझे वह बताओ !" आदेशात्मक स्वर में राजवीर बोला।

अब थोड़ी हिम्मत के साथ सिम्मी सावधानी से बोलने लगी, "जैसा हमें ये पता है कि विदेशी मेहमानों में दो लोग भारतीय मूल के हैं। एक की पत्नी भारतीय है, दूसरे की जर्मन है पर वह भी भारत कई बार आई है अपनी पढ़ाई के सिलसिले में। बाकि के विदेशी लोग भी कंपनी के काम के कारण भारत आते रहते हैं.... जैसा राजवीर ने बताया हुआ है...."

"मुद्दे की बात पर आओ सिम्मी, ये क्या गोल - मोल कर रही हो...." मामी ने टोका।

"उसे पूरी बात तो कहने दो मामी।" राजवीर को सिम्मी की बात में रूचि आ रही थी। सिम्मी का सोचने का ढंग ही भिन्न था। वह प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका।

सिम्मी आगे बोली, "हाँ, तो मैं यह कहना चाह रही थी कि ये जो विदेशी डेलिगेट्स आ रहे हैं, इनके लिए भारत देश या यहाँ का खाना इतना भी 'नया' नहीं है क्योंकि इससे पहले ये लोग एक - दो बार भारत आ चुके हैं, तो अपने यहाँ की सबसे पॉपुलर डिशेस यानि ढोकला, खांडवी, छोले भठूरे, जलेबी, बिरयानी, पुलाव, डोसा आदि इनके खाए हुए होंगे। यही सब घर में बनाकर खिलाया तो 'घर के खाने' की विशिष्ठता तो रहेगी पर उन्हें नया स्वाद नहीं मिलेगा।"

"तो क्या बनायें, तुम ही बता दो।" मामी व्यंग्य से बोली।

"मैं सोच रही थी कि क्यों न 'हिमाचली थाली' बनायी जाय ! नयापन भी रहेगा, घर का बना हुआ 'ऑथेंटिक' हिमाचली खाना उन्होंने कभी नहीं खाया होगा। और आप लोगों को अपनी हिमाचली संस्कृति की छाप भी दिखाने का मौका मिलेगा।"

"तुम्हारी बात में दम तो है बॉस !" अजिता बोली, "और हम बैठक, डाइनिंग हॉल आदि का 'डेकोर' हिमाचली 'टच' के साथ कर देंगे.... ज़्यादा नहीं, बस हल्का सा, बस हिमाचली कल्चर की ओर इशारा करता हुआ सा !.... क्या कहते हो भैया ?"

डाइनिंग टेबल पर चुप्पी थी। सब राजवीर की ओर देखने लगे। सिम्मी चुप थी। हथेलियों में पसीना आने लगा। आज उसने अपने विचारों को कुछ अधिक ही उड़ान दे दी थी कदाचित् ! हिम्मत करके बोली, "मैंने बस यूँ ही कह दिया। बड़ा ही अव्यवहारिक सुझाव है। जैसे सब सहमत होंगे, वही खाना हम मिलकर बना लेंगे !"

अजिता और अक्षता एक दूसरे को देख रहे थे। राजवीर नाम का बम कभी भी फट सकता था। फिर भी हमेशा की तरह अजिता अधीर होकर बोली, "क्या भैया, कुछ तो बोलो। ये क्या 'थर्ड अंपायर' की तरह डिसिज़न पेंडिंग रखा है !"

"मुझे ये आईडिया बहुत पसंद आ गया है। पर रानी मौसी आपको हिमाचली खाना बनाना आता है ?" राजवीर के मुख पर उत्साह था, रोमांच था। राजीव की इस प्रतिक्रिया की आशा किसी को नहीं थी। सिम्मी को तो बिलकुल भी नहीं थी !

"हाँ, हाँ !, भैया कुछ डिशेस तो आती हैं, कुछ दादी से पूछ लेंगे। बिलकुल ख़ास हिमाचली खाना !" रानी मौसी बोली।

"और अपना 'इन्टरनेट' तो है ही ! हम आज से ही थाली में क्या - क्या होगा, ये तय करके बनाकर प्रैक्टिस करेंगे, ठीक है सिम्मी ?" अक्षता को रसोई में काम करना अच्छा लगने लगा था।

"और रोज की पार्टी होगी, है ना !" अजिता को जैसे खाने से ही मतलब था।

"ठीक है, फिर तय रहा हिमाचली थाली ही सर्व की जायेगी। रानी मौसी, जो भी सामान चाहिए, आप मंगवा लेना। बल्कि मैं ड्राईवर को कह देता हूँ। एक कार यहीं खड़ी रहेगी - यदि ज़रुरत पड़ी तो ले जाना" राजवीर का नाश्ता हो चुका था। वह उठते हुए बोला।

सबको आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता हो रही थी कि राजवीर को ये हिमाचली थाली का सुझाव पसंद आ गया था। दोनों दादियों को भी ये हिमाचली खाने वाली बात पसंद आ गयी थी। दो दिन बाद राजवीर के मेहमान आने वाले थे सिम्मी और रानी मौसी ने अथक प्रयास करके सारी तैयारियाँ की। अक्षता समय - समय पर मदद कर देती थी। सिम्मी ही उसे हर बार पढ़ाई का वास्ता देकर वापस भेज देती थी। रानी मौसी बहुत गुणी महिला थी। इन्टरनेट की सहायता से उन लोगों ने काफी अच्छा सा मेनू तैयार कर लिया था। चावल, चंबा धाम कढ़ी, अक्तोरी, पतेंडे, चना मद्रा, आलू पालदा, रैन्था, मीठा चावल,

आदि। इन्हीं में से डिशेस फाइनल होनीं थीं। तेल और मिर्च - मसालों का भी सावधानी से प्रयोग किया जाना था। अजिता ने तो सभी पकवानों के बारे में संक्षिप्त जानकारी लिखा हुआ 'नोट' भी तैयार कर दिया था ताकि खाते समय मेहमान को यदि उत्सुकता हो तो उसे जानकारी मिल जाए। दावत वाले दिन दादी से पूछकर प्रसिद्ध हिमाचली हाथ करघे के बने कपड़े के दीवान और गाव तकियों के कवर चढ़ा दिए गए। इन पर सुन्दर कढ़ाई की हुई थी। डाइनिंग टेबल पर चंबा रुमाल वाली कढ़ाई का टेबल क्लॉथ डाला गया। कालीन बिछ गया। 'सेंट्रल टेबल' पर काँच की बड़ी उथली तश्तरी में पानी भर कर पारिजात के फूल डाले हुए थे। सफ़ेद पुष्प और उनके चटकीले सिन्दूरी रंग के पुष्प वृंत बहुत सुन्दर दिख रहे थे। भीनी सुगंध दे रहे थे सो अलग। तैयारी में घर की महिलाओं ने कोई कसर नहीं छोड़ी थी। अभी तो मामी भी अपने अनुभवों के आधार पर तीनों युवतियों को सलाह दे रहीं थीं !

पिछले दो दिनों से राजवीर अपने ऑफिस में बहुत व्यस्त था। जर्मनी से मेहमान जो आ गए थे। उनके रहने की व्यवस्था कर दी गयी थी। कंपनी ऑफिस, फैक्ट्री और बीच में समय निकालकर एक-दो विश्व प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्मारकों के दर्शन आदि, इन सब में राजवीर बहुत व्यस्त हो गया था। उसके सहकर्मी राहुल, हरीश आदि भी साथ थे किन्तु मुख्य दायित्व तो राजवीर का ही था।

अब आज वह दिन भी आ ही गया था जब विदेशी मेहमान घर पर आने वाले थे। तय समय पर घर पहुँचाने के लिए गाड़ियों की भी व्यवस्था कर दी गयी थी। राहुल और हरीश उन लोगों के साथ आने वाले थे। लगभग उसी समय पर राजवीर को अत्यंत आवश्यक काम के कारण ऑफिस में रुकना पड़ गया। ये काम वह अपने सहकर्मियों के भरोसे नहीं छोड़ सकता था।

खैर, समय पर मेहमान घर पहुँच गए। राहुल ने फोन पर राजवीर को सूचना दी और जल्दी से आने के लिए पुरज़ोर आग्रह किया। जल्दी तो राजवीर भी आना चाहता था। उसे चिंता होने लगी कि उसकी अनुपस्थिति में कौन स्थिति संभालेगा ! कहीं कुछ गड़बड़ हो गयी तो ? यद्यपि इस 'भोज' की सफलता पर राजवीर की सफलता निर्भर नहीं थी, तथापि कुछ त्रुटी रह जाने

पर जग हँसाई तो हो ही सकती थी ! ऑफिस में जितनी जल्दी हो सका, काम निपटाकर राजवीर घर के लिए निकल गया। मन ही मन उसने भगवान् से कई बार प्रार्थना की, कि, कोई गड़बड़ ना हो जाय। अपने आप को समझाया कि इसी आशंका से ही तो उसने राहुल और हरीश को घर भेजा था ताकि उसकी अनुपस्थिति में वो दोनों मोर्चा संभाले रहें। पता नहीं घर में सब कैसा होगा ! घर में सब स्त्रियाँ ही थीं। उनमें भी दो सदस्य बहुत बुज़ुर्ग थे। सबकुछ ठीक से तो हो जायेगा ना ! ये लोग मेहमानों से कुछ बोल भी रहीं होंगी या नहीं ! या रसोई में घुसकर खुसुर - पुसुर कर रहीं होंगी। बस ईश्वर, इन तीनों लड़कियों को सद् बुद्धि देना कि कुछ अलग करने के चक्कर में सब खराब न कर दें !

जैसे - तैसे राजवीर घर पहुँचा। पूरे दो घंटे बाद पहुँचा था वह। घर से बहुत हँसने - खिलखिलाने की आवाज़ें आ रहीं थीं। कार घर के गेट के बाहर ही खड़ी करके राजवीर अन्दर की ओर लपका। दूर से ही देख सकता था वह कि घर बहुत ही सुरुचिपूर्ण सजाया हुआ था, गाव - तकिये, कालीन, टेबल क्लॉथ आदि सब कुछ उसे अपने हिमाचल की याद दिला गया। रसोई से चावल, कढ़ी, चना मद्रा आदि की सुगंध आ रही थी। लोग बैठक और हॉल में छोटे - छोटे समूह बनाकर बातें कर रहे थे। डाइनिंग हॉल में राहुल और अजिता भारतीय मूल के दोनों जर्मन नागरिकों और उनकी पत्नियों को हिमाचली व्यंजनों के बारे में बताने का प्रयत्न कर रहे थे। भाषा कुछ टूटी - फूटी हिंदी अंग्रेजी मिश्रित थी। एक ओर झूले पर दोनों दादियाँ बैठी हुई प्रसन्न हो रहीं थीं। बैठक में दो युवा जर्मन अक्षता से हिमाचली हेरिटेज के बारे में जानना चाह रहे थे। प्रसन्नता की बात यह थी कि अक्षता बहुत आत्मविश्वास के साथ हिमाचली खाना, साहित्य, टूरिस्ट आकर्षण आदि के बारे में भी बता रही थी। मामी भी शरबत वगैरा पूछकर आवभगत कर रही थी। म्यूजिक सिस्टम पर बहुत ही धीमे स्वर में हिमाचली लोक गीत चल रहे थे। राजवीर मन्त्र मुग्ध होकर देखता रहा। आखिर उसके परिवार ने बहुत ही सफलता से उसका 'दुर्ग' बचा कर रखा था और मोर्चा संभाला हुआ था। उसे ध्यान आया कि जर्मनी से आये लोगों में तीन मेहमान अपेक्षकृत प्रौढ़ थे और अंग्रेजी भी बहुत ठीक से नहीं आती थी। वे लोग कहाँ हैं ! क्या नहीं आये ! तभी उसे

हरीश सामने से आता दिखाई दिया। हरीश राजवीर को देखते ही खुश हो गया जैसे सिर पर से बोझ उतर गया हो !

हरीश ने ही बात शुरू की, "राज, अच्छा हुआ तू आ गया। कब से हम सब इंतज़ार कर रहे थे। वैसे यहाँ सब ठीक है। कोई अनहोनी नहीं हुई है। ये जर्मन फिरंग तो बुरांश का शरबत पीकर उसके 'फैन' हो गए हैं। ....चलो ये शरबत पी लो और सब से मिल भी लो। खाने का समय भी हो ही गया है। मैं राहुल से मिल कर आता हूँ।"

हरीश की बातों ने दिलासा दिया। पर राजवीर सिम्मी से बात करना चाह रहा था। इस माहौल का सही आकलन सिम्मी से बात करके ही हो सकता था। वो कहाँ थी ! तभी उसका ध्यान डाइनिंग हॉल से लगे हुए दालान की ओर गया। दालान में गार्डन चेयर्स रखी हुईं थीं। वहाँ बहुत सारे विभिन्न किस्मों के पौधे गमलों में लगे हुए थे। बहुत सारी किस्में लटकने वाले गमलों में भी लगी हुई थीं। वास्तव में बागवानी राजवीर की माँ का शौक था। वहाँ सिम्मी दिखी। वह उन तीन प्रौढ़ जर्मन मेहमानों से बात कर रही थी। उसकी भाव भंगिमाओं से समझ आ रहा था कि वह वहाँ लगे पौधों के विषय में बता रही थी। बीच - बीच में वे लोग किसी बात पर हँस देते थे।

इन्हें तो अंग्रेजी ठीक से नहीं आती। सिम्मी से कैसे बात कर पा रहे हैं ! और सिम्मी का आत्मविश्वास देखते ही बनता है। वह पास चला गया। अब उन लोगों की बातें अधिक स्पष्ट सुनाई दे रही थी। वे लोग जर्मन भाषा में बात कर रहे थे। कितनी धारा प्रवाह जर्मन बोल रही थी सिम्मी ! राजवीर सोचने लगा। आखिर क्या है ये लड़की सिम्मी भी ! जितना सोचता हूँ कि अब मैं समझ गया हूँ इसे, ये कुछ नया 'सरप्राइज' दे देती है। जाने कितने तीर इसने अपने तरकश में रखे हैं !और ये जर्मन भाषा पता होना तो बिलकुल चौंकाने वाला था।

राजवीर खड़ा होकर चुपचाप सुनता रहा। वह उन लोगों के वार्तालाप में हस्तक्षेप नहीं करना चाहता था। उसे सबसे अधिक कौतुहल तो जर्मन बोलती सिम्मी को देख कर हो रहा था। धानी रंग का सलवार कमीज़ पहने हुए सिम्मी

आज बहुत आकर्षक लग रही थी। पैरों में हाथ की कारीगरी की हुई जूतियाँ पहन रखीं थीं। एक कलाई में कुछ खनकती चूड़ियाँ और दूसरी कलाई पर वही पुरानी घड़ी बाँध रखी थी। आँखों में हल्का सा काजल उसकी आँखों को और भी अधिक सुन्दर बना रहा था। फिर उसके होठों का चिर स्मित तो था ही। वह बहुत आत्मविश्वास से बातें कर रही थी। विदेशी आगंतुक भी पौधों के बारे में मिल रही जानकारी से संतुष्ट दिख रहे थे !

हरीश ने पास आकर टोह ली राजवीर की। पीठ पर हल्का सा धौल जमाते हुए कहा, "ये ऐसे ही खड़े होकर देखते रहेंगे बॉस, या आगे जाकर इन फिरंगियों से मिलेंगे ?" हरीश राजवीर के घर पर था अतः पुराने कॉलेज के दिनों जैसा अनौपचारिक व्यवहार कर सकता था ! ऑफिस में तो वातावरण अलग रहता था।

राजवीर चौंक गया। वह जैसे मंत्रमुग्ध होकर सिम्मी को देख रहा था, क्या हरीश ने यह नोटिस किया था ? राजवीर सकपकाया, फिर संभलकर उसने कहा, "तू भी ध्यान से सुन और देख। तुझे जर्मन आती है !? इतने सालों से इन लोगों के साथ डील कर रहे हैं हम। 'गुटन मोर्गेन', 'डेंके', 'हेरिन', 'हेर्र' से ज्यादा जर्मन हम लोगों को नहीं आती। और इसे देखो, क्या फ़र्राटे से बोल रही है !"

"हाँ, हाँ, सुन रहा हूँ.... और तुझे 'इन' मोहतरमा को देखते हुए भी देख रहा हूँ। यार, एक बार मिलवायेगा नहीं ?" हरीश भी अब सिम्मी को प्रशंसा भरी दृष्टि से देख रहा था। उसने फिर राजवीर को छेड़ा, "मैं देख रहा हूँ बॉस ! अच्छा इंतजाम करवाया है .... बिदेसी फिरंग मेहमानों का स्वागत देसी मेहमान से करवा रहे हैं आप !"

राजवीर के मुख के भाव कठोर हो गए। उसने कहा, "पापा के एक बहुत पक्के दोस्त हैं। यह उनकी बेटी सिम्मी है। अपनी दादी के इलाज के लिए आई है। तूने हॉल में मेरी दादी के साथ बैठी हुई एक बुज़ुर्ग महिला को तो देखा होगा। चल, बाद में पूरी बात बताता हूँ अभी बहुत काम है....'उसे' घूरना बंद

कर। उसे 'कोन्शिअस' कर देगा तू !" राजवीर हरीश को खींचकर बैठक की ओर लाया।

"हम्म.... बॉस अपने देसी मेहमान के लिए 'ओवर प्रोटेक्टिव' हो गए हैं। कोई बात नहीं।" हरीश मुस्कुराते हुए बोला। सिम्मी ने उन दोनों को देख लिया था। विदेशी आगंतुकों की आज्ञा लेकर वह हरीश और राजवीर के पास आयी। उन दोनों से बुरांश का शरबत पीने का आग्रह करके अन्दर रसोई की ओर चली गयी। हरीश सिम्मी को बार - बार धन्यवाद कहता रहा। और उसकी विदेशी भाषा पर पकड़ की प्रशंसा करता रहा। दोनों का औपचारिक परिचय राजवीर ने कर ही दिया था। सिम्मी के जाने के बाद भी हरीश उसी दिशा में देखते हुए मंद - मंद मुस्कुराता रहा। यह देखकर राजवीर की समझ नहीं आ रहा था कि वह इतना असहज क्यों हो रहा था।

खाना लग गया था। जर्मन लोग खूब रुच - रुच कर खाने का स्वाद ले रहे रहे थे। धीरे - धीरे सभी को पता चल गया था कि सिम्मी को जर्मन भाषा का अच्छा ज्ञान था। तो सभी मेहमान उसी से बात कर के अपनी जिज्ञासा शांत कर रहे थे। खाना सच में बहुत अच्छा बना था। घर के लोग भी अपनी मेहनत से बहुत प्रसन्न थे। संतुष्ट थे।

खाना और मीठा निपट गया। मेहमान प्रसन्न होकर चले गए। हरीश और राहुल भी उनके साथ चले गए। काँच और बोनचाइना के बर्तन, कटलरी, आदि धो - पोंछ कर रख दिए गये। इस काम में सबने मिलकर मदद की। रानी मौसी भी थक गयी थी। खाना इतना तो बचा ही था कि रात का खाना निपट जाय। सभी थक गये थे अतः सब लोग अपने - अपने कमरों में आराम करने चले गये। सिम्मी की दादी भी सो रही थी। सिम्मी को ध्यान था कि परसों ही पूरे दस दिन होने वाले थे। और अब दादी को हॉस्पिटल में भरती होना था। इसके पहले ब्लड सैंपल भी देना था अतः सिम्मी ने सुबह ही दादी को दिन भर हल्का ही खाने के लिए बता रखा था। उसे नींद नहीं आ रही थी। वह हॉस्पिटल की आवश्यकता के अनुसार कपड़े आदि की तैयारी करने लगी। सिम्मी को पता था कि आजकल तो घुटनों के ऑपरेशन के बाद डॉक्टर्स पेशेंट्स को जल्दी ही चलने - फिरने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। तो इसका

अर्थ यह था कि दादी भी जल्दी ही चलने - फिरने लायक हो जाएगी। इसलिए सिम्मी ने उन्हें वापस छोड़कर अपने लिए कहीं कमरे की व्यवस्था करने का पक्का विचार कर लिया था। वैसे ही कुछ ज्यादा ही लम्बे समय के लिए दोनों यहाँ रुक गए थे।

संध्या की लालिमा गोधुली रंग में, और फिर स्याह रंग में परिवर्तित हो गयी थी। घर के सदस्य एक - एक करके अलसाए हुए उठ रहे थे। 'डिमांड' होने पर सबके लिए अदरक वाली कड़क चाय बनी। मेहमानों के जाने के बाद से राजवीर घर पर ही रुक गया था। आखिर उसे भी आराम की बहुत आवश्यकता थी। राजवीर चाय लेकर बाहर दालान में बैठ गया। उसने देखा कि विदेशी मेहमानों की आवभगत में कोई कसर नहीं रख छोड़ी थी घर के लोगों ने। किनारे रखे गमलों पर गेरुआ पेंट किया हुआ था और उसपर भी हिमाचली परम्परागत लोककला के छोटे नमूने बनाए हुए थे ! वह मुस्कुराए बिना नहीं रह सका। दालान की एक ओर पारिजात का पौधा हुआ करता था जो की राजवीर की माँ ने उसके पच्चीसवें जन्मदिन पर लगाया था, वह आज नहीं दिख रहा था। राजवीर की माँ प्रायः बच्चों के जन्मदिन पर एक पौधा अवश्य लगाती थी। तभी उसका ध्यान सिम्मी पर गया। वह रानी मौसी के साथ मिलकर रसोई में आज के लिए निकाले गए बड़े - बड़े बर्तन ऊपर माले पर रखवा रही थी। ये लड़की कभी थकती नहीं क्या ! राजवीर रसोई तक गया और दोनों को डांट लगायी, "मतलब आज ही सारा काम ख़तम करना है क्या ! कल कहीं बाहर जाने का प्लान है क्या ....यानि 'गर्ल्स डे आउट' जैसा ?"

"अरे नहीं भैया, मैं तो मना ही कर रही थी। ये सिम्मी ही नहीं मानती है, इसे सब काम आज ही करने हैं ! जैसे कल की ही गाड़ी पकडनी हो !"

सिम्मी झेंप गयी। बोली, "नहीं, ऐसा नहीं है। वो काम जितनी जल्दी सिमट जाय, ठीक ही रहता है। चलो, मौसी बचा हुआ काम बाद में करते हैं। अभी चाय का मज़ा लेते हैं।"

“सिम्मी, आओ यहाँ दालान में बैठते हैं, अच्छी हवा चल रही है।” राजवीर ने अधिकार से सिम्मी को दालान में बैठने के लिए बुला लिया। आज जाने क्यों पहली बार राजवीर के आग्रह पर उसके साथ बैठने में सिम्मी को संकोच हो रहा था। थोड़ी देर दोनों ही चुपचाप चाय पीते रहे। जैसे मानो सच में ही चाय में स्वाद आ रहा हो या वास्तव में मौसम बहुत सुहावना हो गया हो गया था जो बात करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ रही थी ! राजवीर ने ही बात शुरू की, “मैं देख रहा हूँ, तुम लोगों ने तैयारी के चक्कर में गमलों तक को नया सा बना दिया ! बस एक पारिजात का गमला नहीं दिख रहा है। खैर, जाने दो। माली से पूछ लेंगे। पर आज की सबसे ख़ास बात तो सिम्मी तुम्हारा जर्मन बोलना था ! सिम्मी तुम तो कमाल की निकलीं ! इतने धाराप्रवाह से जर्मन बोल लेती हो ये पता ही नहीं था हमें !”

“ओह ! वह तो बस ऐसे ही। मैं स्कूल में जर्मन भाषा ही पढ़ाती हूँ।”....वैसे वह पारिजात सूख सा गया था अतः हमने उसे पीछे रखवा दिया था और सजावट के लिए पारिजात के फूल माली से मंगवा लिए थे।” सिम्मी थोड़ी सहज हो गयी थी अन्यथा वह चुप ही रह जाती यदि राजवीर ने बातचीत का सूत्र नहीं दिया होता तो !

“कोई बात नहीं.... टेल मी, कब से तुम्हें इतनी अच्छी आती है जर्मन?” राजवीर उत्सुक था।

“बिन्नी दीदी को बहुत ही अच्छी आती है। मैंने तो उनको बस फॉलो किया है। दीदी भी जर्मन ही पढ़ाती है....मैं तो ये टीचर नहीं बनना चाहती थी। पर घर की परिस्थितियाँ ऐसी हो गयीं की मुझे ये जॉब करनी पड़ी” सिम्मी थोड़ा खुलकर बोली।

“तो तुम्हारा ‘ड्रीम जॉब’ कुछ और था ?”

“वैसे तो मेरे ‘ड्रीम’ में जॉब था ही नहीं.... मैं हॉकी ही खेलना चाहती थी। पर दीदी की शादी के बाद मुझे समझ आया कि नौकरी करना बहुत जरूरी है। हॉकी खेलने का जूनून था अतः असिस्टेंट कोच की तरह भी काम किया लेकिन उसका फायदा नहीं हुआ, क्योंकि मुझे सिखाने का अनुभव नहीं था।

तबतक मैनें बी एड कर लिया था। फिर मैंने स्कूल में ही पढ़ाने की सोची। चूँकि दीदी की जर्मन भाषा में बहुत अच्छी पकड़ है, इसलिए उनसे सीखते - सीखते और बात करते हुए मेरी भी पकड़ ठीक ठीक हो गयी है !"

"अब आगे का क्या प्लान है ? आई मीन.... मैंने सुना तुम यहाँ हॉस्टल में रहकर आगे पढ़ाई करना चाहती हो ?" राजवीर जानना चाहता था।

"हाँ, मैंने कुछ एंट्रेंस एग्जाम दिए हैं। उनके परिणाम आने बाकि हैं। मैंने यह भी सोचा है कि यहाँ रहकर 'पार्ट टाइम' लैंग्वेज कोर्स कर सकती हूँ इससे मैं कुछ जॉब ढूँढ सकूँगी और परिवार को सपोर्ट कर सकूँगी। मैंने कई जगह पी जी हॉस्टल या वर्किंग वीमेन हॉस्टल में आवेदन कर रखा है। वास्तव में मेरा उद्देश्य जर्मन भाषा में ही स्नातकोत्तर करने का है। जिससे मैं कॉलेज में व्याख्याता के पद के लिए आवेदन कर सकूँगी। आजकल तो कई क्षेत्रों में विदेशी भाषा के जानकार की आवश्यकता होती है। मैं वहाँ भी कोशिश कर सकती हूँ। इससे मेरी सैलरी भी बेहतर हो जाएगी। क्या पता कोई तरीका तो ज़रूर होगा, विदेश मंत्रालय या किसी दूतावास में भी तो विदेशी भाषा के इन्टरप्रेटर की आवश्यकता होती होगी। यदि अवसर मिला और मेरी योग्यता उसके अनुसार रही तो मैं ज़रूर कोशिश करुँगी। मैं पापा और दादी के लिए ज्यादा सुख सुविधाओं का प्रबंध कर पाऊँगी !" बोलते हुए सिम्मी की आँखों में चमक थी।

"और खुद के लिए क्या सोचा है ?" अजिता बोली। सिम्मी और राजवीर को पता ही नहीं चला था, अजिता वहाँ आकर कब से खड़ी थी।

"याने ? खुद की ही तो प्लानिंग बता रही हूँ !" सिम्मी प्रत्यक्ष रूप से असमंजस में थी। वह स्वयं के लिए एक अच्छी नौकरी और दादी तथा पापा का जीवन भर के लिए अच्छे से ध्यान रख सकने के सिवा और क्या कामना कर सकती थी !

"शादी - वादी नहीं करोगी ?" अजिता बोली। सिम्मी ने नेत्र झुका लिए। राजवीर के सामने ऐसा प्रश्न करके अजिता ने विचित्र स्थिति बना दी थी। विशेषकर सिम्मी के लिए। वह क्या कहे.... शादी तो उसके भविष्य की

प्राथमिकताओं में कभी थी ही नहीं ! राजवीर के मुख के भाव कठोर हो गए। सहसा सब चुप हो गए ! किन्तु अजिता की भाव भंगिमाओं ऐसा बिलकुल भी नहीं लग रहा था कि उसे कोई खेद है ऐसा प्रश्न पूछ कर ।

"ये क्या तरीका है बात करने का ? शिष्टाचार भूल गयी हो अजिता ? जाओ अपने कमरे में !" राजवीर ने कठोरता से कहा । अजिता सहम गयी परन्तु अपने स्थान से हिली नहीं। सिम्मी उठ खड़ी हुई और अजिता का हाथ खींचकर कहा "जाओ अजिता, अपने कमरे में जाओ। आज का दिन बहुत खराब हुआ है तुम दोनों बहनों का। जाकर पढ़ाई करो.... मैं भी रसोई में जाती हूँ।" अजिता बेमन से चली गयी । सिम्मी ने अपना और राजवीर का कप उठाया और रसोई की ओर चली गयी। उसे अभी किसी से भी बात करने की इच्छा नहीं थी। राजवीर वहीं दालान में ही बैठा रहा।

चूँकि किसी को भी अधिक भूख नहीं थी और साढ़े आठ बज ही चुके थे, अतः जल्दी ही सुबह के बचे हुए खाने को गरम करके रात के खाने की भी औपचारिकता भी पूरी कर ली गयी । रानी मौसी के साथ मिलकर सिम्मी ने रसोई का बचा हुआ फैलावा समेटवा दिया । गाव - तकिये आदि के कवर बदल दिए गए और कालीन भी बदल दिया । जो गमले अन्दर आये थे, वो बाहर रख दिए गए। ऐसा लग रहा था मानों सिम्मी सारे काम पूरे करके ही दम लेगी ! दस बजते - बजते घर पुनः वैसा हो गया जैसे हमेशा रहता था ! एक कारण यह भी था कि राजवीर को तड़क - भड़क अच्छी नहीं लगती थी । शान्त और शीतलता प्रदान करने वाले रंग उसे पसंद थे । अतः बैठक की सजावट ठीक वैसी ही कर दी गयी थी जैसी उसे अच्छी लगती थी।

राजवीर थोड़ा सा खाना खाकर वापस दालान में आ बैठा। वह दिनभर के घटनाक्रम के बारे में ही सोच रहा था। सबकुछ कितने बढ़िया तरीके से हो गया था। ये 'हिमाचली थीम' तो बहुत ही रंग जमा गयी थी। सच में सिम्मी में बहुत सूझ - बूझ है ! उसने लगभग अकेले ही सारा कुछ संभाल लिया था। उसने गौर किया कि पूरे समय सिम्मी कभी उसकी या उसकी बहनों की प्रशंसा कर रही थी, कभी खाना बनाने का पूरा श्रेय रानी मौसी को दे रही थी । यहाँ तक कि मामी को भी घर की साजसज्जा के लिए श्रेय दे दिया था ! जैसे उसका

कोई योगदान था ही नहीं, और यदि था भी तो एक सहायक की तरह ! मेहमानों के हर ‘धन्यवाद’ और प्रशंसा को ग्रहण करने वह सबसे पीछे खड़ी थी। राजवीर ने अनुभव किया कि वास्तविकता में ये सिम्मी ही थी जो वह उन विदेशियों को ‘घर का खाना’ खिला पाया।

केवल आज की ही क्या बात करें, सिम्मी तो जब से आई थी तबसे राजवीर के परिवार का ध्यान रख रही थी ! प्रोजेक्ट के चलते राजवीर बहुत व्यस्त हो गया था। उसकी दादी अपनी सहेली से मिलकर अपनी पुरानी यादों को पुनः जी रहीं थीं। बहनें तो खैर अपनी पढ़ाई में लगी ही रहती थीं। रह गयी रानी मौसी.... तो उसके दायित्व भी अपने कन्धों पर खींच लिए थे सिम्मी ने। और सबकुछ चुपचाप ! किसी का ध्यान नहीं था कि घर की देखभाल कौन कर रहा था। अक्षता का बुखार, अजिता का कोचिंग सेंटर वाला मामला, रानी मौसी के बैंक अकाउंट में आ रही समस्या, मामी के मैचिंग जूते और स्कार्फ़ की शौपिंग, मामाजी की बीपी की दवाइयाँ, दोनों दादियों की सेहत और दवाइयों का ध्यान रखना .... कई उदाहरण थे जहाँ सिम्मी के बिना काम नहीं चल सकता था !

सहसा राजवीर को ध्यान आया कि सिम्मी की दादी के ऑपरेशन की डेट पास आ गयी थी। कहाँ तो वह उन दोनों को घर में रुकवाने के पक्ष में नहीं था, और कहाँ दस - बारह दिन बीत गए थे कि पता ही नहीं चला था। सिम्मी की दादी तो अपनी सहेली के साथ रहकर निहाल हो गयी थी। और सिम्मी तो उस शांत जल की भांति थी कि जिस आकार के बर्तन में डाल दो, वह उसी का आकार ले लेता था। वह राजवीर के घर के वातावरण में सुगंध की भांति रच बस गयी थी। देखने पर कहीं नहीं दिखेगी परन्तु उसके होने का आभास निरंतर होता रहेगा। क्या उसके परिवारवालों को और विशेषकर उसे सिम्मी की आदत लग गयी थी ?! या उनकी दिनचर्या का अहम् हिस्सा बन गयी थी ?! राजवीर और भी सोचता रहता पर सिम्मी की आवाज़ से उसकी विचारों की श्रृंखला टूटी।

“हल्दी वाला दूध चाहिए या कॉफ़ी ?”....घर के बड़ों के लिए दूध बन रहा है। अक्षता और अजिता कॉफ़ी पियेंगे। एक्चुअली उनका आज दिन भर

खराब हो गया है तो दोनों रात को जागकर कोर्स कवर करना चाहते हैं !" सिम्मी अभी बिलकुल सामान्य रूप से बात कर रही थी जैसे शाम की चाय के समय हुई घटना का उसपर कोई असर ही न हुआ हो ! राजवीर मन ही मन सिम्मी से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका।

"उह ! हाँ, मैं भी हल्दी वाला दूध ले लूँगा... थैंक्स !" राजवीर ने कहा।

"अरे, थैंक्स मुझे नहीं, रानी मौसी से कहना। सच में बहुत काम किया है मौसी ने ! मैं मौसी को बता देती हूँ।" सिम्मी ने हँसकर कहा।

"सिम्मी, अजिता के ऐसे असभ्य बर्ताव के लिए मैं तुमसे माफ़ी मांगता हूँ.... किसी के व्यक्तिगत जीवन पर प्रश्न नहीं पूछना चाहिए .... परन्तु मैं एक बात पूँछू, बुरा तो नहीं मानोगी ?"राजवीर ने कहा।

"नहीं, आराम से पूछ सकते हो.... अजिता अभी छोटी है, समय के साथ संयम रखना सीख जायेगी। मैंने बुरा नहीं माना।"

"एक नहीं, दो बातें हैं। ये पुरानी घड़ी जो तुम पहनती हो, वह तुम्हारी माँ की है न ?''

सिम्मी मुस्कुराकर बोली, "बिलकुल सही ! ये पहनी रहती हूँ तो मुझे लगता है कि मम्मी का आशीर्वाद सदा से है मेरे साथ।"

राजवीर थोड़ा हिचक के साथ बोला, "और दूसरी बात, सिम्मी कभी तुम्हारे पैर में चलते समय तकलीफ दिखती है। वास्तविक कारण मुझे मालूम है। परन्तु कभी तुम बिलकुल ठीक चलती हो। ऐसा कैसे..." राजवीर चुप हो गया। कदाचित नहीं पूछना था। किसी को भी अपनी विकलांगता के बारे में बात करना अच्छा नहीं लगता है।

सिम्मी अपने चिरपरिचित स्मित के साथ बोली, "अरे, उसमें कोई रहस्य नहीं है ! रुद्रपुर में एक बहुत पुराने लोकल 'शू स्टोर' के मालिक हैं जो पापा के अच्छे दोस्त भी हैं। मैं बचपन से हॉकी खेलती थी, एथलीट थी। उनकी दूकान से ही प्रायः हम सब जूते लेते थे, अब भी लेते हैं। हॉकी खेलने के स्पाइक वाले जूते भी सबसे पहले उन्होंने लाकर दिए थे ! एक्सीडेंट के बाद

मेरा एक पैर थोड़ा छोटा रह गया। तब उन अंकल ने ही स्पेशल आर्डर करके मेरे लिए स्पोर्ट्स शूज बनवाकर दिए ताकि दोनों पैरों की लम्बाई बराबर रहे और मुझे चलने में दिक्कत न हो। जब वो एक्सपेरिमेंट ठीक रहा तो उन्होंने ही ये सब कढ़ाई वाली फैंसी जूतियाँ, घर में पहनने की चप्पलें वगैरा बनवा के दीं ताकि मुझे अवसर के अनुसार पहनने के लिए आसानी रहे !... अच्छा, मैं चलती हूँ। देखूँ, दादी को कुछ चाहिए तो नहीं !" सिम्मी ने मुस्कुराहट के साथ बात पूरी की और वह चली गयी।

राजवीर थोड़ी देर वहीं बैठा रहा, कुछ सोचता रहा। फिर रसोई में गया और रानी मौसी से बोला, "रानी मौसी, अपने लिए और सिम्मी के लिए भी दूध बना लेना। सच में तो आप दोनों ने सबसे अधिक काम किया है। सबसे ज़्यादा थके भी होंगे ! कल पूरा आराम करना। दोनों समय खिचड़ी बना लेना या बाहर से मंगवा लेना। आप घर भी जाना चाहती थीं। मुझे पता है। बस, जैसे ही मामा - मामी जायेंगे, आप भी अपने घर हो आना। मैं और सिम्मी मैनेज कर लेंगे !"

"अरे भैया, क्या कह रहे हो ! सिम्मी की दादी का परसों ऑपरेशन है। उसके दो - तीन दिन बाद वे लोग चले जायेंगे।" रानी मौसी कपों में दूध डालती हुई बोली।

राजवीर को जैसे झटका लगा। क्या उसे सिम्मी के बिना अधुरा सा लगने वाला था... राजवीर इस रिक्तता को परिभाषित नहीं कर पा रहा था। इतने दिनों में सिम्मी और उसकी दादी जैसे घर के ही सदस्य बन गए थे। दिन कैसे बीत गए पता ही नहीं चला था। उसका बहुत मन हुआ कि सिम्मी से बात करे। उससे रहा नहीं गया। वह उनके कमरे तक गया। कमरे की बत्ती नहीं जल रही थी। लगता है सो गए हैं जल्दी, दिनभर काम भी बहुत था। राजवीर ने तय किया कि वह सुबह ही बात करेगा।

अगले दिन नाश्ते के समय सिम्मी और दादी दोनों ही नहीं थे। पता चला कि वह सुबह ही हॉस्पिटल चले गए थे, दादी के कुछ टेस्ट होने थे। राजवीर भी ऑफिस चला गया। वहाँ जाकर पता चला कि राजवीर जिस बहुराष्ट्रीय

कंपनी में कार्यरत था, उसकी गुजरात वाली इकाई में कुछ समस्या आ रही थी जिसका तुरंत ही निवारण करना आवश्यक था। परिणाम स्वरूप राजवीर को शीघ्र ही कुछ दिनों के लिए गुजरात जाना पड़ गया। रात की फ्लाइट से ही वह चला गया। वहाँ की फैक्ट्री में कर्मचारियों और मैनेजमेंट के बीच किसी बात पर विवाद हो गया था। इस मामले को सुलझाना बहुत आवश्यक था। इधर सिम्मी की दादी का सफल ऑपरेशन हो गया। अभी हॉस्पिटल में ही कम से कम चार दिन तो रुकना ही था। इतने दिनों में सिम्मी हॉस्पिटल और घर के बीच भागदौड़ करती रही। हर बार उसने घर की कार और ड्राईवर की सुविधा लेने से विम्रतापूर्वक मना कर दिया।

हॉस्पिटल से दादी प्रायः ठीक होकर घर आ गयी थी, किन्तु अभी चलने के लिए सहारे की आवश्यकता होती थी। परन्तु दादी अब अपने घर जाना चाहती थी, रुद्रपुर। राजबाला कहती रही कि कुछ दिन और रुक जाओ लेकिन दादी अपनी पोती की ही तरह पक्की जिद्दी थी। वह अपनी सहेली से बोली, "राजबाला, इतने दिन तो रह गयी तुम्हारे यहाँ। सच में बहुत प्यार से रखा तुम सबने हम दोनों को। सिम्मी को तो तुम्हारी प्यारी पोतियाँ हाथोंहाथ रखतीं थीं। पर अब हमें चलना चाहिए। सच कहूँ तो हमारा इतना सामर्थ्य नहीं था कि हम इतने दिनों के लिए होटल में रुक जाते। सिम्मी को हॉस्टल भी नहीं मिला। तुम्हारे परिवार ने ज़रुरत के समय बहुत साथ दिया। उमेश और मैं बहुत आभारी रहेंगे....।"

"भैया को तो आ जाने दो प्रमिला दादी ! उनके वापस आये बिना ही आप लोग चले गए तो हमें बहुत डांट पड़ेगी !" अजिता ने मनाने की कोशिश की।

"हाँ, और मम्मी - पापा भी तीन दिन बाद आ रहे हैं तब तक तो रुकना ही पड़ेगा दादी।" अक्षता ने भी कहा।

"नहीं, अब हमें चलना ही चाहिए। मैंने टैक्सी कर ली है। दादी को परेशानी नहीं होगी, आराम - आराम से जायेंगे। टैक्सी रुद्रपुर की ही पापा के एक दोस्त की एजेंसी से है। तो हम सुरक्षित रहेंगे। आप सब हमारी चिंता मत

करना। हम कल बहुत सुबह ही चले जायेंगे।" सिम्मी ने कहा, "मैं फोन पर समय - समय पर बात करती रहूँगी ताकि आप सबको हम लोगों की चिंता न हो।"

"तो भैया को ही फोन करते रहना समय - समय पर !" अजिता जैसे रूठकर बोली और चली गयी। सब चौंक गए। ये क्या बोल गयी अजिता ! स्वयं सिम्मी अवाक् रह गयी। काटो तो खून नहीं वाली स्थिति हो गयी उसकी। उसने अपने नेत्र नीचे झुका लिए और जल्दी से अपने कमरे की ओर जाते हुए बोली, "दादी, पैकिंग रह गयी है। आप भी जल्दी आ जाओ।"

"मुझे पहले दिन से ही संदेह था। ये लड़की बहुत चतुर है। क्या सही हाथ मारा है। इतने हैण्डसम और अमीर लड़के को फाँस लो ! बस फिर क्या है ज़िन्दगी सेट है ! और राजबाला मौसी आप, आप तो बहुत ही सीधी हो। आप अपनी 'सहेली' से बतियाते रहीं और वह लड़की आपकी नाक के नीचे से आपका पोता उड़ा ले गयी !" मामी ने जोर से ही सुनाते हुए कहा।

"अरे बेटा, क्या ही कह रही हो। मेरी तो कुछ समझ नहीं आ रहा। सिम्मी ने क्या कर दिया" सिम्मी की दादी रोंआसी हो गयी। ठक - ठक छड़ी के सहारे चलते हुए राजबाला के पास आ खड़ी हुई, "मेरी बच्ची से कोई गलती हुई है क्या ?"

सिम्मी ने सब सुना था। वस्तुतः उसे ही सुनाने के लिए कहा गया था। वह वापस मुड़कर आयी और बोली, "कुछ नहीं दादी। अभी आप कमरे में चलकर आराम करो।" वह दादी को सहारा देते हुए कमरे की ओर ले गयी।

"देखो ! न रंग रूप, न पैसा, और तो और चाल भी टेढ़ी !.... हम्म, तभी ये चतुर लड़की लंगड़ी घोड़ी की तरह ढाई घर चलकर शतरंज की चाल चल गयी ! हम सब तो तारीफ़ ही करते रह गए कि कितनी मेहनती है, सफाई से काम करती है.... देखा मौसी ! घर के लाडले पर ही हाथ साफ़ कर डाला !"

राजवीर की दादी क्रोध में कांपने लगी थी। वह मामी को बोली, "बस करो ! कितना कड़वापन भरा है तुम्हारे मन में उस बच्ची के लिए ! इतनी जली कटी क्यों कह रही हो। उसने तुम्हारा क्या नुकसान किया है ! और राज बेटा

खुद समझदार है। उसे अपना अच्छा बुरा समझ आता है। तुम क्यों बोल रही हो... !" बोलते - बोलते दादी हाँफने लगी। अक्षता ने जैसे - तैसे अपनी दादी को संभाला और वहाँ से ले गयी। मामी भी बुरा सा मुँह लेकर अपने कमरे में चली गयी।

किसी का ध्यान नहीं गया कि हृदय को चीर देने वाली ये सारी बातें दादी - पोती ने सुन लीं थीं ! दोनों ही चुपचाप एक दूसरे का हाथ थामे ऐसे ही बैठे रहे। दोनों को ही अकथनीय वेदना हुई थी। दोनों के ही नेत्र अश्रुओं से भर गए थे। सिम्मी ने हाथ छुड़ाकर अपनी दादी के अश्रु पोंछे और प्यार से उनके प्रायः पोपले हो चुके गालों को थपकी देते हुए कहा, "चीयर अप दादी ! आप तो मेरी सबसे बड़ी 'चीयर लीडर' हो ! आपको रोना 'परमिटेड' नहीं है ! चलो बचा हुआ सामान पैक कर लेते हैं। मैंने सोच लिया है कि यहाँ अपना कोई सामान नहीं छोड़ जाऊँगी जैसे पहले एक अटैची छोड़ने का सोचा था ! हम जैसे आये थे, वैसे ही चले जायेंगे... पर टैक्सी से !"

दादी देख सकती थी कि पोती अपने दुःख को छुपाने का भरसक प्रयास कर रही थी। दादी ने पूछा, "क्यों बेटा, यहाँ रूककर आगे पढ़ने का विचार छोड़ दिया क्या ! ऐसे बेकार की बातें करने वाले क्या पहले नहीं मिले हम लोगों को ! इनके कारण अपने सपने पूरे नहीं करोगी ?"

"अवश्य पूरे करुँगी। पर दादी अभी रूम नहीं मिला है। जब हॉस्टल मिल जायेगा तब वापस आऊँगी.... लेकिन चिंता नहीं करो। यहाँ कतई नहीं आऊँगी !" सिम्मी मुस्कुराकर बोली, "अभी बताओ, पापा की मनपसंद नमकीन और मिठाई लेने जा रही हूँ। आपको कुछ चाहिए ?"

दादी के मन का उद्वेग कुछ कम हो गया था। वह सोचकर बोली, "बेटा, हम यहाँ इतने दिन रुके। घर के लोगों ने हाथोंहाथ रखा। इनके उपकार तो हम कभी भूल नहीं सकते। इतना सामर्थ्य नहीं हैं हमारे पास कि पैसों से हम कुछ भी वापस कर सकें। फिर भी हमें अपनी कृतज्ञता दिखाने का कुछ तो तरीका होना चाहिए !"

सिम्मी कुछ सोचकर बोली, "ठीक कह रही हो दादी। इस परिवार के हम पासंग भी नहीं हैं। फिर भी मन में एक विचार है। आप को ठीक लगे तो वैसे कर लेंगे। वो राजबाला दादी के पास की 'राम चरितमानस' बहुत पुरानी हो गयी है। उनके लिए बड़े अक्षर वाली नयी पुस्तक खरीद लेते हैं। मैंने रुद्रपुर से चलते समय क्रोशिया किये हुए कुछ रुमाल अटैची में रख लिए थे, ये सोचकर कि हॉस्टल में नयी दोस्ती बनाने के लिए काम आयेंगे। मैं वो छः - छः रुमाल अक्षता और अजिता को दे दूँगी। मुझे विश्वास है उन्हें ऐसा उपहार पसंद आएगा। इसके अतिरिक्त एक दुपट्टा भी है बिन्नी दीदी का कढ़ाई किया हुआ। वह रानी मौसी की बेटी के लिए दे देंगे ....दादी मैंने सोचा है कि इनके बगीचे के लिए पारिजात और शमी का पौधा लाकर दूँगी। हम अजिता के माँ-पापा से नहीं मिल पाए। उन लोगों के लिए पौधों का उपहार सही रहेगा। पारिजात के फूल बहुत भड़कीले नहीं होते और उनकी सुगंध बहुत ही भीनी - भीनी होती है। शमी का पौधा सुख समृद्धि का प्रतीक तो है ही !"

"राजवीर को क्या दें?" दादी ने पूछा।

दादी के प्रश्न का सिम्मी के पास तुरंत उत्तर नहीं था। वह सोचकर बोली, "राजवीर को क्या ही दे सकते हैं हम। उसके लिए सबसे अच्छा उपहार ये रहेगा कि भविष्य में उसका मेरे से कभी सामना न हो ! मामी ने जली कटी सुनाई। पर अब मुझे भी स्वयं पर आत्मविश्वास नहीं हो रहा। लग रहा है कि अज्ञानता वश मैंने कहीं ऐसा आचरण तो नहीं कर दिया जिसके कारण अजिता ने व्यर्थ ही कुछ अर्थ निकालकर बोल दिया और मामी ये सब सोचने पर बाध्य हो गयी.... और राजवीर के लिए लज्जास्पद स्थिति बनने का मैं कारण बन गयी ! फिर भी एक सभ्य परिवार के सभ्य पुरुष होने के नाते उसने कभी इस बात पर विवाद नहीं खड़ा किया !.... दादी, यहाँ जितनी देर रुकेंगे, उतनी समस्याएँ बढ़ती रहेंगीं। यदि आपको मेरे सुझाव अच्छे लगें हों तो मैं जल्दी ही इन सबका प्रबंध करती हूँ और एक बार के हम चलते हैं यहाँ से !" दादी ने हामी भरी और पोती को अपने अंक में ले लिया।

जैसा सोचा था, सिम्मी ने सबको देने के लिए उपहार तैयार कर लिए। माली से कहकर पारिजात का पौधा दालान के पास लगवा दिया और शमी के

पौधे का गमला तुलसाजी के गमले के पास रखवा दिया। राजवीर की दादी ये सब होते हुए देख रही थी। परन्तु कुछ बोली नहीं। उनके मुख पर दुःख के भाव थे। सिम्मी उनके पास आकर संकोच के साथ बैठी और एक बड़ा कागज़ का बैग देते हुए बोली, “दादी कल हम जा रहे हैं। बहुत सुबह ही निकल जायेंगे.... ये कुछ छोटे - छोटे उपहार हैं अक्षता, अजिता और आप के लिए। और एक उपहार रानी मौसी के लिए भी है। सब पैकेट पर नाम लिखे हुए हैं ताकि आपको समस्या ना आये। महंगा कुछ नहीं है, बस कुछ हाथ से बनी हुई चीज़ें हैं। आशा करती हूँ कि उन्हें पसंद आयेंगे..और मुझपे गुस्सा नहीं करेंगे !” एक फीकी से हँसी के साथ सिम्मी ने बात पूरी की।

“बेटा मामी की बात को दिल पे मत लेना। वो ऐसी ही मुंहफट है। पर दिल की साफ़ है....” दादी ने और भी कुछ बोलना चाहा परन्तु सिम्मी ने बीच में ही टोक कर रोक दिया, “दादी मैंने बुरा नहीं माना। आप चिंता मत करो। मैं अपना सामान छोड़कर नहीं जा रही हूँ, जैसा पहले सोचा था। अभी दादी का ऑपरेशन हुए अधिक समय नहीं हुआ है। घर पर मेरी बहुत आवश्यकता होगी। और अभी किसी परीक्षा का परिणाम भी नहीं आया है सो मेरा कहीं एडमिशन भी नहीं हुआ है, न ही कोई रूम मिला है। तो आपके यहाँ सामान छोड़ने का कोई औचित्य नहीं बनता। हो सकता है मैं अपने भविष्य की राह कुछ अलग ही चुन लूँ... पता नहीं ! अभी तो बस घर जाना चाहती हूँ।”

दादी कुछ बोली नहीं। चुपचाप आशीर्वाद दिये। उनका मौन बहुत सारी बातें कह रहा था। सिम्मी ने जैसे अनसुना कर दिया उन बातों को और मुख पर हल्का सा स्मित लिए अपने कमरे की ओर चली गयी। सिम्मी के ईश्वर प्रदत्त स्मित के पीछे की उदासी किसी को नहीं दिखती थी। रात बहुत हो चुकी थी परन्तु सिम्मी की आँखों में नींद नहीं थी। वह असमंजस में थी। पिछले एक - दो दिनों के घटना क्रम ने उसे हिला दिया था। जैसे अजिता का उससे शादी के बारे में पूछना, फिर ये कह देना कि भाई को ही समय - समय पर फोन कर देना आदि किस दिशा की ओर इंगित कर रहा था ! अजिता ऐसे ही अनजाने में बोल गयी थी, या सोच समझ कर छेड़ रही थी.... या उसपर व्यंग्य कस रही थी ! मामी को तो आरम्भ से ही सिम्मी फूटी आँख नहीं सुहाती थी।

सिम्मी की आँखें छलछला गयीं। उसके जीवन में वैसे ही दुःख कम नहीं थे। सिम्मी ने अपने विवाह के बारे में बहुत पहले सोचना छोड़ दिया था और विधाता के निर्णय को स्वीकार कर लिया था। अपनी विकलांगता के लिए कभी किसी को दोष नहीं दिया था। अपितु ईश्वर का धन्यवाद ही किया था कि इतनी सक्षम वह अब भी थी कि अपने पिता और दादी की देखभाल कर सके। उसके अनुसार राजवीर अँधा या नासमझ नहीं था जो उसे सिम्मी की कमियाँ न दिखती हों। अतः वह समझ नहीं पा रही थी कि अजिता और मामी की प्रतिक्रिया ऐसी क्यों हुई। वह राजवीर से बिना किसी संकोच के बात कर लेती थी, क्या इसलिए उन लोगों को गलत संकेत मिला.... उसे कोई उत्तर नहीं मिला।

देर रात तक यही सब सोचने के कारण सिम्मी सो नहीं पायी। राजवीर गुजरात से वापस नहीं आया था। सिम्मी का बहुत मन हुआ कि एक बार बात करके सब कुछ स्पष्ट कर दे वह। ताकि बाद में कोई मन मुटाव न रहे दोनों परिवारों के बीच। आखिर उसके और राजवीर के पिता बहुत अच्छे दोस्त थे। उसने फोन लगा ही दिया। उसे भान ही न रहा कि सुबह के पाँच बज रहे थे। राजवीर ने एक ही बार में फोन उठा लिया।

"गुड मोर्निंग ! अच्छा किया जो इतनी सुबह फोन कर दिया ....सच में सिम्मी, यू आर माय सेवियर !.... कल रात देर तक फैक्ट्री में ही था, बहुत थक गया था। आज भी जल्दी जाना है। तुमने उठा दिया नहीं तो सोता ही रहता.... थैंक्स ! वैसे घर में सब कैसे हैं ? तुम और रानी मौसी हो तो मुझे बेफिक्री है.... दादी का घुटना कैसा है ? सॉरी, मैंने इतने दिनों से फोन तक नहीं किया तुम्हें... मेरा मतलब है, किसी को भी... पर मैंने राहुल और हरीश को बता रखा है, कुछ भी प्रॉब्लम हो तो उनसे बात कर लेना। वैसे मैंने हॉस्पिटल के डॉक्टर्स और अपने दोस्त को भी बता रखा है... जब तक दादी को पूरा आराम न हो, जाने की मत सोचना ...."

राजवीर की आवाज़ सुनते ही सिम्मी के संतप्त मन में क्षणांश को कोमल भावनाएँ उभर आयीं। राजवीर अपनेपन से बोले जा रहा था और सिम्मी को समझ नहीं आ रहा था कि जिस बात के लिए फोन किया है वह विषय कैसे

उठाये ! अपने आप पर तरस आने लगा, एक क्षण को वह भावुक हो गयी परन्तु फिर से स्वयं को जैसे समेटा । सिम्मी, मन पर लगाम दे । कदाचित राजवीर तुम्हें रानी मौसी के जितना ही महत्वपूर्ण मानता हो,.... उससे अधिक नहीं ! तू जितने दिन भी यहाँ रही है, रानी मौसी के साथ ही रही है । तो राजवीर तेरे बारे में किंचित मात्र भी सोचता होगा, इसकी कोई सम्भावना नहीं है । वह व्यस्त ही इतना रहता है ! यहाँ सभी अपने - अपने रूटीन में इतने व्यस्त रहते हैं कि तुझ जैसे लोग घर में क्या कर रहे हैं, इस बात पर किसी का ध्यान भी नहीं जाता होगा । इन सबसे बड़ी बात !.... क्या तेरी कमियाँ किसी को दिखती नहीं हैं ! राजवीर को भी दिखती ही होंगीं ! एक तरह से मामी सही तो कहती है । उन्होंने तुझे आईना दिखा दिया है कि तू जैसे एक तरह से पराये घर में इतने दिनों तक रह रही है, उसे देखकर समाज के एक सर्व सामान्य व्यक्ति की जो प्रतिक्रिया रहेगी, ठीक वही प्रतिक्रिया मामी की थी ! और यदि अजिता की बातों को तू इतना तूल दे रही है तो इसका अर्थ यह हुआ कि तेरे ही मन में 'कुछ' है तभी राजवीर को अपनी ओर से सफाई देने के लिए आतुर है । ताकि बाद में कोई मनमुटाव का अप्रिय प्रसंग न हो ।

सिम्मी ने जैसे तैसे अपनी भावनाओं के ज्वार - भाटे को नियंत्रण में लाया और यथासंभव सधी हुई आवाज़ में बोलना शुरू किया, "यहाँ सब ठीक है । मैंने यह बताने के लिए फोन किया था कि हम आज ही रुद्रपुर के लिए जा रहे हैं । दादी अब बहुत ठीक अनुभव कर रही है । वहाँ पापा भी बहुत दिनों से अकेले ही सब काम कर रहे हैं । मैं वहाँ पहुँच जाऊँगी तो उन्हें भी आराम मिलेगा । बाकी तुम्हें भविष्य में और भी आने वाले प्रोजेक्ट्स के लिए आल द बेस्ट ! यहाँ दादी के इलाज में आप सब लोगों की बहुत मदद मिली । इसके लिये दादी और मैं हमेशा कृतज्ञ रहेंगे .... बाकि सब ठीक है । बाय....टेक केयर!" ऐसा कहकर सिम्मी ने फोन रख दिया । फोन ही 'स्विच ऑफ़' कर दिया । वह अभी किसी से कोई बात नहीं करना चाहती थी । वह बस घर जाना चाहती थी ।

सिम्मी और दादी को रुद्रपुर लौटकर एक महिना हो चला था । दादी से मिलने बरेली से बिन्नी दीदी परिवार सहित दो - तीन दिनों के लिए आयी थी।

गिन्नी तो हल्द्वानी में ही रहती थी। अतः गाहे बगाहे मिलने आती रहती थी। सिम्मी समझती थी कि दोनों बहनें परिवार वाली हैं। अतः अधिक समय तक मायके में नहीं रुक सकती थीं।

सिम्मी को तो विवाह के बारे में सोचना ही नहीं था ! अतः उसका पिता के घर को छोड़कर जाने का कोई विचार नहीं था ! धीरे - धीरे जीवन पटरी पर आ गया था। सिम्मी ने स्कूल में फिर से पढ़ाना शुरू कर दिया था। वहाँ की प्रिंसिपल बहुत ही भली महिला थी। सिम्मी की माँ की पक्की सहेली थी। सिम्मी को बचपन से जानती थी। स्कूल में सिम्मी स्वयं को व्यस्त रखने का प्रयत्न करती। स्कूल में कुछ अतिरिक्त काम अपने ऊपर ले लिए थे। घर पर जर्मन भाषा की ट्यूशन लेना आरम्भ कर दिया था। जब स्कूल में छोटी बच्चियों को खिलखिलाते - खेलते देखती तो उसका मन प्रसन्न हो जाता। जब किशोरियों को हॉकी, कबड्डी या खो - खो जैसे खेलों में उत्साह से भाग लेते देखती तो उनकी आँखों की चमक में अपने पाए हुए पदक भी चमकते हुए दिखाई देते ! उसका हॉकी खेलना भूतकाल का विषय हो चुका था परन्तु सिम्मी इन युवा प्रतिभाओं की उपलब्धियों से जुड़ाव का अनुभव करती थी।

अब रुद्रपुर आकर तीन महीने हो चले थे। सिम्मी अपने पापा और दादी का बहुत ध्यान रखती। उसके जीवन का बस यही ध्येय हो गया था। सुबह - सुबह घर के काम करके, नाश्ता और अपना टिफ़िन बनाकर खाने की तैयारी भी कर देती थी। दादी धीरे - धीरे सब्जियाँ छौंकना, मशीन में कपड़े डालकर धोना, काम वाली से कपड़े सुखवा लेना आदि काम कर लेती थी। शाम को बच्चों की ट्यूशन लेने के बाद सिम्मी रात का खाना सबको खिलाकर थोड़ा समय जर्मन भाषा को और सुधारने के लिए ऑनलाइन क्लास अटेंड करती थी। वह अपना सपना भूली नहीं थी। धीरे - धीरे दिल्ली में बिताया हुआ समय भी सड़क पर पड़ी धूल पर बने हुए पद चिन्हों की तरह हो गया था जिन पर असंख्य अन्य नयी पुरानी स्मृतियों के पदचिन्ह अंकित हो चुके थे। कुछ भी स्पष्ट दिखाई नहीं दे सकता था। परन्तु कभी - कभी पापा या दादी ही किसी का उल्लेख कर देती तो सिम्मी को सब याद आ जाता - अजिता की बात, मामी का संदेह और राजवीर भी ! सिम्मी ने शनैः - शनैः कड़वी बातों को

अपने पर हावी नहीं होने दिया था। अब वह सामान्य रूप से उस परिवार के सदस्यों के विषय में बात कर लेती थी। उसे पूर्ण विश्वास था कि अबतक तो वे लोग उसे और उसकी दादी को भूल ही चुके होंगे। उनकी व्यस्ततम दिनचर्या और अभिजात्य रहन - सहन के आगे सिम्मी और दादी के अस्तित्व तो गौण ही थे। एक - दो बार पापा और राजवीर के पिता की फोन पर बातें अवश्य हुईं थी। दोनों दादियों ने भी स्नेह से बातें कीं थीं। किसी अप्रिय घटना का उल्लेख नहीं हुआ था। इसी से सिम्मी संतुष्ट थी। अंततः जो अध्याय आरम्भ हुआ था, उसका समापन अवश्य हो गया था, ऐसा सिम्मी को लगने लगा था।

जब दिल्ली में थे तब आरम्भ में सिम्मी और राजवीर का जब भी सामना हुआ था तो दोनों ही औपचारिकता वश ही बात करते थे। कालांतर में दोनों का वार्तालाप सामान्य हो सका था। अधिकतर तो दोनों ही अपने - अपने कार्यों में व्यस्त रहते थे। बस सुबह नाश्ते के समय या रात के खाने पर संभव हुआ तो ही परस्पर बात हो पाती थी। फिर भी राजवीर की कई बातें सिम्मी के मन को छू जाती थीं। जैसे उसका सिम्मी और दादी को कार ले जाने का आग्रह करना, जल्दी घर न पहुँच पाने पर डांट लगाना - उसका केवल एक अग्नेय दृष्टिपात ही बहुत होता था !, फिर यह कह देना कि अकेले रात को जाने की जरूरत नहीं है, ड्राईवर दवाइयाँ ले आएगा .... या ये पूछना कि पाँव में दर्द है क्या। क्रमशः राजवीर को सिम्मी पर भरोसा हो चला था - वह जब अजिता की पढ़ाई के लिए परेशान रहता तो सिम्मी से कहता कि वह अजिता को समझाए। वह सिम्मी से कई विषयों पर राय लेता था और उसके के सुझावों को पूरा मान देता था। सिम्मी भी प्रयत्न करती कि उस परिवार के विषयों में हस्तक्षेप न करे। जब तक पूछा न जाय, वह कोई राय नहीं देती थी। परन्तु जब विदेशी मेहमानों की आवभगत की बारी आई तो राजवीर ने सिम्मी के सुझाव पर पूरा भरोसा जताया और पूरी तैयारी का दायित्व भी सिम्मी को दे दिया ! इतना विश्वास था सिम्मी पर उसे। इतना सब होते हुए भी सिम्मी भावनाओं के ज्वार में बह नहीं गयी। वह अपनी सीमाएँ जानती थी। एक अच्छी मित्रता, विश्वास और सौहार्द्र को प्रेम नहीं समझना है, ये वह जानती थी। बचपन से युवावस्था तक अभावों और विसंगतियों से दो - चार होते आई थी। उसे अपनी मनःस्थिति को अंकुश में रखना आता था। सिम्मी इसीलिए यह

सोचकर उदास हो जाती कि आखिर क्या देख - सुन कर अजिता और मामी ने उसके प्रति ऐसा व्यवहार किया होगा ! अजिता मुखर थी, सो उसे जो लगा उसने बोल दिया। अक्षता अंतर्मुखी थी अतः बोली नहीं किन्तु क्या पता उसके मन में भी ऐसी ही चरित्रहीन छबि हो ! क्या पता.... उसे उत्तर नहीं मिलता था।

परन्तु क्या वह सर्वथा निरपेक्ष भाव से राजवीर को भूल गयी थी ? इसका भी उत्तर उसके पास नहीं था !

एक दिन स्कूल में बहुत विलम्ब हो गया था। वार्षिक खेल प्रतियोगिताएँ चल रहीं थीं। सिम्मी वो तो नहीं करवाती थी पर उनके प्रबंधन में पूर्ण सहयोग करती थी। आज लौटते समय दादी ने समोसे और मिठाई लाने को कहा था। सामान खरीद कर सिम्मी घर को चल दी। इस समय कौन आया होगा। जरूर गिन्नी ही आई होगी। सुना था गिन्नी के पति का प्रमोशन हुआ था। तो अवश्य वही लोग आये होंगें। घर के पास पहुँचाने पर सिम्मी ने देखा की दो कारें खड़ीं थीं। कौन हैं ये लोग.... पापा ठीक हैं ? भागकर उसने गेट खोला और अन्दर जा ही रही थी कि उसे अन्दर से हँसी - मज़ाक की मिलीजुली आवाजें आने लगीं। उसने थोड़ा धीरज धरा। दादी और पापा ठीक हैं। पर कौन हैं ये लोग ! वह द्वार की देहरी पर ही पहुँची थी कि सामने से अजिता आई और सिम्मी के गले मिलती हुई जोर से बोली, "लो भैया, सिम्मी भी आ गयी !"

सिम्मी क्षणांश को जड़ हो गयी। बैठक में दृष्टि घुमाकर देखा तो वहाँ सभी बैठे थे - अक्षता, उसके मम्मी - पापा, दादी, और ....राजवीर ! सिम्मी ने यंत्रवत सबको प्रणाम किया और अपनी दादी के सामने खड़ी हो गयी। उसने कातर दृष्टि से दादी को पूछा, "दादी ये सब लोग.... क्या बात है ?"

दादी स्नेह से सिम्मी को गले लगाते हुए बोली, "मेरी बच्ची ! जाओ, राजवीर की दादी और माँ - पापा के चरण स्पर्श करो !"

सिम्मी हिली नहीं। बोली, " क्यों ?"

"अरे, कैसी बात कर रही हो बेटा ! जाओ बेटा, पाँव छूकर आशीर्वाद लो !" सिम्मी के पापा बोले।

राजवीर की माँ ने आगे आकर सिम्मी को अंक में भर लिया और बोली, “कोई बात नहीं बेटा। तुम भी अक्षता और अजिता की तरह ही बेटी ही तो हो!”

“हाँ, लेकिन आज से हम तुम्हें भाभी बुलायेंगे !” अजिता पुनः पास आकर गले लग गयी। अक्षता भी सिम्मी की दोनों हथेलियाँ अपने हाथों में थाम कर बोली, “सिम्मी बस जल्दी ही भैया से ब्याह करके घर आ जाओ, हम सब को तुम्हारी बहुत ज़रुरत है !”

सिम्मी जैसे सुन्न हो गयी। उसको विश्वास नहीं हो रहा था। उसने धीरे से हाथ छुड़ाकर कहा, “राजवीर कहाँ है, मुझे उससे बात करनी है !” उसने घूमकर देखा तो राजवीर को पास ही खड़ा पाया। सिम्मी ने कुछ कहा नहीं बल्कि राजवीर को एक क्षण देखकर अन्दर, अपने कमरे में चली गयी। बैठक में चुप्पी छा गयी। सिम्मी का व्यवहार अप्रत्याशित था। सिम्मी की दादी धीमे से उठी और बोली, “ मैं देख कर आती हूँ....जाने क्या हो गया इसे !” अजिता आगे बढ़कर बोली, “दादी, रुको। मैं भाभी को लेकर आती हूँ !” उसका उत्साह देखते बनता था।

राजवीर सारा घटनाक्रम देख रहा था। उसने अजिता को रोका, “रुक अज्जी, मैं लेकर आता हूँ.... तेरी भाभी को !”

राजवीर अन्दर की ओर गया। घर बहुत बड़ा तो था नहीं। सिम्मी को ढूँढने में कोई समस्या नहीं आयी। सिम्मी कमरे में खिड़की की ओर मुख करके खड़ी थी। सिसकने की आवाज़ आ रही थी। राजवीर पास आकर खड़ा हो गया। कुछ क्षण दोनों चुप खड़े रहे। सिम्मी ही बोली, “राजवीर, ये सब क्या है। देखो, अजिता में अब भी बचपना है। उसे बढ़ावा देने की जगह उसे समझाना चाहिए था। तुम सब को मेरे बारे में सब पता है। मैं बहुत ही साधारण परिवार से हूँ। कोई बड़े सपने नहीं हैं, महत्वकांक्षाएँ नहीं हैं। और क्या कहूँ.... मैं न सुन्दर हूँ न ही मुझसे विवाह करके तुम्हें किसी तरह का फ़ायदा होने वाला है ....राजवीर, मैं तो दोनों पैरों पर ठीक से खड़ी भी नहीं हो पाती .... तुमने कभी नोटिस नहीं किया ? फिर क्यों तुम ये सब होने दे रहे हो !” सिम्मी तन के

खड़ी थी और राजवीर से बात करते हुए दृष्टि नीची करके नहीं रखी थी। वह अपने आप को राजवीर के सामने कमज़ोर नहीं दर्शाना चाहती थी।

"अजिता का तो नहीं पता। मैं तो स्वयं आया हूँ तुम्हें मनाने के लिये। तुम्हारी 'हाँ' मेरे लिए बहुत मायने रखती है। मेरा जीवन उसपर निर्भर कर रहा है। सिम्मी मुझे घुमाफिराकर बात नहीं करनी आती। मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूँ। तुम मेरे परिवार के लिए और मेरे लिए क्या हो तुम्हें शायद पता नहीं। पारिजात की सुगंध की तरह रच बस गयी हो तुम। गुजरात से आने के बाद ही तुम्हें लेने आ जाता पर इधर पापा का स्वास्थ्य बिगड़ गया, उसके कुछ दिन बाद मुझे जर्मनी जाना पड़ गया। जब तुम घर पर थीं तो मुझे कोई चिंता नहीं रहती थी। तुम पर मेरी निर्भरता बढ़ती गयी थी। अब तुम्हारे बिना घर सूना लगता है और मुझे अधूरापन लगता है। सिम्मी, जब तुम दादी के इलाज के समय आयीं थीं तो सच कहूँ तो मैंने सोचा नहीं था कि यह घुंघराले बालों वाली लड़की, जो बिना बात के भी चेहरे पर हमेशा मुस्कान ओढ़े रहती थी, मेरे लिए इतनी ख़ास हो जाएगी ! मेरी बहनों की तुम बेस्ट एडवाइजर थीं, दादी का पूरा ध्यान रखती, मामी इतना बुरा कह गयीं, पर फिर भी तुमने उन लोगों का भी ध्यान रखा, तुम्हें पता था कि घर में फर्स्ट ऐड का बॉक्स कहाँ रखा है.... किसे क्या पसंद है क्या नहीं, तुम्हें पता है.... सिम्मी, घर के हर कोने में तुम्हारी उपस्थिति को अनुभव कर सकता हूँ मैं ! बैठक की सजावट हो या मेरी बहनों की पहनावे में और अपने कल्चर के लिए उनकी बदली हुई रंगत हो, खाने में अलग - अलग तड़के हों या बगीचे में पेंट किये हुए गमले हों, दालान के पास लगे हुए पारिजात के सुगंध बिखराते फूल हों या गेस्ट रूम में रखी पुरानी पुस्तक में रखे हुए पारिजात के सूखे फूल हों ! सब जगह तो तुम हो सिम्मी ! कहाँ - कहाँ से खुद को तोड़कर निकाल लोगी !"

"धीरे - धीरे कैसे तुम मेरे ह्रदय में घर कर गयीं, ठीक से तो मैं भी नहीं बता सकता. ...और यदि तुम्हें अपने पैर के कारण हीन भावना है तो मैं बता दूँ कि मुझे नेशनल लेवल तक खेली हुई देश की गिनी चुनी खिलाडियों में से एक सबसे अच्छी लेफ्ट फॉरवर्ड खिलाड़ी से विवाह करने में जीवन की सबसे बड़ी ख़ुशी मिलेगी ! बल्कि मेरे लिए सम्मान की बात होगी !....और एक बात,

तुमने तो अपना फोन नंबर बदल दिया। तुम्हारे पापा से बात करके तुम्हारा नया नंबर ले सकता था पर मैंने तय किया कि तुम्हारे पापा से बात करने की जगह सीधे ही तुम्हें मनाने के लिए यहाँ चला आऊँ !"

सिम्मी के तने हुए कंधे शिथिल हो गए थे। उसने दृष्टि नीची कर ली। उसे भी राजवीर पसंद था। पर उसे भय था। अभी राजवीर की भावनाएँ चरम पर थीं। जब जीवन में कभी कठिनाई आएगी तब क्या कभी किसी मोड़ पर उसे दुःख नहीं होगा कि एक अपंग लड़की से विवाह करना सही निर्णय नहीं था ! सिम्मी ने सिर उठाकर राजवीर को देखा।

उसके मन की उहापोह जैसे राजवीर को समझ आ रही थी। उसने सिम्मी के कन्धों पर हाथ रखकर कहा, "मुझे कोई असमंजस नहीं है, और तुम्हें कुछ चिंता करने की जरूरत नहीं है। तुम ही हो जिसके साथ मैं अपना पूरा जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ !"

सिम्मी ने कुछ कहा नहीं बस मुस्कुराकर स्वीकृति में सिर हिलाया। राजवीर ने खुश होकर सिम्मी को बाँहों में ले लिया तो सिम्मी ने स्वयं को छुड़ाते हुए कहा, "हमें बाहर बैठक में चलना चाहिए.... घर के सब बड़े प्रतीक्षा कर रहे होंगे !"

"हाँ, बहुत देर हो रही है। उन्हें ये चिंता भी हो सकती है कि कहीं राजवीर की हॉकी से पिटाई तो नहीं हो रही जो इतनी देर से बाहर नहीं आया !" राजवीर ने कोने में रखी हॉकी उठाते हुए कहा। उसकी आँखें ख़ुशी से चमक रहीं थी। सिम्मी ने बनावटी गुस्सा दिखाया। राजवीर का ध्यान दीवार पर लगे हुए एक बहुत बड़े पोस्टर फ्रेम पर गया जिसमें सिम्मी राष्ट्रीय रंग की जर्सी पहने हुए हॉकी खेलती हुई दिखाई दे रही थी। राजवीर प्रशंसापूर्वक देखता रहा फिर बोला, "सिम्मी ये पोस्टर मैं ले जाना चाहूँगा। हम वहाँ अपने कमरे में लगायेंगे!"

सिम्मी लजा गयी और बोली, "अभी बैठक में चलते हैं। सबसे आशीर्वाद लेने हैं !"

अजिता को कहाँ धैर्य था ! वह धड़धड़ाते हुए अन्दर आ गयी और अपने भाई को ही उलाहना देते हुए बोली, “इतनी देर कौन लगता है भैया । मैं एक मिनट में भाभी को मना लेती ! चलो, सब इंतज़ार कर रहे हैं !” अजिता ने एक हाथ से भाई और दूसरे हाथ से सिम्मी का हाथ थामा और बोली, “मुझे तो पहले दिन से ही ऐसा लगने लगा था कि सिम्मी ही मेरी भाभी बनेगी ! पता नहीं भाई, आपको इतनी देर क्यों लग गयी !”

उत्तर में राजवीर बस मुस्कुराया और अपनी बहन के सिर पर स्नेह से चपत लगाई । सिम्मी भी मुस्कुराई । अजिता दोनों को बैठक की ओर ले गयी । घर के बाहर, आँगन में पारिजात का वृक्ष पुष्पों से बहराया हुआ था । नीचे धरती पर भी बिखरे पुष्पों से श्वेत और सिन्दूरी रंगों का गालीचा सा बिछा हुआ था । भीनी - भीनी सुगन्ध चारों ओर फैल गयी थी ।

****